ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययन

प्राचीन भारतीय गणित

(वेदाङ्ग-ज्योतिष तथा आर्यभटीय मूल सहित)

डा० व० ल० उपाध्याय

एम० ए० (गणित), शास्त्री, पी-एच० डी०

विज्ञान भारती

१४६७, वजीर नगर, नई दिल्ली-३

मेरा स्वास्थ्य इतना क्षीण हो गया कि दो मास शय्या पर बिताने पड़े और मैं इसको समाप्त करने में एक समय बिल्कुल निराश हो गया। पुनः भगवान् की कृपा से कुछ ठीक हुआ और इस कार्य को ४-५ वर्षों के निरंतर उद्योग के उपरांत पूर्ण रूप से समाप्त कर पाया हूँ। इस विषय के अध्ययन के लिए गणित, संस्कृत तथा हिंदी इन तीनों के उत्कृष्ट कोटि के ज्ञान की आवश्यकता थी, जिन सबका एक व्यक्ति में समावेश होना कठिन था। अतएव मैंने राष्ट्रभाषा तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अपना यह पुनीत कर्तव्य समझा कि इस कार्य का मैं संपादन करूँ। अपने इस कार्य में मैं कहाँ तक सफल रहा हूँ यह मेरे कहने की बात नहीं है।

तिथि-निर्धारण :

प्राचीन लेखकों तथा ग्रंथों की तिथियाँ अधिकांशतः डॉ० दत्त के अनुसार हैं।

मुझसे पूर्व इस संबंध में परोक्ष रूप से भी जिन-जिन विद्वानों ने कार्य किया है उन सबके प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ। इनमें डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, डॉ० बी०बी० दत्त, डॉ० ए०एन० सिंह, श्री त्रिवेणी प्रसाद सिंह आई०सी०एस०, महामहो० सुधाकर द्विवेदी, श्री हीरालाल कपाड़िया, डॉ० कृपाशंकर शुक्ल, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० सत्यप्रकाश, डॉ० गोरखप्रसाद, श्री नेमिचंद्र शास्त्री, सूर्यसिद्धांत के टीकाकार श्री बर्जिस, संस्कृत अल्जेब्रा के रचयिता श्री कोलब्रुक, श्री जोहन स्ट्रैची, श्री एल० बी० गुर्जर तथा डॉ० थीबो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के ग्रंथों की सामग्री का मैंने इस ग्रंथ में प्रचुर प्रयोग किया है।

दिनांक १-१-७१ ब० ल० उपाध्याय

संकेताक्षर

अनु० सू०	=	अनुयोगद्वार सूत्र
अ० को०	=	अमरकोष
आप० शु० सू० आपस्तंब	=	आपस्तंब शुल्वसूत्र
आ०	=	आरण्यक
आर्य०	=	आर्यभटीय
आर्य० ग० पा०	=	आर्यभटीय गणितपाद
आर्य० गो० पा०	=	आर्यभटीय गोलपाद
आर्य० गोल०	=	आर्यभटीय गोलपाद
ऋ०	=	ऋग्वेद
ऐ०	=	ऐतरेय ब्राह्मण
ऐ० आ०	=	ऐतरेय आरण्यक
काठ०	=	काठक संहिता
का० शु० सू०	=	कात्यायन शुल्व सूत्र
कौटिल्य०	=	कौटिल्य अर्थशास्त्र
कौ० अ०	=	कौटिल्य अर्थशास्त्र
खि०	=	खिलसूक्त
ग० ति०	=	गणित तिलक
ग० सा० सं०	=	गणित सार संग्रह
गो०	=	गोपथ ब्राह्मण
जै०	=	जैमिनीय ब्राह्मण
तां०	=	तांड्य ब्राह्मण
तै०	=	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै० आ०	=	तैत्तिरीयारण्यक
पं० सि०	=	पंच सिद्धान्तिका
पा० ग०	=	पाटी गणित
बौ० शु० सू०	=	बौधायन शुल्व सूत्र
ब्राह्मस्फुट०	=	ब्राह्मस्फुटसिद्धांत
ब्रा० स्फु० सि०	=	ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त
भा० बी० ग०	=	भास्करीय बीजगणित

भारोपीय	=
म० भा०	=
मा०	=
मै०	=
रघु०	=
ल० भा०	=
लीला०	=
वे० ज्यो०	=
श० श० ब्रा०	=
शां०	=
शु० सू०	=
शौ०	=
ष०	=
सा०	=
सि० शि०	=
सि० शे०	=
सू० सि०	=

विषयानुक्रमणिका

प्रथम भाग

(सामान्य अध्ययन, पृ० १७—१००)

द्वितीय भाग

(विशिष्ट अध्ययन, पृष्ठ १०१—२८०)

प्रस्तावना

व्याकरण की दृष्टि से यद्यपि हिंदी और संस्कृत में पर्याप्त वैषम्य है किन्तु शब्दावली की दृष्टि से दोनों में उतना ही साम्य है जितना कि माँ बेटियों में हुआ करता है। यों तो समस्त हिन्दी शब्दावली प्रायः संस्कृत जन्य ही है किन्तु गणितीय हिंदी शब्दावली तो प्रायः सस्कृतमय ही है अर्थात् इसका आदि स्रोत हमारा प्राचीनतम संस्कृत वाङ्मय है। इसकी आधारभूमि इसी के रत्नों से बनी है, इसका कलेवर भी इसी के अन्नजल से पुष्ट हुआ है। आइये इस पावन पुनीत मंदाकिनी के अंचल में चलकर इसके कल्लोलों का श्रवण करते हुए हिमाच्छादित गंगोत्री के दर्शन कर और मार्ग में आए हुए तथा एकान्त में झरते हुए झरनों का अवलोकन करके चक्षुलाभ के सुख का अनुभव करें। इस प्रकार न केवल अपने इस जन्म को ही चरितार्थ करें अपितु जन्म-जन्मान्तर से शाश्वत साथ रहने वाली इस कर्म-शृंखला को तोड़कर शब्दब्रह्म में लीन हो जायें।

गणित का महत्व :

जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ, नागों की मणियाँ, शरीरों में मस्तिष्क मूर्धास्थान में स्थित है उसी प्रकार गणित भी सकल वेद, वेदांगों तथा शास्त्रों में शिरोमणि है। वेदांग ज्योतिष का निम्न वचन सर्वथा सत्य है :—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांग-शास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि वर्तते ॥

प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ने तो यहाँ तक कहा है कि—

बहुभिर्विप्रलापैः किम् त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन बिना न हि ॥

अर्थात् और अधिक प्रलाप करने से क्या लाभ। इस चराचर संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसके आधार में गणित न हो। प्राचीन काल में मोक्ष प्राप्ति के लिए यज्ञ करना परम आवश्यक माना जाता था और यज्ञ तभी फलदायी होते थे जब कि उचित समय और ठीक वेदी बनाकर किये जायें जो गणित ज्ञान के बिना संभव नहीं था। जैनियों का भी यही विश्वास था कि यदि उचित समय पर दीक्षा न ली गई तो वह फलदायी नहीं होगी। अतएव उनके लिये भी काल-गणना आवश्यक हो गई। देखिये—शान्तचन्द्र गणि (१५९५ ई०) की निम्न उक्ति :—

"शुद्ध-गणितसिद्धे प्रशस्ते काले गृहीतानि प्रशस्तफलानि स्युः कालश्च ज्योतिश्चाराधीनः स च जम्बुद्वीपादिक्षेत्राधीनव्यवस्थस्तेनाऽयं कालापरपर्यायी गणितानुयोगः।"

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन करूँ। यदि देश के अन्य विद्वान् इसी प्रकार अपने २ शास्त्रों की शब्दावली का अध्ययन कर दें तो अचिरकाल में राष्ट्रभाषा का यह शून्य प्रकोष्ठ भर सकता है।

विषयवस्तु :

मैंने गणितशास्त्र की उस हिंदी शब्दावली को ही अपने अध्ययन का विषय बनाया है जो पिछले ५०-६० वर्षों से अपने देश में प्रचलित रही है और जो संस्कृत भाषा की देन है। स्वर्गीय बापू देवशास्त्री, महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी तथा काशी नागरी प्रचारणी सभा के उन विद्वानों के हम चिरऋणी हैं जिन्होंने उस दासता-काल में भी हिंदी भाषा के रूप को संजोये रक्खा। उन्होंने अंगरेजी शब्दावली के पर्यायों के रूप में अपने प्राचीन गणितीय शब्दों को सुस्थिर किया जो १९११ ई० के लगभग काशी नागरी प्रचारिणी सभा की वैज्ञानिक शब्दावली नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई थी तथा इसका द्वितीय परिमार्जित संस्करण १९३१ ई० में प्रकाशित हुआ। मैंने इसी पुस्तक के प्राचीन एवं आधारभूत गणितीय शब्दों को माध्यम बनाकर गणितीय शब्दावली का विवेचन किया है जो गणितीय शब्दावली की व्युत्पत्तियों, मूलस्रोतों, विभिन्न कालों में उनके प्रयोगों एवं उससे विनिर्गत कुछ ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक तत्वों पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार का यह प्रथम प्रयत्न है यद्यपि आनुषंगिक रूप से डॉ० दत्त एवं डॉ० ए० एन० सिंह ने गणित शास्त्र के इतिहास तथा अपने अन्य गणितीय लेखों की कतिपय पंक्तियों में भाषा-विषयक रुचि का परिचय दिया है जो अत्यन्त सराहनीय है किन्तु न वे भाषा-शास्त्र के पंडित थे और न उनकी गवेषणा का यह विषय था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इन पंक्तियों को लिखकर केवल एक आह्वान किया था कि कोई प्राचीन हिंदू गणित के केवल शब्द-पक्ष का अध्ययन करे।

शब्दावली के अध्ययन से लाभ :

इस प्रकार के अध्ययन से मुख्यत: दो बड़े लाभ होते हैं, एक तो किसी विषय के पारिभाषिक शब्दों की व्युत्पत्ति तथा अर्थ ज्ञान के बिना विषय की आत्मा तक नहीं पहुँचा जा सकता है और बिना इसके देश में उच्चकोटि के विद्वान् निकलने असंभव हैं। उदाहरणतः हिन्दी का इमली शब्द व्युत्पति ज्ञान के बिना एक यादृच्छिक शब्द लगता है किंतु जब हमें यह मालूम हो कि यह संस्कृत शब्द अम्ली से बना है तो इसके अम्ल होने के गुण-धर्म का भी पता चल जाता है। प्राचीन हिन्दू गणित की प्रसिद्ध पुस्तक गणित सार-संग्रह में लघुतम समापवर्त्य के लिए निरुद्ध शब्द प्रयुक्त किया गया है जिसका अर्थ, बिना बताए संस्कृत के बड़े से बड़े साहित्याचार्य भी नहीं समझ सकते। दूसरा बड़ा लाभ यह है कि शब्द-विवेचन से विषय तो बोधगम्य हो ही जाता है किन्तु भाषा की भी उन्नति हो जाती है। जिस भाषा के शब्दों की न तो व्युत्पत्ति का पता हो और न इस बात का पता हो कि

नहीं था। ग्रामीण जन रोष में अपने शत्रु के संबंध में कहते हैं कि 'पनियापत को वहा देंगे' अर्थात् वे उनको बरबाद कर देंगे। यह उक्ति पानीपत रणक्षेत्र के रक्त-पात की स्मारक है। बोलचाल का 'दकियानूस' शब्द संकीर्ण तथा परंपरावादी के अर्थ में आता है। व्युत्पत्ति से पता चला कि दकियानूस नामक एक रोमन सम्राट (३५९ ई० पू०) था जो परंपरावादी था। इसी प्रकार 'अफलातून' शब्द भी यूनानी प्लेटो का अपभ्रंश है। यह उच्च दार्शनिक व्यक्ति था। अब यह शब्द 'महान्' के अर्थ में वक्रोक्तिमय भाषा में बोला जाता है। हिन्दी का 'हउआ' शब्द 'हाबूड़ा' (एक जाति-विशेष) से बिगड़ कर बना है। हिन्दी का औना-पौना शब्द कौटिल्य अर्थशास्त्र में प्रयुक्त 'ऊनं, पूर्ण' से बना है। देखने में पौना का अर्थ तीन चौथाई तथा औना एक निरर्थक शब्द लगता है किन्तु वास्तव में यहाँ औना का अर्थ है कम तथा पौना का अर्थ है पूर्ण। सर्जरी के लिए संस्कृत के 'शल्य' शब्द की व्युत्पत्ति से पता चलता है कि युद्ध में चुभे हुए बाण आदि के निकालने में इस विद्या का प्रारंभ हुआ था। हिंदी के महाब्राह्मण, महत्तर, प्रज्ञाचक्षु (नेत्रविहीन) तथा हरिजन शब्द उर्दू के खलीफा (नाई), एवं हाफिज (नेत्र विहीन) शब्द संभाषण, माधुर्य तथा उच्च संस्कृति के द्योतक हैं। ''अचला' (पृथ्वी) तथा सूर्य की नवग्रहों में गिनती एवं ग्रह का शाब्दिक अर्थ (गच्छतीतिग्रहः अर्थात् चलनेवाला) इस तथ्य के द्योतक हैं कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वज (आर्यभट को छोड़कर) पृथ्वी को अचल तथा सूर्य को चल मानते थे। संस्कृत के वामन (छोटा, अवतार विशेष), नृसिंह (नर भी है तथा सिंह भी, अवतार विशेष), वानर (वा चिकल्पेन नरः अर्थात् नर जैसा) विकासवाद की ओर ले जाने वाले शब्द हैं। 'धर्मपत्नी' शब्द में वैवाहिक बन्धन की धार्मिकता एवं अंगरेजी के 'बैटरहाफ' शब्द में पत्नी के प्रति सम्मान की भावना अन्तर्निहित है। संस्कृत के 'मातृ पितृ', अंगरेजी के 'फादर मदर', तथा फारसी के 'पिदर तथा मादर', यूनानी के 'पेटर मेटर', संस्कृत 'दक्षस, दान्त', अंगरेजी 'डेक्सट्रस तथा डौंटिड' आदि अनेक सदृश शब्दों के विवेचन से ही एक नवीन इतिहास का पता चला कि यह सब जातियाँ पहिले एक थीं और एक स्थान में वास करती थीं। किसी भी इतिहास-वेत्ता को इस महत्वपूर्ण तथ्य का कभी भी पता नहीं चलता यदि इन शब्दों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन नहीं किया गया होता। संस्कृत का केन्द्र, (यूनानी कैंत्रान), यवन (यूनानी आयोनियन), द्रम्म, दीनार, नेम अरबी का हिंदसा एवं इल्मे तख्त (पाटीगणित) तथा यूनानी केन्योस (शून्य) ब्रिज (भूर्ज), पिप्पर (पिप्पली), इंडिया, (सं० सिन्धु अवेस्तन हिंदु) शब्द इस बात के द्योतक हैं कि इन देशों में कभी सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक आदान-प्रदान होता था।

(Drachme) था। संस्कृत में यह 'द्रम्म' तथा 'द्राम' एवं हिंदी में 'दाम' हो गया तथा इसका अर्थ 'मोल' हो गया। ये सिक्के कनिष्क और हुविष्क के समय (द्वितीय शती) के अधिक मिलते हैं। हमारा 'सलूनो' शब्द जो हिंदी का प्रतीत होता है, उर्दू 'सालिनो' से बना है। अकबर ने एक नया संवत (फस्ली सन्) चलाया था, जो उस साल 'सलूनो' से प्रारम्भ होता था अतएव रक्षाबंधन का नाम 'सलूनो' पड़ गया। अंग्रेजी का राइस (Rice) शब्द दक्षिण भारत में चावलों के लिए प्रचलित तमिल के अरिसि शब्द से बना है। 'सुपारी' शब्द भी कितने पुराने बन्दरगाह 'सूपारक' की स्मृति दिलाता है जिसके नाम पर एक 'सूपारक-जातक' भी है। बौद्धकाल में पश्चिमी घाट पर यह एक बन्दरगाह था जहाँ से सुपारी लदकर विदेशों को जाती थी। विदेशियों ने उस पदार्थ का नाम ही उसी स्थान के नाम पर रख लिया जहाँ से यह वस्तु आती थी, जैसे प्रारंभ में सूरत बंदरगाह पर उतरने के कारण तम्बाकू का नाम सुरती हो गया। इसी प्रकार मिस्र से आने के कारण मिस्री तथा प्रारंभ में चीन से आने के कारण चीनी नाम पड़ा। 'कमरख' शब्द भी संस्कृत कर्मरंग से बना है। ५वीं शती में मलय में कमरंग नाम का एक छोटा राज्य था वहाँ से यह प्रारंभ में आई, अतएव इसका नाम 'कर्मरंग' पड़ गया।

इस प्रकार के अन्य शतशः उदाहरण और भी दिए जा सकते हैं जिनका देना यहाँ अनावश्यक प्रतीत होता है। इनसे ही यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि शब्दावली का अध्ययन किसी भी जाति अथवा देश किंवा समस्त विश्व को ही अत्यन्त लाभप्रद है। विशेषतः हम भारतवासियों को जो नश्वर प्राणियों के इतिहास-लेखन के प्रति सदा उदासीन रहे हैं अतएव जिनका प्राचीनतम इतिहास इसी प्राचीन शब्दावली में ही अंतर्गूढ़ है और कण-कण करके जिसके संपूर्ण स्वरूप को संजोकर विश्व के सम्मुख हमें पुनः उपस्थित करना है।

प्रथम भाग

सामान्य अध्ययन

अध्याय १

प्राचीन भारतीय गणित का संक्षिप्त इतिहास

यद्यपि प्राचीन भारतीय गणित मेरे अनुसंधान का विषय नहीं है, मुझे तो केवल उसके एक पक्ष, अर्थात् उसकी शब्दावली, का ही अध्ययन करना है। फिर भी कविकुलगुरु कालिदास की प्रसिद्ध उक्ति, 'वागर्थाविवसंपृक्तौ' अर्थात् शब्द और अर्थ सदा एक दूसरे से मिले रहते हैं, के अनुसार एक के विवेचन में दूसरे का विवेचन किसी अंश तक अन्तर्निहित ही है; अथवा यों कहिए कि एक का ज्ञान दूसरे की सहायता के बिना हो ही नहीं सकता। अतएव गणितीय शब्दावली की विशेषताओं, उनके क्रमिक विकास, विकास सम्बन्धी नियमों एवं गणितीय शब्दावली की रोचक व्युत्पत्तियों तथा उन व्युत्पत्तियों से विनिर्गत सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक तत्वों के बताने के पहिले मैं प्राचीन गणित की एक छोटी झाँकी प्रस्तुत कर रहा हूँ :—

प्राचीन हिन्दू गणित के इतिहास को निम्न कालों में विभक्त किया जा सकता है :—

काल	से	तक
१. आदि काल	३००० ई० पू०	— ५०० ई० पू०
(क) वैदिक काल	३००० ई० पू०	— १००० ई० पू०
(ख) शुल्व काल (ग) वेदांग ज्योतिषकाल	१००० ई० पू० से ५०० ई० पू०	
(घ) सूर्यप्रज्ञप्ति काल	५०० ई० पू०	
२. शैशव काल अथवा अंधकार-युग	५०० ई० पू०	५०० ई०
३. मध्य काल अथवा स्वर्ण-युग	५०० ई०	१२०० ई०
४. उत्तर काल	१२०० ई०	१८०० ई०
५. वर्तमान काल	१८०० ई०	अद्यावधि

आदिकाल (३००० ई० पू०—५०० ई० पू०)

(क) वैदिक-काल (३००० ई० पू०—१००० ई० पू०) :

वैदिक काल की विश्व को सबसे बड़ी देन संख्याओं का आविष्कार तथा उनकी दशमिक प्रणाली है। वैदिक काल के एक से लेकर सहस्र तक की संख्याओं के नाम तथा अरब (अर्बुद) संख्या का नाम अब तक चले आते हैं। यद्यपि बाद की संख्याओं के नाम परार्ध $(१०^{१२})$ तक हैं, किन्तु उनके स्थान पर बौद्ध-साहित्य के नाम दशसहस्र, लक्ष, कोटि तथा जैन साहित्य के नाम खर्व, नील, पद्म आदि प्रचलित हो गए। तत्कालीन लोग संख्याओं को द्विगुणित से द्वादशगुणित करना जानते

थे ।[१] एक मंत्र में (यजु० १६।५८) असंख्य सहस्र का भी उल्लेख है। वे किसी वस्तु के भाग करना भी जानते थे। अतएव उन में अर्ध, पाद $(=\frac{१}{४})$ शफ $(=\frac{१}{८})$, कुष्ठ $(=\frac{१}{१२})$ आदि भागों के नाम मिलते हैं। इनसे यह विदित होता है कि यद्यपि गणित की योग, गुणा, भाग, भिन्न आदि प्राथमिक क्रियाओं का अभी आविष्कार नहीं हुआ था, किन्तु उन में इन सकल्पनाओं का प्रादुर्भाव होना प्रारंभ हो गया था। तैत्तिरीय संहिता (६।२,४,५) में एक स्थल पर $३९^{२} = ३६^{२} + १५^{२}$ यह सम्बन्ध भी दिया हुआ है। इतने प्राचीन काल में इतनी बड़ी-बड़ी संख्याओं का ज्ञान होना ही एक बहुत बड़ी बात थी, क्योंकि हम देखते हैं कि १००० वर्ष बाद तक रोमन और यूनानी लोग बृहत्तम संख्या क्रमशः हजार और दस हजार ही जानते थे।

वाजसनेयि-संहिता की एक उक्ति है, 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम् यादसे······गणाकम्' अर्थात् विशेष ज्ञान के लिए नक्षत्रदर्शी गणक के पास जाओ' इससे यह अनुमान होता है कि उस समय के लोग न केवल नक्षत्र वेध ही कर लेते थे किन्तु गणना करके उनकी गति आदि को जान लेते थे।

वैदिक काल में ज्योतिष का भी आदिम ज्ञान हो गया था। अथर्ववेद के एक सूक्त (१९।७) में चित्रा से प्रारम्भ करके वर्तमान सभी नक्षत्रों का उल्लेख है। उस काल में वर्ष, ऋतु, मास, अधिमास, अमा, पूर्णिमा दिन आदि सभी का ज्ञान था।

ऐतरेय ब्राह्मण के निम्न उद्धरण से प्रतीत होता है कि उस समय लोग यह जानते थे कि पृथ्वी गोल है अतएव न तो कभी सूर्य उदित होता है और न कभी अस्त। जब हम उसे उदित या अस्त होता हुआ देखते हैं तब वह वास्तव में अपनी दिशा परिवर्तित करता है। यथा:—

स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति। तं यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते रात्रिमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तात्। अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवावस्तात् कुरुते रात्रिं परस्तात्। स वा एष न कदाचन निम्नोचति। न ह वै कदाचन निम्रोचति-एतस्य ह सायुज्यं सरूपतामश्नुतेय एवं वेद।

विश्वास था कि यज्ञों से इष्टफल की प्राप्ति के लिए वेदियों का विहित विधि-विधान से बनाना परमावश्यक है। इस विधान में किंचिन्मात्र भी त्रुटि हो जाने से इष्टफल प्राप्ति के स्थान पर अनिष्ट फल की आशंका हो जाती थी। उचित यज्ञकाल और ऋचाओं का यथाविधिपाठन भी नितांत आवश्यक माना जाता था। वेदियाँ नाना प्रकार की होती थीं, यथा :—श्येनचित, वक्रपक्ष, व्यस्तपुच्छ, अलज, प्रउग, उभयत, प्रउग रथचक्र, द्रोण, समूह्य, परिचाय्य, श्मशान तथा कूर्म। इन सब विभिन्न आकृतियों की वेदियों की रचना के लिए यह भी आवश्यक था कि इनका क्षेत्रफल वही हो जो कि मानकवेदी 'श्येनचित' का होता है अर्थात् साढ़े सात वर्ग पुरुष (मान विशेष)। कभी-कभी एक वेदी दूसरी वेदी से निश्चित प्रमाण से ही कम या अधिक की जाती थी। जैसे सौत्रामणि की वेदी महावेदी की तिहाई होनी चाहिए तथा अश्वमेध की वेदी, महावेदी की दुगुनी होनी चाहिए। गार्हपत्य वेदी वर्गाकार होनी चाहिए। कुछेक का मत है कि यह वृत्ताकार होनी चाहिए। आहवनीय वेदी का आकार सदा वर्गाकार होना चाहिए तथा दक्षिण वेदी का आकार अर्धवृत्ताकार। श्येनचित वेदी का प्रत्येक पक्ष तथा पुच्छ आयताकार होती है। इनका क्षेत्रफल भी क्रमशः $१\frac{१}{५}$ वर्गपुरुष तथा $१\frac{१}{१०}$ वर्गपुरुष होना चाहिए।

इन सब वेदियों को याथातथ्य से बनाने के लिए निम्नलिखित रेखागणितीय प्रक्रियाओं का ज्ञान होना नितान्त अपेक्षित था :—

१. सरल रेखा पर वर्ग बनाना।
२. वर्ग के चतुर्दिक् परिगतवृत्त खींचना और वृत के अन्तर्गत वर्ग खींचना। वर्ग के बराबर वृत्त तथा वृत्त के बराबर वर्ग बनाना।
३. वृत्त को द्विगुणित करना, वर्ग को त्रिगुणित, चतुर्गुणित तथा पंचगुणित करना।
४. वर्ग के विकर्ण का वर्ग उसकी भुजा के वर्ग का दुगना होता है।
५. दी हुई भुजाओं से आयत, समलंब चतुर्भुज आदि बनाना।
६. एक वर्ग अथवा समलंब चतुर्भुज के बराबर, गुणज अथवा भिन्नगुणज दूसरा वर्ग अथवा समलंब चतुर्भुज बनाना।
७. दो भिन्न वर्गों के बराबर एक वर्ग बनाना।
८. त्रिभुज को आयत में परिणत करना तथा आयत को त्रिभुज में।
९. वर्ग के बराबर त्रिभुज बनाना।
१०. आयत के कर्ण का वर्ग उसकी भुजाओं के वर्गों के योग के बराबर होता है।
११. वर्ग का क्षेत्रफल निकालना।

शताब्दियों से प्रचलित इन नियमों को बताने के लिए हमारे महर्षियों को

थे।[१] एक मंत्र में (यजु० १६।५४) असंख्य सहस्त्र का भी उल्लेख है। वे किसी वस्तु के भाग करना भी जानते थे। अतएव उन में अर्ध, पाद ($=\frac{१}{४}$) शफ ($=\frac{१}{८}$), कुष्ठ ($=\frac{१}{१२}$) आदि भागों के नाम मिलते हैं। इससे यह विदित होता है कि यद्यपि गणित की योग, गुणा, भाग, भिन्न आदि प्राथमिक क्रियाओं का अभी आविष्कार नहीं हुआ था, किन्तु उन में इन सकल्पनाओं का प्रादुर्भाव होना प्रारंभ हो गया था। तैत्तिरीय सहिता (६।२,४,५) में एक स्थल पर $३९^{२} = ३६^{२} + १५^{२}$ यह सम्बन्ध भी दिया हुआ है। इतने प्राचीन काल में इतनी बड़ी-बड़ी संख्याओं का ज्ञान होना ही एक बहुत बड़ी बात थी, क्योंकि हम देखते हैं कि १००० वर्ष बाद तक रोमन और यूनानी लोग बृहत्तम संख्या क्रमशः हजार और दस हजार ही जानते थे।

वाजसनेयि-संहिता की एक उक्ति है, 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम् यादसे… …गणाकम्' अर्थात् विशेष ज्ञान के लिए नक्षत्रदर्शी गणक के पास जाओ' इससे यह अनुमान होता है कि उस समय के लोग न केवल नक्षत्र वेध ही कर लेते थे किन्तु गणना करके उनकी गति आदि को जान लेते थे।

वैदिक काल में ज्योतिष का भी आदिम ज्ञान हो गया था। अथर्ववेद के एक सूक्त (१९।७) में चित्रा से प्रारम्भ करके वर्तमान सभी नक्षत्रों का उल्लेख है। उस काल में वर्ष, ऋतु, मास, अधिमास, अमा, पूर्णिमा दिन आदि सभी का ज्ञान था।

ऐतरेय ब्राह्मण के निम्न उद्धरण से प्रतीत होता है कि उस समय लोग यह जानते थे कि पृथ्वी गोल है अतएव न तो कभी सूर्य उदित होता है और न कभी अस्त। जब हम उसे उदित या अस्त होता हुआ देखते हैं तब वह वास्तव में अपनी दिशा परिवर्तित करता है। यथा:—

स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति। तं यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते रात्रिमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तात्। अथ यदेनं प्रातरुदेनीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवावस्तात् कुरुते रात्रि परस्तात्। स वा एष न कदाचन निम्नोचति। न ह वै कदाचन निम्म्रोचति-एतस्य ह सायुज्यं सरूपतामश्नुतेय एवं वेद।

(ऐ० ब्राह्मण १४-६)

(ख) शुल्व काल (१००० पू० ई०—५०० ई० पू०):

शुल्व काल की विश्व को सबसे बड़ी देन रेखागणित के ज्ञान की नींव डालना है। भारत धर्मप्राण देश रहा है। प्राचीन आर्यों का विश्वास था कि मोक्षप्राप्ति का सबसे बड़ा साधन यज्ञ है। किंवदंती प्रचलित है कि १०० यज्ञ करने से इन्द्रासन तक मिल जाता था। यज्ञ भी अनेक प्रकार के होते थे। जैसे अश्वमेध यज्ञ, पुत्रेष्टि यज्ञ आदि। इन यज्ञों के लिए वेदियों के आकार प्रकार भी सुनिश्चित थे। उनका

१. देखिए भाग २, संख्यावाचक शब्द।

मण्डलं चतुरश्रं चिकीर्षन्विष्कम्भमष्टौ भागान् कृत्वा भागमेकोनत्रिंशधा विभज्याष्टाविंशति भागानुद्धरेद्भागस्य च षष्ठमष्टमभागोनम् ।

—बौ०शु०सूत्र १।५९

यहां यह उल्लेखनीय है कि शुल्व सूत्रों का पाई का मान यद्यपि बहुत स्थूल है, किन्तु इतने प्राचीनकाल में उसका होना ही एक बहुत बड़ी बात है। मिस्र के पूर्व निवासियों ने पाई के इससे अच्छे मान बाद में निकाल लिए थे। आर्किमेदी ने भी बाद में पाई का मान $= \frac{२२}{७} =$ (३·१४२८) निकाल लिया था। ४९९ ई० में आर्यभट ने इससे भी सूक्ष्मतर पाई का मान निकाला था, जो समस्त यूनानी मानों से अधिक यथार्थ है अर्थात् पाई $= \frac{६२,८३२}{२०,०००} =$ ३.१४१६ ।

करणी (Surd) का ज्ञान :

रेखागणितीय उक्त ज्ञान के साथ-साथ अन्य गणितीय नियम भी अनायास प्रकाश में आ गए। जैसे वर्ग को द्विगुणित तथा पंचगुणित आदि करने में $\sqrt{२}$, $\sqrt{५}$ ...आदि करणियों का ज्ञान समुद्भूत हो गया। आपस्तंब शुल्व सूत्र में उल्लेख है कि :—

'प्रमाणं तृतीयेनवर्द्धयेत्तच्च चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन सविशेषः' अर्थात्

$$\sqrt{२} = १ + \frac{१}{३} + \frac{१}{३.४} + \frac{१}{३.४.३४}$$

वर्ग का क्षेत्रफल :

शुल्व सूत्रों में वर्ग के क्षेत्रफल के संबंध में निम्नलिखित नियम दिया है :—

'यावत्प्रमाणा रज्जुर्भवति तावतस्तावन्तो वर्गाभवन्ति तान् समस्येत्'

—कात्यायन शुल्व सूत्र

अर्थात् रज्जु जितनी लंबी होती है उतने गुणित उतने ही एकक वर्गों की पंक्तियां बनाती है। उन सबको मिलाने से क्षेत्रफल निकल आता है जैसे आसन्न चित्र में ३ एकक लम्बी रज्जु ने ३ × ३ वर्ग आड़े और पड़े बनाए हैं उनको मिलाने से वर्ग का क्षेत्रफल ९ एकक हुआ।
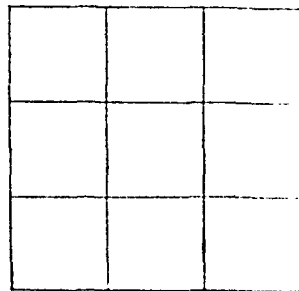
गणित की आधारभूत क्रियायें :

उक्त ज्यामितीय ज्ञान के अतिरिक्त समास (जोड़), निर्ह्रास (घटाना),

शुल्व सूत्रों की रचना करनी पड़ी। शुल्वविज्ञान अथवा शुल्वगणित ही इस प्रकार विश्व की रेखागणित का आदिम रूप तथा आदिम नाम थे। शुल्व उस रज्जु को कहते थे जिससे वेदी बनाई जाती थी। उस समय रज्जु से वह काम कर लेते थे जो आजकल पटरी और परकार से करते हैं। मानव और मैत्रायणी शुल्व सूत्रों में शुल्वविज्ञान शब्द का प्रयोग हुआ है। पाइथागोरस प्रमेय का शुल्वकाल में भलीभांति ज्ञान था।

पाइथागोरस प्रमेय का ज्ञान :

बौधायन के निम्नलिखित सूत्र में पाइथगोरस प्रमेय का ज्ञान अंतर्निहित है—

दीर्घचतुरश्रस्याक्ष्णया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्मानी च यत्पृथग्भूतेकुरुतस्तदुभयं करोति। बौ० शुल्व सूत्र १।४८।

अर्थात् दीर्घचतुरश्र (आयत) की तिर्यङ्मानी और पार्श्वमानी भुजायें जो दो वर्ग बनाती हैं उनके योग के बराबर अकेली अक्ष्णयारज्जु वर्ग बनाती है। पाइथागोरस का समय ५४० ई० पू० है, जबकि बौधायन का समय लगभग १००० ई० पू० है।

पाई (π) का मान :

वर्ग के बराबर वृत्त खींचने के प्रसंग में पाई का मान अंतर्निहित हो जाता है। मानव शुल्व सूत्र में कहा है कि २ हाथ का वर्ग, १ हाथ ३ अंगुल अर्धव्यास पर बने हुए वृत्त के बराबर होता है जिसको यदि गणितीय भाषा में लिखें तो यह समीकरण बनेगा।

$$२^२ = \pi\left(\frac{९}{८}\right)^२$$

$$\text{अर्थात् पाई} = ४ \times \left(\frac{८}{९}\right)^२ = ४ \times \frac{६४}{८१} = ३.१६०४९$$

बौधायन ने पाई का मान ३ बताया था। यथा :—

यूपावटाः पदविष्कम्भाः त्रिपदपरिणाहानि यूपोपराणीति

बौ० शुल्व सूत्र १।११२-३

एक दूसरे स्थान पर बौधायन ने वृत्त को वर्ग में परिणत करने के लिए एक नियम बताया है जिसमें

$$\pi = ४\left(१ - \frac{१}{८} + \frac{१}{८.२९} - \frac{१}{८.२९.६} + \frac{१}{८.२९.६.८}\right)$$
$$= ३.०८८५$$

उक्त नियम निम्नलिखित पंक्तियों में बताया है।

(घ) सूर्यप्रज्ञप्ति :

सूर्यप्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति 500 ई० पू० के प्रसिद्ध जैन धार्मिक ग्रंथ हैं जो गणितानुयोग पर हैं। डॉ० थीबो के मतानुसार ये यूनानी प्रभाव से एकदम शून्य होने के कारण यूनानी आक्रमण से पहिले लिखे गये हैं। प्रो० वेबर इसमें और वेदांग-ज्योतिष में पर्याप्त साम्य बताते हैं। मुझे तो शुल्व सूत्रों और प्राचीनतम जैन साहित्य में भी कुछ सदृशता मिली है। कात्यायन के रज्जुसमास तथा जैनियों के रज्जु-संस्थान (भूमिति) में पर्याप्त साम्य है। रज्जु का जैन साहित्य में भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। सूर्यप्रज्ञप्ति में भी रेखागणित के निम्न प्रसंग मिलते हैं :—

1. पाई का मान[1] $=\sqrt{10}$। जंबुद्वीपप्रज्ञप्ति ने भी यही मान अपनाया था।

2. क्षेत्रमिति के कुछ सूत्र जैसे व्यास तथा परिधि के मान।

3. निम्नलिखित ज्यामितीय आकृतियों के नाम।

ज्यामितीय आकृतियाँ	वेबर कृत अनुवाद
समचतुरस्र	Square
विषमचतुरस्र	Oblique square
समचतुष्कोण	Even parallelogram
विषमचतुष्कोण	Oblique parallelogram
समचक्रवाल	Circle
विषमचक्रवाल	Ellipse
चक्रार्धचक्रवाल	Semi ellipse
चक्राकार	Segment of a sphere

दीर्घवृत्त का आविष्कार :

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दीर्घवृत्त के आविष्कार का श्रेय जो यूनानी मिनैक्मस (350 ई०पू०) को दिया जाता है वह ठीक नहीं है क्योंकि हमारे यहाँ इससे बहुत पहले सूर्यप्रज्ञप्ति (500 ई०पू०) तथा धम्मसंगनी (400 ई०पू०) में इसका उल्लेख है। धम्मसंगनी में इसके लिए परिमंडल शब्द आया है जो शतपथ ब्राह्मण (6,7) में भी मिलता है। टीकाकार बुद्धघोष ने परिमंडल का अर्थ 'कुक्कुटांडसंस्थान' (Egg-shaped figure) किया है। पीतवत्थुटीका में इसका अर्थ आयतवृत्त (Elongated circle) भी किया है। भगवतीसूत्र (300 ई० पू०) में भी परिमंडल शब्द दीर्घवृत्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसके वहाँ दो भेद भी किये हैं। (1) प्रतरपरिमंडल (Plane ellipse) तथा (2) घनपरिमंडल (Elliptic cylinder)।

---

1. सूत्र 20।

अभ्यास (जोड़, गुणा) तथा भाग आदि शब्दों के व्यवहार से पता चलता है कि गणित की मूलभूत प्रक्रियायें योग, वियोग, गुणा, तथा भाग शुल्व काल में ज्ञात थीं।

भिन्न :

भिन्नों के परिकर्मों का भी उस समय ज्ञान था। यथा :—

'अर्धप्रमाणेन पादप्रमाणं विधीयते' अर्थात् $\left(\frac{१}{२}\right)^२=\frac{१}{४}$

'अध्यर्धपुरुषा रज्जुर्द्वौ सपादौ' करोति अर्थात् $\left(१+\frac{१}{२}\right)^२=२\frac{१}{४}$

(ग) वेदांग-ज्योतिष-काल (१००० ई० पू०—५०० ई० पू०):

यज्ञों के निमित्त वेदी बनाने के लिए रेखागणित तथा समुचित काल निर्णय करने के लिए ज्योतिष की समकालीन आवश्यकता प्रतीत हुई। (रेखागणित वेदी बनाने के लिए तथा ज्योतिष यज्ञ का समुचित काल निर्णय करने के लिए)। वेदांग ज्योतिष में कहा है :—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।

अर्थात् वेदों की प्रवृत्ति यज्ञों के निमित्त हुई, तथा यज्ञ यथाकाल किए जाते हैं। अतएव जो इस कालविधान शास्त्र ज्योतिष को जानता है वही यज्ञों के मर्म को भी जानता है।

वेदांगज्योतिष के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उस समय (८०० ई०पू०) ज्योतिषी योग, वियोग, गुणा, भाग करना जानते थे। उनको भिन्नों की भी उक्त प्रक्रियायें आती थीं। यथा :—

तिथिमेकादशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्॥

अर्थात् तिथि को ११ से गुणा करे उसमें पर्व के भांश जोड़े और फिर नक्षत्र संख्या से भाग देवे। इस प्रकार तिथि के नक्षत्र को बतावे।

'कलादश सविंशास्यात्' अर्थात् १ नाडिका $=१०\frac{१}{२०}$ कला। इसमें भिन्न का प्रयोग है। शुल्वसूत्रों के उदाहरणों से भी यह सिद्ध किया था कि ५०० ई० पू० से पहिले गणित की आधारभूत प्रक्रियायें तथा भिन्नों की प्रक्रियायें आती थीं, परन्तु फिर भी उनसे केवल ज्यामितीय अंकगणित के ज्ञान का संदेह हो सकता है। वेदांग ज्योतिष के उक्त उदाहरणों से तो अंकगणितीय मूलभूत प्रक्रियाओं का ज्ञान निश्चित हो जाता है।

आषाढ़ी के दिन समस्त गाणनिक अक्षपटल (A. G. Office) में आकर अपने विभिन्न शीर्षकों के अग्रों (Grand totals) को सूचित करके पुनः अपना ब्यौरेवार हिसाब दिया करते थे। इतना बड़ा हिसाब किताब बिना अंकलेखन प्रणाली के कैसे हो सकता है। अर्थशास्त्र में संकलन और निर्वर्तन (घटाना) शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। मेगास्थनीज कहता है कि उस समय सड़कों पर मील के पत्थर भी थे। यदि पत्थर थे तो दूरीसूचक अंक भी अवश्य रहे होंगे। वेदांग ज्योतिष में 'विभज्य भसमूहेन' अर्थात् 'नक्षत्र संख्या से भाग देकर' यह पंक्ति भी आई है। भाग भी बिना दशमिक अंकलेखन प्रणाली के जाने कैसे हो सकता है ?

अनुयोगद्वार के १४२ वें सूत्र में 'स्थान' शब्द संख्या-स्थान के अर्थ में आया है। इसमें कोटाकोटि (कोडाकोडि) शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जो स्थान मान से सम्बन्धित है। इसमें २९ स्थान तक के एक बड़े अंक का भी उल्लेख है।[1] व्यवहार सूत्र (उद्देशक १) में 'गणना-स्थान' शब्द भी आया है।

दशमिक अंकलेखन प्रणाली तथा शून्य का आविष्कार :

पिंगल छन्दशास्त्र में शून्य के सांकेतिक चिह्न का प्रयोग किया गया था। उसमें छन्द के प्रस्तार करने के सम्बन्ध में लिखा है 'रूपे शून्यम्' अर्थात् विषम संख्या से १ घटाने पर शून्य स्थापित करिये। 'द्विः शून्ये' अर्थात् शून्य स्थान में दो बार आवृत्ति कीजिए। प्रस्तार-विधि का विवरण हिन्दू गणितशास्त्र के इतिहास के पृष्ठ ७१-७२ में दिया है। इस उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि २०० ई० पू० शून्य का कोई सांकेतिक चिन्ह अवश्य रहा होगा। अतएव दशमिक अंकलेखन प्रणाली तथा शून्य का आविष्कार लगभग २०० ई० पू० का है। हिन्दुओं का सबसे बड़ा आविष्कार शून्य सहित दशमिक संख्या-पद्धति तथा दशमिक-अंकलेखन प्रणाली है। संसार में बुद्धि और सभ्यता के विकास में सहायक सबसे महत्वपूर्ण गणितीय आविष्कार यही हैं। १-९ तक के अंकों तथा शून्य के द्वारा बड़ी से बड़ी संख्या बड़ी सुगमता तथा कुशलता से लिखी जा सकती है अतएव विश्व भर ने इस प्रणाली को अपना लिया है। शून्य के आविष्कार के सम्बन्ध में अमरीका के प्रोफेसर हाल्सटीड के निम्न विचार अवलोकनीय हैं—

"This giving to airy nothing not merely a local habitation and a name, a picture, a symbol but helpful power is the characteristic of the Hindu race whence it sprang. It is like coining the nirvana into Dynamos. No single mathematical creation has been more potent for the general ongo of intelligence and power."

---

१. गणिततिलक की भूमिका, पृ० २२।

शैशव काल अथवा अंधकार-युग (५०० ई०पू०—५०० ई०)

५०० ई० पू० से ५०० ई० तक के काल को अंधकार-युग इसलिए कहा है क्योंकि इस युग की हिन्दू गणित की पुस्तकें प्रायः कालकवलित हो चुकी हैं। केवल जैन धार्मिकग्रंथों के गणितानुयोग एवं वक्षाली-गणित के कुछ पन्ने ही अब उपलब्ध हैं। किन्तु इस उपलब्ध साहित्य के देखने से पता चलता है कि यह युग गणित के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था, क्योंकि इसके उपरान्त आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्त का गणित अत्यन्त उन्नत अवस्था में मिलता है। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि इस युग में गणित का पर्याप्त विकास हुआ था।

जैन गणित :

यदि जैन लोग इस युग के अपने धार्मिक ग्रंथ संजोए न रखते तो आज गणित का एतत्कालीन इतिहास पूर्ण रूप से अंधकार-विलीन हो गया होता। स्थानांगसूत्र, भगवतीसूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र इस युग के प्रमुख ग्रंथ हैं, जो गणित के संदर्भों से ओतप्रोत हैं।

शैशव काल का आविष्कार :

इस युग के प्रमुख आविष्कार तथा महत्वपूर्ण कृतियाँ ये हैं :—

१. दशमिक अंक-लेखन-प्रणाली।
२. शून्य का आविष्कार।
३. बीजगणित का अविष्कार।
४. अंकगणित का विकास—वक्षाली-गणित।
५. ज्योतिष का विकास और सूर्यसिद्धान्त की रचना।

इस युग के गणित का प्रतिनिधि और परिचायक श्लोक यह है :—

परिकम्मं ववहारो रज्जु रासी कलासवन्ने य।
जावन्तावति वग्गो घनो ततह वग्गवग्गो विकप्पोत ॥

(स्थानांग सूत्र, ७४७)

अर्थात् ३५० ई० पू० भारतवासी परिकम्मं (मूलभूत क्रियायें), व्यवहार (व्यवहार गणित Practical Arithmatic), रज्जु (रेखागणित), राशि (त्रैराशिक नियम), कलासवर्ण (भिन्न क्रिया), यावत्तावत (सरल समीकरण)। वर्ग वर्ग समीकरण), घन (घन समीकरण) वर्गवर्ग (चतुर्घात समीकरण), विकल्प (क्रमचय तथा संचय) जानते थे।

३२२ ई० पू० चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल से सम्बन्धित कौटिल्य अर्थशास्त्र में तत्कालीन एक विशाल गणना विभाग के होने की सूचना मिलती है।

आषाढ़ी के दिन समस्त गाणनिक अक्षपटल (A. G. Office) में आकर अपने विभिन्न शीर्षकों के अग्रों (Grand totals) को सूचित करके पुनः अपना व्यौरेवार हिसाब दिया करते थे। इतना बड़ा हिसाब किताब बिना अंकलेखन प्रणाली के कैसे हो सकता है। अर्थशास्त्र में संकलन और निर्वर्तन (घटाना) शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। मेगास्थनीज कहता है कि उस समय सड़कों पर मील के पत्थर भी थे। यदि पत्थर थे तो दूरीसूचक अंक भी अवश्य रहे होंगे। वेदांग ज्योतिष में 'विभज्य भसमूहेन' अर्थात् 'नक्षत्र संख्या से भाग देकर' यह पंक्ति भी आई है। भाग भी बिना दशमिक अंकलेखन प्रणाली के जाने कैसे हो सकता है ?

अनुयोगद्वार के १४२ वें सूत्र में 'स्थान' शब्द संख्या-स्थान के अर्थ में आया है। इसमें कोटाकोटि (कोडाकोडि) शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जो स्थान मान से सम्बन्धित है। इसमें २९ स्थान तक के एक बड़े अंक का भी उल्लेख है।[1] व्यवहार सूत्र (उद्देशक १) में 'गणना-स्थान' शब्द भी आया है।

दशमिक अंकलेखन प्रणाली तथा शून्य का आविष्कार :

पिंगल छन्दशास्त्र में शून्य के सांकेतिक चिह्न का प्रयोग किया गया था। उसमें छन्द के प्रस्तार करने के सम्बन्ध में लिखा है 'रूपे शून्यम्' अर्थात् विषम संख्या से १ घटाने पर शून्य स्थापित करिये। 'द्विः शून्ये' अर्थात् शून्य स्थान में दो बार आवृत्ति कीजिए। प्रस्तार-विधि का विवरण हिन्दू गणितशास्त्र के इतिहास के पृष्ठ ७१-७२ में दिया है। इस उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि २०० ई० पू० शून्य का कोई सांकेतिक चिन्ह अवश्य रहा होगा। अतएव दशमिक अंकलेखन प्रणाली तथा शून्य का आविष्कार लगभग २०० ई० पू० का है। हिन्दुओं का सबसे बड़ा आविष्कार शून्य सहित दशमिक संख्या-पद्धति तथा दशमिक-अंकलेखन प्रणाली है। संसार में बुद्धि और सभ्यता के विकास में सहायक सबसे महत्वपूर्ण गणितीय आविष्कार यही हैं। १-९ तक के अंकों तथा शून्य के द्वारा बड़ी से बड़ी संख्या बड़ी सुगमता तथा कुशलता से लिखी जा सकती है अतएव विश्व भर ने इस प्रणाली को अपना लिया है। शून्य के आविष्कार के सम्बन्ध में अमरीका के प्रोफेसर हाल्सटीड के निम्न विचार अवलोकनीय हैं—

"This giving to airy nothing not merely a local habitation and a name, a picture, a symbol but helpful power is the characteristic of the Hindu race whence it sprang. It is like coining the nirvana into Dynamos. No single mathematical creation has been more potent for the general ongo of intelligence and power."

१. गणिततिलक की भूमिका, पृ० २२।

उमास्वाति की भाषा में ये निम्नलिखित हैं—

विष्कंभ-कृतेर्दशगुणाया मूलं वृत्तपरिक्षेपः। स विष्कंभपादाभ्यस्तो गणितम्। इच्छावगाहो नावगाहाभ्यस्तस्य विष्कंभस्य चतुर्गुणं मूलं ज्या। ज्याविष्कंभयोर्वर्गविशेष-मूलं विष्कंभाच्छोध्यं शेषार्धमिषुः। इषुवर्गस्य षड्गुणस्य ज्यावर्गयुतस्य मूलं धनुःकाष्ठम् ज्यावर्गचतुर्भागयुक्तमिषुवर्गमिषुविभक्तं तत् प्रकृति वृत्तविष्कंभः। उदग्धनुः काष्ठाद् दक्षिणं शोध्यं शेषार्धं बाहुरिति। अनेन कारणाभ्युपातेन सर्वक्षेत्राणां सर्वपर्वतानामायाम विष्कंभज्येषु धनुःकाष्ठपरिमाणानि ज्ञातव्यानि।

(तत्वा० भा०, अ० ३, सूत्र ७१)

यहाँ 'वृत्तपरिक्षेप' परिधि के लिए, 'ज्या' जीवा के लिए, 'विष्कंभ' व्यास के लिए, 'इषु' शर (उत्क्रमज्या) के लिए, 'धनुःकाष्ठ' चाप के लिए तथा 'बाहु' त्रिज्या के लिए आए हैं। उमास्वाति ने (२।५२) गुणा तथा भाग की दो विधियाँ बताई हैं। पहिली विधि तो साधारण विधि ही है दूसरी खंड-पद्धति पर है।

स्थानांग सूत्र (४६२) में ५ प्रकार के अनन्त दिये हैं (१) एकतोऽनन्त, (२) द्विविधाऽनन्त, (३) देशविस्तारानन्त, (४) सर्वविस्तारानन्त, (५) शाश्वतानन्त।

अनुयोगद्वार (सूत्र १३१) में ४ प्रकार के प्रमाण (Measure) बताए हैं— (१) द्रव्य प्रमाण, (२) क्षेत्र प्रमाण, (३) काल प्रमाण, (४) भाव प्रमाण। द्रव्य प्रमाण पुनः २ प्रकार का है (१) प्रदेश-निष्पन्न, (२) विभाग-निष्पन्न। पहला अनन्त प्रकार का होता है तथा दूसरा ५ प्रकार का :— (१) मान (Measure by bulk), (२) उन्मान (Measure by weight), (३) अवमान (रैखिक मान), (४) गणिम (संख्या-मान), (५) प्रतिमान। मान दो प्रकार का बताया है—(१) धान्य मान (Dry measure), (२) रस-मान (Liquid Measure)।

भगवती-सूत्र में निम्नलिखित ज्यामितीय आकृतियों का उल्लेख है—

त्र्यस्र (त्रिभुज)	वृत्त
चतुरस्र (चतुर्भुज)	परिमंडल (दीर्घवृत्त)
आयत	प्रतर (समतल)
घनत्र्यस्र (त्रिभुजाधार सूची-स्तंभ)	घनचतुरस्र (घन)
घनायत (आयताकार समांतरफलक)	
घनपरिमंडल (दीर्घवृत्ताकार बेलन)	
वलय वृत्त (वृत्ताकार वलय)	
वलय त्र्यस्र (त्रिभुजाकार वलय)	
वलय चतुरस्र (चतुर्भुजाकार वलय)	

$$nc = \frac{n(n-1)(n-2)(n-3)}{4!}, nP_1 = n, nP_2 = n(n-1)$$

$$nP_3 = n(n-1)(n-2)$$

१,२,३,४, तक के फलों को कहकर इसी प्रकार ५,६.७,८,९,१० संख्येय एवं असंख्येय तथा अनन्त द्रव्यों के संयोगों के फलों का भी उल्लेख है यथा :—

एवम् एतेन क्रमेण पंचषट् सप्त यावत् दश-संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि च द्रव्याणि भणितव्यानि। एकक संयोगेन, द्विकसंयोगेन, त्रिकसंयोगेन यावत् दशसंयोगेन द्वादशसंयोगेन न उपयुज्य यथा संयोगा उतिष्ठन्ति ते सर्वेभणितव्याः।

(भगवती सूत्र ८।३१४)

अनुयोगद्वार के समयाध्ययन की टीका में शीलांकसूरि ने निम्न तीन श्लोक उद्धृत किए हैं जो भंगगणित के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यह किस ग्रंथ के हैं यह आज तक पता न लग सका। इससे यह भी विदित होता है कि गणित के अनेक ग्रंथ लुप्त हो गए हैं :—

एकाद्या गच्छपर्यन्ताः परस्परसमाहताः।
राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणिते फलम्॥ १
पुव्वाणुपुव्वि हेट्ठा समयाभेएण कुण जहाजेट्ठं।
उवरिमतुल्लं पुरओ नसेज्ज पुव्वक्कमो से से॥२
गणितेऽन्त्य विभक्ते तु लब्धंशेषैर्विभाजयेत्।
आदावन्ते च तत् स्थाप्यं विकल्पगणिते क्रमात्॥३

प्रथम श्लोक में 'न' वस्तुओं के क्रमचयों के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम दिया हुआ है :—

न ! = १ × २ × ३.........न

वक्षाली-गणित :

अंधकार-युग के हिन्दू-गणित की पुस्तकों में केवल वक्षाली-पांडुलिपि के कुछ पन्ने ही अब उपलब्ध हैं। पेशावर जिले के यूसुफजाइ तहसील में वक्षलै नामक एक ग्राम है जो काबुल से १५० मील, तक्षशिला से ७०मील तथा श्रीनगर से १६० मील दूर है। १०वीं शताब्दी के अन्त में इस गांव के एक किसान को हल जोतते समय पत्थर की शिला के नीचे दबे हुए गणित की किसी प्राचीन पुस्तक के जीर्णशीर्ण लगभग ५० पन्ने मिले। इन्हीं पन्नों को वक्षाली-पाण्डुलिपि, वक्षाली-हस्तलिपि अथवा वक्षाली-गणित कहा गया है। इन पन्नों के देखने से पता चलता है कि ईसवी तीसरी शताब्दी में अंकगणित अपनी पर्याप्त विकसित अवस्था में था। इसमें अंकगणित की मूल क्रियायें, दशमिक अंकलेखन प्रणाली पर लिखी हुई संख्यायें, भिन्नपरिकर्म, वर्ग,

घन, त्रैराशिक नियम, इष्टकर्म (Rule of false position) व्याज रीति सम्बन्धी प्रश्न, सम्मिश्रण सम्बन्धी प्रश्न दिये हुए हैं। प्रश्नों को निकाल पुनः जांचने की क्रिया का भी उल्लेख है जिसे आजकल क्रिया-कांटा कर उस समय उसको 'प्रत्यानय' अथवा 'प्रत्यय' कहते थे। इसमें भिन्न रा को 'कलासवर्ग' तथा जोड़ को 'संकलित' एव प्रश्न में दिये हुए आंकड़ों लिखने को 'न्यासस्थापन' शब्दों से प्रयुक्त किया गया है, जिनका बाद में से प्रयोग हुआ है। 'क्षय' शब्द वर्तमान ऋण शब्द के स्थान पर प्रयु इसका सांकेतिक चिह्न + था। मानी जानेवाली राशि, इच्छा, कामिक त शब्दों से द्योतित की गई है।

वक्षाली-गणित के देखने से पता चलता है कि उस समय से पूर्व लिखी हुई पुस्तकें भी थीं जो कालक्रम से नष्ट हो गई। इससे यह निश्चित होता है कि ३०० ई० से पूर्व ही वर्तमान अंकगणित की नींव पड़ चुकी जिसके पर्याप्त उद्धरण जैन साहित्य में मिलते हैं। छांदोग्य उपनिषद् में नार कुमार आख्यान में जो राशिविद्या शब्द आता है वह सम्भव है अंकगणित के लि प्रयुक्त किया गया हो।

सूर्य-सिद्धान्त :

उपर्युक्त गणित ग्रंथों के अतिरिक्त ईसवी सन् १०० के आसपास ज्यो के भी स्वतंत्र ग्रंथ लिखे गये। उनमें से पितामह-सिद्धान्त, वसिष्ठ-सिद्धान्त, रो सिद्धान्त, पौलिश-सिद्धान्त तथा सूर्य-सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। इन सबका संग्रह शताब्दी में वराहमिहिर ने अपने ग्रंथ पंच-सिद्धान्तिका में भी किया था इन सबमें पितामह-सिद्धान्त अधिक प्राचीन है। इसी को ब्रह्म-सिद्धान्त भी कह हैं। इनमें पौलिश सिद्धान्त तथा रोमक-सिद्धान्त, यूनानी सिद्धान्तों के आधार प बने हुए बताए जाते हैं। रोमक-सिद्धान्त में यवनपुर के मध्याह्नकालीन अहर्गण सिद्ध किए गए हैं। सूर्य-सिद्धान्त का रचयिता सूर्य नामक ऋषि है। कुछ लोगों का विचार है स्वयं सूर्य भगवान ने मयनामक असुर को उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान दिया था। यह ग्रन्थ ई० १०० के आसपास बना था। ज्योतिष-शास्त्र की दृष्टि से सूर्य-सिद्धान्त इस काल के रचित सूर्य-सिद्धान्त से कुछ भिन्न है। इसमें युगादि से अहर्गण लाकर मध्यम ग्रह सिद्ध किए हैं तथा आगे संस्कार देकर स्पष्ट-ग्रहविधि बताई गई है।

त्रिकोणमिति का जन्म :

सूर्य-सिद्धान्त में ज्या (Sine) उत्क्रम ज्या (Versine) तथा कोटिज्या (Cosine) इन तीन त्रिकोणमितीय-फलनों का उल्लेख है। इससे पूर्व चाप को जीवा (Chord) के साथ सम्बद्ध किया गया था, जो यूनानियों ने भी किया था, किन्तु

चाप को चाप के एक सिरे से जीवा पर डाले हुए लम्ब के पदों में अभिव्यक्त करना यह उच्च कोटि की गणित की कल्पना थी, जिससे संसार में त्रिकोणमिति की नींव पड़ी। अरबों ने भारत से त्रिकोणमिति का ज्ञान ग्रहण किया, यह उनके जेब (जीवा, साइन) शब्द से ही प्रतीत होता है। बाद को अरबों ने इस शास्त्र का और अधिक विकास किया और उन्होंने त्रिकोणमिति के स्पर्शज्या तथा कोटिस्पर्शज्या फलनों को ज्ञात किया।

ग्रहों के सम्बन्ध में विचार :

पहिले बताया जा चुका है कि वैदिक काल में नक्षत्र-ज्ञान भली प्रकार था। अथर्ववेद के काल में फलित ज्योतिष के ज्ञान का भी प्रारम्भ हो गया था। मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक की दोष शान्ति तथा उसके मंगल के लिए उसमें अग्निदेव से प्रार्थनाएँ भी की गई हैं। यथा :—

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपालयेनम्।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥

ग्रह-विचार यद्यपि वैदिक काल में प्रारम्भ हो गया था, तो भी अधिक से अधिक, सूर्य तथा सोम को छोड़कर बृहस्पति और शुक्र का कुछ उल्लेख मिलता है। बृहस्पति का नाम तैत्तरीय ब्राह्मण में भी मिलता है :—

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः। तिष्यं नक्षत्रमपि संबभूव ॥
(तै० ब्रा० । ३ । १·१)

ठाणांग व्याकरण (५०० ई० पू०) में ८८ ग्रहों का उल्लेख है। इसमें वर्तमान ग्रहों के सकल नाम भी सम्मिलित हैं। समवायांग में भी ये मिलते हैं। प्रश्न व्याकरण में भी वर्तमान नवग्रहों की चर्चा की गई है। पाणिनि के 'विभाषा-ग्रहः' सूत्र में ग्रह शब्द आया है। याज्ञवल्क्यस्मृति के निम्न श्लोक में ग्रहों का उल्लेख है :—

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चैते ग्रहाःचैस्मृताः ॥

वार-कल्पना :

अथर्वज्योतिष में ग्रहों के नाम तथा वार-कल्पना भी मिलती है। यथा :—

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रंचचतुर्गुणम्।
वारश्चाष्टगुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम् ॥
द्वात्रिंशद्गुणो योगस्तारा षष्टिसमन्विता।
चन्द्रःशतगुणः प्रोक्तस्तस्माच्चान्द्रबलाबलम्।
समीक्ष्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि ॥
आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुध बृहस्पतिः।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्त दिनाधिपाः ॥

श्लोक में वर्णन किया है :—

भागं हरेदवर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन ।
वर्गाद्वर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम् ।।

अर्थात् अन्तिम वर्ग-स्थान में से बड़ी से बड़ी जो वर्ग-संख्या घट जाय उसे घटा दो । सर्वदा वर्गमूल के दुगुने से अवर्गस्थित को भाग दो । भाग करने से प्राप्त लब्धि के वर्ग को आगे के वर्गस्थानों में से घटाओ । पृथक् पंक्ति में रखी हुई संख्या वर्गमूल सूचित करती है । यह रीति आज की रीति से भिन्न है । विवरण के लिए हिंदू-गणित-शास्त्र के इतिहास के पृ १६४ का अवलोकन कीजिए ।

घनमूल :

घनमूल निकालने की विधि निम्न श्लोक में बताई गई है :—

अघनाद्भजेद् द्वितीयात् त्रिगुणने घनस्य मूलवर्गेण ।
वर्गस्त्रिपूर्वगुणितः शोध्यः प्रथमाद् घनश्चघनात् ।। (आर्यभटीय गणितपाद)

अर्थात् अन्तिम घनस्थान में से सबसे बड़ी संख्या घटाओ । इसके बाद द्वितीय अघनस्थान से आरम्भ करके जो संख्या बाईं ओर हो उसे घनमूल के वर्ग के तिगुने से भाग दो । इसके बाद प्रथम घन से आरम्भ करके बायीं ओर जो संख्या हो उसमें से त्रिगुणित घनमूल के गुणनफल को तथा अगले घनस्थान से लब्धि के घन को घटाओ । विशेष विवरण के लिए गणित के इतिहास के पृष्ठ १६६ तथा १६७ का अवलोकन कीजिये । घनमूल निकालने की आधुनिक विधि आर्यभट की उपरोक्त विधि का ही संक्षिप्त रूप है ।

त्रैराशिक नियम :

त्रैराशिक नियम को आर्यभट ने निम्न श्लोक में समझाया है :—

त्रैराशिक फलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा ।
लब्धं प्रमाणभजिते तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात् ।।

अर्थात् त्रैराशिक के प्रश्नों में फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करना चाहिए और प्राप्त गुणफल को प्रमाण राशि से भाग देना चाहिए । इस प्रकार भाग करने से जो लब्धि प्राप्त होती है वही इच्छाफल है ।

आर्यभट का निम्न श्लोक बीजगणितीय प्रक्रिया की ओर संकेत करता है । इसी के कारण कोई-कोई इनको बीजगणित का जन्मदाता कह देते हैं ।

गुलिकान्तरेण विभजेद्द्वयोः पुरुषयोस्तु रूपकविशेषम् ।
लब्धं गुलिकामूल्यं यद्यर्थकृतं भवति तुल्यम् ।।

अर्थात् दो पुरुषों की ज्ञात धनराशियों के अन्तर को वस्तुओं की अज्ञात संख्याओं के अंतर से भाग देते हैं । इस प्रकार प्राप्त लब्धि अज्ञात राशि के मूल्य के

बराबर होती है। परमेश्वर (१४३० ई०) ने आर्यभटीय की टीका में इस श्लोक पर लिखा है :—

'अव्यक्तमूल्यानां मूल्यप्रदर्शनमित्याह । गवादिद्रव्यं गुलिकाशब्देनोच्यते रूपकशब्देन पणादिपरिमितं स्वर्णादिद्रव्यम्'। उन्होंने इसको समझाने के लिए निम्न उदाहरण भी दिया है :—

समस्वयो रूपकाणां शतं षष्टिः क्रमाद्धनम् ।
गावष्षड्वणिजश्चाष्टौ तत्र गोमूल्यकं कियत् ॥

अर्थात् दो वनियों के पास कुछ गायें तथा कुछ नकद रुपया है। पहिले के पास १०० रुपये तथा ६ गायें तथा दूसरे के पास ६० रुपये एवं ८ गायें हैं। यदि दोनों की धनराशियाँ जिसमें गायों का भी मूल्य सम्मिलित है, बराबर हों तो दोनों पर कुल कितनी सम्पत्ति है। अर्थात् १०० + ६य = ६० + ८य

इसलिए २ य = ४०, य = २० उत्तर २२०

भू-भ्रमण :

आर्यभट ने पृथ्वी को चलता हुआ तथा नक्षत्रों को स्थिर बनाकर भारत के सर्वप्रमुख ज्योतिषी के पद को ग्रहण किया। यह उनकी इतनी बड़ी सूझ थी कि भारत में ही उनके परवर्तियों में से पृथूदक् (८६० ई०) को छोड़कर १००० वर्ष तक अन्य कोई गणितज्ञ अथवा खगोलज्ञ इस तथ्य को नहीं समझ सका और न समझ सकने के कारण उन्होंने उनकी बड़ी निन्दा की। पश्चिम में १००० वर्ष बाद १६वीं शती के प्रारम्भ में कापरनिकस ने पुनः इस सिद्धान्त की स्थापना की। गैलीलियो को तो १६४२ ई० में इसी बात पर सूली दे दी गई। आर्यभट का उक्त नियम निम्न श्लोक में बताया गया है :—

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम् ॥ (आर्यभटीय गोलपाद)

अर्थात् नौका में बैठा हुआ सीधी ओर को जाने वाला पुरुष जिस प्रकार तटवर्ती अचल वृक्षादिकों को उल्टी दिशा में चलता हुआ देखता है उसी प्रकार लंका में बैठा हुआ व्यक्ति इन अचल नक्षत्रों को पश्चिम की ओर जाते हुए देखता है। प्रसिद्ध टीकाकार पृथूदक् स्वामी (८६० ई०) ने आर्यभट के दैनिक भ्रमण सम्बन्धी उक्त नियम का निम्न श्लोक में समर्थन किया है :—

भपंजरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ ।
उदयास्तमयौ संपादयति नक्षत्रग्रहाणाम् ॥

अर्थात् नक्षत्रगण स्थिर हैं। पृथ्वी ही घूम-घूम कर प्रति दिवस उनका उदय तथा अस्त सम्पादन करती है।

ब्रह्मगुप्त :

ब्रह्मगुप्त प्राचीन भारतवर्ष के सर्वप्रमुख गणितज्ञ थे इन्होंने शून्यपरिकर्म, क्षेत्रमिति के उच्च नियम, बीजगणित तथा अनन्तराशि के नियम समझाये। वह कहते हैं :—

परिकर्मविंशतिमिमां संकलिताद्यां पृथग्विजानाति।

अष्टौच व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः॥ (ब्रा० स्फु० सि०)।

अर्थात् संकलित आदि गणित की २० क्रियाओं तथा ८ व्यवहारों को जो जानता है वही गणक है। वैदिक काल में गणक, ज्योतिषी को कहते थे किन्तु अब गणित स्वतन्त्र सत्ता रखने लगा। टीकाकार पृथूदक् स्वामी के मत में ये २० परिकर्म तथा ८ व्यवहार निम्नलिखित थे जो प्रायः परवर्ती लेखकों ने भी यथावत् माने हैं—

१. संकलित	८. घनमूल	१५. त्रैराशिक
२. व्यवकलित	९. भागजाति	१६. व्यस्त त्रैराशिक
३. प्रत्युत्पन्न	१०. प्रभागजति	१७. पंचराशिक
४. भागहार	११. भागभागजाति	१८. सप्तराशिक
५. वर्ग	१२. भागानुबन्ध जाति	१९. नवराशिक
६. वर्गमूल	१३. भागापवाह जाति	२०. एकादशराशिक
७. घन	१४. भागमाता जाति	२१. भाण्डप्रतिभाण्ड

टिप्पणी :—९-१४ तक के भिन्नों के ६ भेदों में से एक भेद नहीं था।

८ व्यवहार :

१. मिश्रक-व्यवहार	५. चिति-व्यवहार
२. श्रेढ़ी-व्यवहार	६. क्राकचिक-व्यवहार
३. क्षेत्र-व्यवहार	७. राशिक-व्यवहार
४. खात-व्यवहार	८. छाया-व्यवहार

भास्कर प्रथम (६२९ ई०) ने आर्यभटीय की टीका में लिखा है कि आर्यभट के समय में भी ८ व्यवहार और बीज-चतुष्टय (बीजगणित) प्रचलित थे और इनमें से प्रत्येक पर मस्करी, पूरण तथा मुदगल आदि ने स्वतन्त्र ग्रंथ-रचना की थी, किन्तु भाग्यवश वे सब कालकवलित हो गए। अब तो बीजगणित पर सर्वप्रथम ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त का कुट्टकाध्याय ही मिलता है। उस समय कुट्टक समीकरण (Indeterminate equations) के साधन को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता था अतएव बीजगणित को कुट्टक कहा गया। वह कहते हैं :—

प्रायेण यतः प्रश्नाः कुट्टाकाराद्दते न शक्यन्ते।

ज्ञातुं वक्ष्यामितत: कुट्टाकारं सह प्रश्नैः॥

यहाँ मुखद्युति आधार के सम्मुख फलक के क्षेत्रफल के लिए तथा तलद्युति आधार के क्षेत्रफल के लिए शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

यदि $\triangle$, $\triangle'$ क्रमशः मुख तथा तल के क्षेत्रफल हैं और उ ऊँचाई है तो

सूचीछिन्नक का व्यावहारिक घनफल $= \left(\frac{\sqrt{\triangle}+\sqrt{\triangle'}}{२}\right)^2$ उ $=$ घ

" औत्र घनफल $= \frac{\triangle+\triangle'}{२}$ उ $=$ औ

" सूक्ष्म घनफल $= \frac{\text{औ}-\text{घ}}{३}+\text{घ}$

$$= \frac{\text{औ}}{३}+\frac{२\,\text{घ}}{३}$$

$$= \frac{\text{उ}}{६}(\triangle+\triangle')+\frac{\text{ऊ}}{६}\left(\sqrt{\triangle}+\sqrt{\triangle'}\right)^2$$

$$\frac{\text{उ}}{३}\left(\triangle+\triangle'+\sqrt{\triangle\triangle'}\right)$$

यहाँ व्यावहारिक फल, आसन्न मान के लिए तथा औत्रफल निकटतर आसन्न मान के लिए एवं सूक्ष्मफल यथार्थमान (Accurate Value) के लिए आए हैं।

गुणोतर श्रेणी :

ब्रह्मगुप्त ने गुणोतर श्रेणी के योग के नियम भी दिये थे। यथा :—

गुणसंकलितान्त्यधनं विगतैक्यपदस्य गुणधनं भवति।
तद्गुणगुणं मुखोनंव्येकोत्तरभाजितं सारम् ॥

यहाँ अंत्यधन अन्तिम पद के लिए, गुण सार्व अनुपात के लिए, प्रयुक्त हुए हैं।

$$\text{श्रेणी योग} = \frac{\text{आ}\ \text{गु}^{\text{म}-१} \times \text{गु} - \text{आ}}{\text{गु}-१}$$

$$= \frac{\text{आ}\ (\text{गु}^{\text{स}} - १)}{\text{गु}-१}$$

यहाँ अन्त्यधन $=$ आ $\text{गु}^{\text{स}-१}$ तथा

गु, गुणधन (common ratio) के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

यूक्लिड का एक प्रमेय :

ब्रह्मगुप्त ने निम्न श्लोक में यूक्लिड के एक प्रमेय की झलक दिखाई देती है।

वृत्तेशरोनगुणिताद्व्यासाच्चतुराहतात्पदं जीवा।
ज्यावर्गश्चतुराहृतशरभक्तः शरयुतोव्यासः॥

अर्थात् $\sqrt{४ कख \times खग}$ = चछ

इस श्लोक में यदि दो जीवायें परस्पर एक दूसरे को काटती हों तो एक के अन्तः खण्डों की गुणा दूसरे के अन्तः खण्डों के गुणा के बराबर होती है, इस प्रमेय का आभास है।
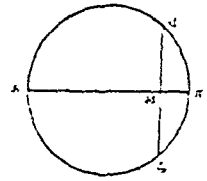
पाइथागोरस प्रमेय :

पाइथागोरस प्रमेय यद्यपि शुल्व-काल से ही भारत में ज्ञात थी किन्तु ब्रह्मगुप्त ने उसको और विस्तृत रूप से निम्न श्लोक में वर्णित किया है। यथा :—

कर्णकृतेः कोटिकृतिविशोध्य मूलं भुजो भुजस्य कृतिम्।
प्रोह्य पदं कोटिः कोटिबाहुकृतियुतिपदं कर्णः॥ (ब्रा० स्फु० सि०)

अर्थात्　$कर्ण^२ - कोटि^२ = भुज^२$

$कर्ण^२ - भुज^२ = कोटि^२$

$कोटि^२ + भुज^२ = कर्ण^२$

उन्होंने कोणास्पृग्वृत्त (चतुर्भुज के परिगत वृत्त) के त्रिज्या के निकालन का भी नियम बताया था।

महावीराचार्य (८५० ई०) :

ब्रह्मगुप्त के उपरान्त दक्षिण के प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ महावीराचार्य हुए। इन्होंने गणित के अनेक नवीन सिद्धान्त निकाले। इनकी बनाई हुई गणितसार-संग्रह अंकगणित की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है। इन्होंने निम्नलिखित गणितीय सिद्धांत बताये :—

लघुतमसमापवर्त्य—बक्षाली गणित के समय (३०० ई०) से ही दो भिन्नों के जोड़ने या घटाने में परस्पर एक दूसरे के हर से ऊपर नीचे गुणा कर दिया करते थे। जैसे—$\frac{२}{३} + \frac{३}{४} = \frac{८}{१२} + \frac{९}{१२}$ और फिर अंशों को जोड़ या घटा दिया करते थे। दो दो का हर साम्य करके अनेकों का हर साम्य भी कर लेते थे। इसी को कलासवर्ण, सवर्णन, एवं हरसाम्यकरण कहते थे। महावीराचार्य ने आधुनिक लघुतम समापवर्त्य का नियम आविष्कृत किया जिसको उन्होंने 'निरुद्ध'

वराहमिहिर ने उक्त संशोधनों का पंचसिद्धांतिका के दूसरे श्लोक में उल्लेख किया है—

पूर्वाचार्यमतेभ्यो यद्यच्छ्रेष्ठं लघुस्फुटं बीजम् ।
तत्तदिहाविकलमहं रहस्यमभ्युद्यतो वक्तुम् ।।

वराहमिहिर भी जनसाधारण से इतने डरते थे कि अपने इन संशोधनों को उन्हें पूर्वाचार्यों के मतों के नाम पर कहना पड़ा। सिद्धान्त-ग्रन्थों में आर्यभटीय, ब्रह्मगुप्त कृत ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त, भास्कर प्रथम कृत लघुभास्करीय तथा महा-भास्करीय, श्रीपति कृत सिद्धान्तशेखर तथा भास्कर द्वितीय कृत सिद्धान्त-शिरोमणि, आर्यभट द्वितीय कृत महासिद्धान्त, मुंजाल कृत लघुमानस इस काल की उत्कृष्ट कृतियां हैं।

उत्तरकाल (१२००—१८०० ई०)

भास्कर की मृत्यु (११८३ ई०) के साथ-साथ हिन्दू-गणित का उत्कर्ष युग समाप्त हो जाता है। अब उसमें मौलिक कृतियों की रचना बहुत कम हो गई। प्राचीन ग्रन्थों पर टीकायें तथा कुछेक ग्रंथ भी लिखे गए किन्तु विषय-विस्तार की दृष्टि से ये अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे। मुस्लिम विजय के साथ-साथ उत्तर भारत में गणित की प्रगति प्रायः स्तब्ध हो जाती है और दक्षिण भारत अब सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक कार्यकलापों का केन्द्र बन जाता है। १३५० ई० के आसपास महेन्द्र सूरि ने अपने फारसी से अनूदित ग्रन्थ में क्रान्ति-वृत्त की तिर्यक्ता २३°.३०′ बतायी तथा विषुवअयन की वार्षिक गति ४५ विकला बताई। नक्षत्रों के शर एवं भोग भी निकाले। केरल के नीलकण्ठ ने १५०० ई० के आसपास एक पुस्तक लिखी, जिसमें निम्न त्रिकोणमितीय फल दिया हुआ है :—

$$\text{स्पज्या ऋ} = \text{ऋ} - \frac{\text{ऋ}^3}{3} + \frac{\text{ऋ}^5}{5} \cdots\cdots$$

मलयालम पाण्डुलेख युक्तिभास में भी यह सूत्र दिया हुआ है। इसको वृथा अब ग्रेगरीश्रेणी के नाम से पुकारते हैं जबकि वह बहुत परवर्ती गणितज्ञ हैं। शंकर वर्मन् कृत सद्रत्नमाला (१५३० ई०) में पाई का १२ स्थानों तक शुद्ध मान दिया हुआ है। इसी युग में कमलाकर (१६०८ ई०) ने सिद्धान्त-तत्व-विवेक तथा नारायण ने गणित-कौमुदी की रचना का एवं नीलकंठ (१५८७ ई०) ने ताजिक नीलकण्ठी नामक वर्षफल-पद्धति का एक सुन्दर ग्रंथ लिखा। उन्होंने इस पारसीक पद्धति का भारत में प्रचार किया। इसमें अरबी-फारसी के शब्द भी बाहुल्य रूप से ग्रहण किए गए हैं।

सम्राट जगन्नाथ :

सम्राट जगन्नाथ ने सन् १७३१ ई० में टाल्मी के अल्मेजिस्ट तथा युक्लिड

भास्कर द्वितीय :

मध्ययुग के अंतिम तथा अद्वितीय गणितज्ञ द्वितीय भास्कराचार्य ही थे जिन्होंने बीजगणित तथा लीलावती को लिखकर संसार का बड़ा उपकार किया। संसार की अनेक भाषाओं में इन ग्रंथों का अनुवाद भी हो चुका है। प्राचीन बीजगणित पर अब केवल भास्कर का बीजगणित ही उपलब्ध है। भास्कराचार्य ने लीलावती में संक-गणित को अतीव सुन्दर तथा साहित्यिक भाषा में समझाया था। भास्कराचार्य ने शून्यपरिकर्म में ब्रह्मगुप्त तथा महावीराचार्य की अशुद्धियों को ठीक किया। $\frac{०}{०}$ का मान बताया। खहर (Infinity) राशि का मान अनन्त बताया, त्रिभुज तथा चतुर्भुज के क्षेत्रफल की अशुद्धियों को भी ठीक किया, गोले के क्षेत्रफल तथा घनफल के यथार्थ सूत्र निकाले।

अनिर्धार्य समीकरणों का व्यापक साधन :

अनिर्धार्य समीकरणों का जितना इन्होंने विकास किया उतना किसी अन्य गणितज्ञ ने नहीं किया। इन्होंने उनके व्यापक साधन निकाले। समीकरण न र² + १ = य² के साधन की चक्रवाल-विधि के बताने के कारण हैंकल, कैंटर आदि पाश्चात्य गणितज्ञ इनको लगरांज के पूर्व संख्यासिद्धांत विषय का सबसे बड़ा अन्वेषक मानते हैं। इनकी सुलझाई हुई समस्याओं पर योरपीय वैज्ञानिक ५०० साल बाद तक उलझते रहे।

अज्ञात राशियों के संकेताक्षरों का विकास :

भास्कराचार्य ने अव्यक्त राशियों को वर्णमाला के अक्षरों से द्योतित करके बीजगणित को बहुत कुछ अग्रसर किया। इनसे पूर्व अव्यक्तराशियों को वर्णों के नामों, कालक, नीलक, पीतक, हरितक आदि से अथवा उनके संक्षिप्त रूप का०, नी०, पी० आदि से द्योतित किया जाता था। इन्होंने कहा ऐसी राशियाँ अनेक हो सकती हैं और उनको वर्णों (रंगों) के नाम से कहाँ तक द्योतित किया जाय, क्यों न वर्णमाला के अक्षरों से उनको द्योतित कर लिया जाय। इन्होंने नियम बना दिया 'अथवा कादीन्यक्षराणि अव्यक्तानां संज्ञा असंकरार्थं कल्प्याः'।

अवकलन :

वे चलन-कलन (Differential Calculus) के आविष्कार के अग्रदूत बने। सिद्धान्त शिरोमणि के गोलाध्याय में वे कहते हैं :—

"त्रिज्यार्धस्य कोटिज्यागुणास्त्रिज्याहर : फलं दोर्ज्ययोरन्तरम्"

अर्थात किसी भी गोलार्द्ध में दोर्ज्याओं का अन्तर, $\frac{\text{कोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ के बराबर होता है अर्थात्,

$$\text{ज्या ऋ}' - \text{ज्या ऋ} = \frac{\text{कोज्या ऋ}}{\text{त्रि}}$$

पहिले स्थान का कोणांक ऋ है तथा अत्यल्प दूरी के उपरांत कोणांक ऋ' है अतएव ज्या ऋ'—ज्या ऋ, ज्या का अत्यणुचलन ही हुआ, इस चलन का कलन उन्होंने $\frac{\text{कोज्या ऋ}}{\text{त्रि}}$ से व्यक्त किया। आजकल के नियम के अनुसार

$$\frac{\text{अ}}{\text{अर}}\;\frac{\frac{\text{ज्या र}}{\text{त्रि}}}{\text{त्रि}} = \frac{\frac{1}{\text{त्रि}}\;\frac{\text{कोज्या र}}{\text{त्रि}}}{\text{त्रि}}$$

$$\text{अर्थात}\;\frac{\text{अ}}{\text{अर}}\left(\text{ज्या}\,\frac{\text{र}}{\text{त्रि}}\right) = \frac{1}{\text{त्रि}}\;\text{कोज्या}\;\frac{\text{र}}{\text{त्रि}}$$

$$\frac{d}{dy}\,\text{Sin}\,\frac{y}{r} = \frac{1}{r}\,\text{Cos}\,\frac{y}{r}$$

यहाँ $\frac{\text{र}}{\text{त्रि}}$ में र कोण है, त्रि त्रिज्या है, कोण को त्रिज्या से भाग देकर रेडियन माप में परिणत कर लिया गया है। यदि $\frac{\text{र}}{\text{त्रि}}$ को ऋ (रेडियन माप घोटा) से द्योतित करें तो उक्त भास्कर का नियम आ जाता है। त्रि से भाग इसलिए दिया गया है क्योंकि पहिले ज्या आदि अनुपात नहीं थे, उनको अनुपात करने के लिए त्रि से भाग दिया है पहिले ज्या ही त्रिज्या थी।' इसी को यदि त्रिज्या से भाग दे देवें तो आजकल की ज्या हो जाती है।

भास्कर के उक्त उद्धरण में अंग्रेजी ($d\text{Sin}\,\theta = \text{Cos}\,\theta\, d\theta$) नियम प्रतिपादित किया गया है। उन्होंने चन्द्र की तात्कालिक गति के सम्बन्ध में उक्त नियम बनाया था। गति दो प्रकार की बताई थी पहिली स्थूल दूसरी तात्कालिकी (सूक्ष्म)। वे कहते हैं—

वराहमिहिर ने उक्त संशोधनों का पंचसिद्धांतिका के दूसरे श्लोक में उल्लेख किया है—

पूर्वाचार्यमतेभ्यो यद्यच्छ्रेष्ठं लघुस्फुटं बीजम् ।
तत्तदिहाविकलमहं रहस्यमभ्युद्यतो वक्तुम् ।।

वराहमिहिर भी जनसाधारण से इतने डरते थे कि अपने इन संशोधनों को उन्हें पूर्वाचार्यों के मतों के नाम पर कहना पड़ा। सिद्धान्त-ग्रन्थों में आर्यभटीय, ब्रह्मगुप्त कृत ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त, भास्कर प्रथम कृत लघुभास्करीय तथा महाभास्करीय, श्रीपति कृत सिद्धान्तशेखर तथा भास्कर द्वितीय कृत सिद्धान्त-शिरोमणि, आर्यभट द्वितीय कृत महासिद्धान्त, मुंजाल कृत लघुमानस इस काल की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं।

उत्तरकाल (१२००—१८०० ई०)

भास्कर की मृत्यु (११८३ ई०) के साथ-साथ हिन्दू-गणित का उत्कर्ष युग समाप्त हो जाता है। अब उसमें मौलिक कृतियों की रचना बहुत कम हो गई। प्राचीन ग्रन्थों पर टीकायें तथा कुछेक ग्रंथ भी लिखे गए किन्तु विषय-विस्तार की दृष्टि से ये अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे। मुस्लिम विजय के साथ-साथ उत्तर भारत में गणित की प्रगति प्रायः स्तब्ध हो जाती है और दक्षिण भारत अब सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक कार्यकलापों का केन्द्र बन जाता है। १३५० ई० के आसपास महेन्द्र सूरि ने अपने फारसी से अनूदित ग्रन्थ में क्रान्ति-वृत्त की तिर्यक्ता २३°.३०′ बतायी तथा विषुवअयन की वार्षिक गति ४५ विकला बताई। नक्षत्रों के शर एवं भोग भी निकाले। केरल के नीलकण्ठ ने १५०० ई० के आसपास एक पुस्तक लिखी, जिसमें निम्न त्रिकोणमितीय फल दिया हुआ है :—

$$\text{स्पज्या } ऋ = ऋ - \frac{ऋ^3}{3} + \frac{ऋ^5}{5} \ldots\ldots$$

मलयालम पाण्डुलेख युक्तिभास में भी यह सूत्र दिया हुआ है। इसको वृथा अब ग्रेगरीश्रेणी के नाम से पुकारते हैं जबकि वह बहुत परवर्ती गणितज्ञ हैं। शंकर वर्मन् कृत सद्रत्नमाला (१५३० ई०) में पाई का १२ स्थानों तक शुद्ध मान दिया हुआ है। इसी युग में कमलाकर (१६०८ ई०) ने सिद्धान्त-तत्व-विवेक तथा नारायण ने गणित-कौमुदी की रचना का एवं नीलकंठ (१५८७ ई०) ने ताजिक नीलकण्ठी नामक वर्षफल-पद्धति का एक सुन्दर ग्रंथ लिखा। उन्होंने इस पारसीक पद्धति का भारत में प्रचार किया। इसमें अरबी-फारसी के शब्द भी बाहुल्य रूप से ग्रहण किए गए हैं।

सम्राट जगन्नाथ :

सम्राट जगन्नाथ ने सन् १७३१ ई० में टाल्मी के अल्मेजिस्ट तथा युक्लिड

के ऐलीमेन्ट्स का फारसी से संस्कृत में अनुवाद किया जिनके नाम सम्राट्सिद्धान्त तथा रेखागणित रखे। रेखागणित की वर्तमान हिंदी-शब्दावली बहुत कुछ इसी ग्रंथ पर आश्रित हैं।

वर्तमान काल (१८०० ई०—अद्यावधि)

वर्तमान युग में नृसिंह वापूदेव शास्त्री (१८२१ ई०) तथा सुधाकर द्विवेदी ने अनेक पाश्चात्य विषयों पर हिंदी गणित की पुस्तकों का सृजन किया और हिंदी के वर्तमान गणितीय साहित्य की नींव डाली। वापूदेव ने रेखागणित, त्रिकोणमिति, सायनवाद, अंकगणित आदि अनेक ग्रन्थ लिखे एवं पूज्य द्विवेदी जी ने दीर्घवृत्त-लक्षण, गोलीय रेखागणित, समीकरण-मीमांसा, चलन-कलन आदि अनेक ग्रंथ तथा ब्रह्मगुप्त एवं भास्कर के ग्रन्थों की टीकायें रचकर प्राचीन गणित को पुन: जनता के सम्मुख रखा। शंकर वालकृष्ण दीक्षित (१८५३ ई०) ने प्रसिद्ध ज्योतिपशास्त्र के इतिहास की रचना की। वर्तमान युग में डॉ० विभूतिभूषण दत्त तथा डॉ० अवधेश नारायणसिंह ने हिंदू-गणित-शास्त्र के इतिहास को लिखकर अपना नाम अमर कर लिया। इस समय डा० कृपाशंकर भी हिंदू-गणित पर अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। उन्होंने लुप्तप्राय श्रीधर के पाटीगणित को स्वचरित टीका सहित प्रकाशित किया है तथा इस समय भास्कर प्रथम की कृतियों का भी इसी प्रकार प्रकाशन कर रहे हैं।

अध्याय २

गणितीय शब्दावली का ऐतिहासिक अध्ययन

आदिकाल (३००० ई० पू०—५०० ई० पू०)

प्राचीन भारतीय गणित के संक्षिप्त इतिहास को लिखने के उपरान्त अब मैं अपने मुख्य विषय प्राचीन गणितीय शब्दावली के अध्ययन पर आता हूँ। गणितीय शब्दावली का विशाल भवन कैसे तैयार हुआ, इसका मैं अब विशद विवेचन कर रहा हूं। हमारी हिंदी की वर्तमान गणितीय शब्दावली की पृष्ठभूमि प्राचीन भारतीय गणित ने तैयार कर रखी है तथा प्राचीन भारत की गणितीय शब्दावली का सृजन वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो जाता है।

वैदिक साहित्य की गणितीय शब्दावली को देन :

वर्तमान संख्याओं के १ से लेकर सहस्र तक के हिंदी नाम तथा अरब शब्द साक्षात् वेदों से उद्भूत हैं। शून्य शब्द भी वैदिक है यह अशून्य के साथ ऋग्वेदीय खिलसूक्त (२।११।२) में आता है यद्यपि इसका अर्थ खाली आदि था। १६, २६, ३६, ४६, ५६······६६ इन संख्याओं के वाचक शब्द वैदिक साहित्य में ही दो प्रकार के थे। एकवे जो आगे की दश की गुणज संख्या से १ कम कहकर बोधित किए थे तथा दूसरी वह जो पिछली दश की गुणज संख्या में ६ जोड़ने से व्यक्त किए थे। वर्तमान उन्नीस, उन्तीस······उनहत्तर यह शब्द प्रथम क्रम से सम्बन्धित हैं और नवासी तथा निन्नयानवे द्वितीय क्रम के स्मारक हैं। संस्कृत में इनको ऊनाशीति तथा नवनवति कहते हैं। भिन्नों के वर्तमान शब्द पउआ, तीन पाव वैदिक पाद तथा त्रिपाद से बने हैं। अन्य उन वैदिक शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है जो बाद में गणित ने अपना लिए—

अध ऋ ३।५३।१६
अंक ऋ १।१६२, १३
अणु काठक १२।१३ शौनक ११.६.१०
मैत्रायणी संहितायें
अभ्यर्ध शौ २०।१३१।२२

अनन्त खिलसूक्त ७।३।१
अन्तर ऋ १।३१।१३
अन्तरिक्ष मा ४।७ का, तै
अन्द मा १२।७४ का १३।५।१३
अपभरणी (भरणी नक्षत्र)

चतुर्भुज खि सा ३३।२२
चन्द्र ऋ ६।६
चिति तै ५, २
चित्रा ऋ ८।४६
चित्रापूर्णमास: तै ७।४
ज्या ऋ १०।१६६।३, ६।७५।३
ज्योतिर्विद तै १।४
ज्येष्ठा ऋ ४,३३ ऋ १।१००
तपस्य: (फाल्गुन मास)मा १५।५७
तारक मै, तै
तिष्य मै २, १
न्यर्बुद खिल ४,११
न्यून तै ५,१
त्रयस्त्रिंशद् देवताभि काठ
त्रयोदशी मा २५।४
त्रयोदशमास: (संवत्सर:)
त्रिभुज शौ ८, ८ मै १६।१८
द्वादशमास: (संवत्सर:)
घन ऋ १।३६
धूमकेतु ऋ ८।४३
नक्षत्र ऋ ६।६७
नक्षत्रदर्श मा ३०।१०
नवस्रक्ति ऋ ८।७६
नाभि ऋ १।१३९
पक्ष ऋ ६।४७, १९
ऋ १०।११६, ११
पंक्ति ऋ १०।११७, ८
पथ ऋ १,४२।२
पद ऋ १।१६४।३५
परम ऋ १।२२।२०
परास ऋ ४।२।१६,१०।१५।१
परिधि ऋ ३।३३।६
१।११५।७, १०।१३०।३
परिवत्सर ऋ १०।६२।२
परिवृत ऋ २।१७।१
पर्व ऋ १।६१।१२,४।१९।९
पात ऋ १।१३६।५
पाद ऋ ७।३२।२
पूर्ण ऋ १।८२।४
पृथिवी ऋ १।२२।१३
प्रावृषि ऋ ७।१०३।३
बीज ऋ ५।५२।१३
बृहस्पति ऋ १।६२।३
भद्रा ऋ १।८३।३
भाग ऋ १।२०।८
भृगु ऋ ३।२।४
यन्त्र ऋ १।३४।१
युग ऋ १।१४४।४,१८४।३,२।२।२
योग ऋ १।५।३, ।२७।११
रेवती ऋ ।६१।६, १०।३५।४
वज्र ऋ ७।८।३
वाराणि ऋ ६।६७।४
वासर ऋ ८।४८।७
वृत ऋ १।१५५।६
वृद्धि ऋ १।१०।२
शुक्र ऋ १।१०।५, ७।१।८
शर ऋ ८।७०।१४
शुद्ध ऋ १।१६४।४०
शेष ऋ १।९३।४
श्रेणि ऋ १०।६१।१२०
श्रेणय: ऋ १०।१४२।५
संवत्सर ऋ १।११०।४,१०।१९०।२
समा ऋ १०।१२४।४
समान ऋ १।११३।३
सहस्य ऋ ७।४२।६
सिन्धु ऋ १।६५।३

सूर्य ऋ १।७।३
सोम ऋ १।६१।६
स्थिर ऋ १।१०१।४
हस्त ऋ ६।५४।१०

वैदिक शब्दावली की इस सूची में ऊर्जा, एकक, प्रतिदर्श, परास तथा आयतन शब्द विशेष उल्लेखनीय है जो अब अंगरेजी के क्रमश: इनर्जी, यूनिट, सैंपल, रेंज तथा वोल्यूम शब्दों के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। देखने में ये नए शब्द लगते हैं तथा बहुतों ने इनको नया समझकर रखा भी होगा किन्तु उनको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कम से कम ये शब्द नए नहीं हैं, चाहे अर्थ नए हो सकते हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों की शब्दावली :

वेदों के उपरांत ब्राह्मण ग्रंथों के भी कुछ शब्द गणितीय शब्दावली ने अपना लिए हैं। यथा—

अक्ष्णया श ३,४५
अधर तै आ० ४·३८·१
अभिमुख ऐ ८,१०
अभ्यास सा १।५।४
अयुत तै २, ७
अवलम्ब जै १३७
अव्यक्त तै आ ४
आढक सा १, ८, १३
आदि गो १, १२८
अन्त तै २।७।१३
आयत ऐ ५।५ शां २२८
उत्तर ऐ ४।१५
ऊर्ध्व ऐ १।२२
एकशत (एक सौ)
कर्ण ऐ ५।२२
ज्योतिष आ १।५७२
क्रय शा ४।६
क्षय, वृद्धि श ४।६
क्षेत्र ऐ ८।५०
गुणित गो २, ३, ७
ग्रीष्म शा ३, ४
चैत्र शा आ तै
तिर्यक् श १

त्वरमाण श ६, ३
दर्श पूर्णमास ऐ ३, ४०
ध्रुव श ३, ५, २
नवस्रक्ति ऐ आ २, ३
परिमण्डल श ६, ७
पिण्ड श ५।५
मूल ऐ २।३२
पृष्ठ तां २२, १, ३
प्रतिदर्श का १, ३, ४
प्रतिमान तै २, ५, ८
प्रधि श १४, ४
प्रमेय जै ११५
फलक ऐ आ १।२, ३
फाल्गुन का १।६
परिधि शा १, ३ ऐ १, २८
बुध तां २४ जै १४६
भाजन श १, ८
मृगव्याध ऐ ३,३३
मृगशिर का १, १, २
मृगशीर्ष श २, २
वर्ग शां आ ४।७ सा १, ४
वर्ष ऐ आ
वर्षा शरद श ८, ३

विकर्ण ऐ ४, १६ तै १, २	शिशुमार जै १५०, १६४
विज्ञान ऐ आ २, ३	शिशिर श २, १
विमित श ३, १	शून्य श २।३
विमा तै आ ४।५	संख्या श ब्रा ७।३१।४३
वियुत श ८।५	संवत् शां १६।८
विषुवत् (विपुवत्) ऐ ५, ७	संतत शां आ ४, ५
वृत्त तै १, २	सप्तर्षि श ८, ४, ३
मेष श ३, ३४	समंक श ३, ६
वृष जै १८०	समष्टि श १४, ६
व्यास तै अ १, ६	सामान्य गो २, २
राशि सा ३, ४	हायन श ५, ३
राहूगण श १	

इनमें अव्यक्त, आयत, परिमंडल, प्रमेय, फलक, विकर्ण विमित, व्यास, शून्य, संख्या, पृष्ठ, भाजन तथा समष्टि शब्द विशेष उल्लेखनीय हैं। अव्यक्त बाद को अव्यक्त गणित तथा अव्यक्त राशि के साथ बहुत प्रयुक्त हुआ। परिमंडल को बौद्ध तथा जैन काल में दीर्घवृत्त के अर्थ में प्रयुक्त किया। आयत, शून्य, व्यास, फलक, तथा संख्या शब्द तो गणित के प्रसिद्ध शब्द आज भी हैं। विकर्ण, भूमिति में डायगनल के लिए तथा पृष्ठ शब्द सरफेस के लिए प्रयुक्त किया गया। समष्टि, यूनिवर्स तथा पौपूलेशन सम्बन्धी सांख्यिकीय भावों में प्रयुक्त किया जाता है। पाठक सम्भवतः यह पूछ सकते हैं कि वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथ तो धार्मिक ग्रंथ हैं इनमें गणितीय शब्दावली की खोज क्यों की जा रही है किन्तु इसके उत्तर में मैं सर ब्रजेन्द्र 'सील' की निम्न उक्ति पर्याप्त समझता हूँ :—

"प्राचीन भारत में ज्ञान को एक समष्टि रूप में देखा जाता था। प्राचीन हिन्दू धर्म, दर्शन, साहित्य तथा प्राकृतिक विज्ञान में कोई विभाग-रेखा नहीं खींचते थे। फलतः उनके वैज्ञानिक विचार विधिविज्ञान, उनके अनुभव तथा औद्योगिक क्षेत्रों में उनके प्रयोग वेदों, ब्राह्मणों तथा उपनिषद् आदि धार्मिक ग्रंथों में इतस्ततः विकीर्ण हैं।"

शुल्व-सूत्र :

ब्राह्मण-ग्रंथों के उपरांत शुल्व-सूत्र आते हैं। इनका भी गणितीय शब्दावली में पर्याप्त भाग है। रेखागणित की शब्दावली का यहीं से प्रारम्भ होता है। शुल्व-सूत्रों की शब्दावली नीचे दी जा रही है—

अन्तराल आप० पृ० १८३	अंस (कोण) आप० पृ० ७२
अंश (भाग, भिन्न)	अक्षण्या रज्जु बौ० पृ०

शेष बौ शु० १।५८	सम (वर्ग) आप० पृ० २६
संख्या का० शु० १।५	समास (योग)

उपरोक्त सूची में इपु शब्द विशेष उल्लेखनीय है। इपु समद्विबाहु त्रिभुज के शीर्षलंब के लिए आया है जो वाण जैसा ही लगता है। बाद को उमास्वाति ने भी आकृति साम्य के कारण वृत्त की अ व रेखा को इपु शब्द से वाचित किया। दोनों की एतत-सम्बन्धी पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं—

क
ख घ ग

'यावत्प्रमाणानि समचतुरस्राण्येकीकर्तुं चिकीर्षेदेकोनानि तानि भवन्ति तिर्यक् द्विगुणान्येकत एकाधिकानि त्र्यस्रेर्भवति तस्येपुस्तं तत्करोति का० शु० ६।७
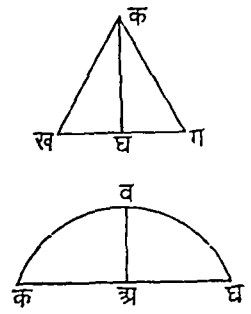
$$क घ^2 = क ग^2 — ग घ^2 = \frac{(प+१)^2}{२} \times भ^2 — (प—१)^2$$

यहाँ प वर्गों की संख्या तथा भ उसकी एक भुजा है।

उमास्वाति ने कहा है—

विष्कंभस्य चतुर्गुणमूलंज्या। ज्याविष्कंभयोर्वर्गविशेषमूलं विष्कंभाच्छोध्यं। शेषार्धमिपुः। इपुवर्गस्य पड्गुणस्य ज्यावर्गयुतस्य मूलं धनुःकाष्ठम्।

अर्थात्

$$इ = \frac{१}{२}(वि — \sqrt{वि^2 — जी^2})$$

यहाँ इ = इपु, वि = विष्कंभ तथा जी = जीवा

बाद को सूर्य-सिद्धान्त में यही इपु, उत्क्रमज्या अथवा शर कहलाने लगा। अन्तर केवल यही है कि बाद को व्यासांश के स्थान पर चाप क घ की उत्क्रमज्या अथवा शर कहलाया।

वेदांगज्योतिष :

शुल्व सूत्रों के उपरांत वेदांग ज्योतिष ने गणित की मूलभूत प्रतिक्रियाओं के शब्द प्रदान किए। गणित शब्द स्वयं वेदांग ज्योतिष का है :—

अधम (हर)	आवाप (जोड़)
अधिमास	उत्तम (अंश)
अभ्यास (गुणा)	कुडुव (भार-प्रमाण)
अयन	गणित
अयुज (विषम)	गुण, गुणित

त्र्यंश (१।३)
द्रोण (भार प्रमाण)
द्वादशक (१२ के गुणज)
नाडिका (घटी)
पल (भार-प्रमाण)
भिन्न
भूगोल
मण्डल
मास
मुहूर्त
युत (धन, जुड़ा हुआ)
रूप (एक)
विभाजन (भाग)
शोधन (घटाना)
संख्याय (गणना करके)
स्तृ (नक्षत्र)
हृत (भाजित)

यहां उत्तम और अवम जो क्रमश: अंश और हर के लिए प्रयुक्त किए गए हैं, विशेष उल्लेखनीय शब्द हैं। इनके देखने मात्र से यह प्रतीत होता है कि ये ऊपर और नीचे लिखे जाते थे। इससे यह अनुमान होता है कि भिन्नों की लेखन-प्रणाली वेदांग ज्योतिष काल में ज्ञात थी। रूप शब्द भी महत्वपूर्ण है। यह यहां एक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी अर्थ में इसका परवर्ती गणित के ग्रंथों में बाहुल्य रूप से प्रयोग हुआ है। गणित शब्द भी सर्वप्रथम वेदांग ज्योतिष में ही प्रयुक्त हुआ था।

सूत्र ग्रंथ :

तैत्तिरीय संहिता (प्रपाठक २, अनुवाक ११-२०) तथा वाजसनेयि संहिता एवं गृह्यश्रौतसूत्र तथा आश्वलायन श्रौतसूत्र में युग्म तथा अयुग्म शब्द सम विषय के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। वृद्धि, सरल वृद्धि तथा चक्रवृद्धि शब्द व्याज, साधारण व्याज, तथा चक्रवृद्धि व्याज के अर्थ में गौतम धर्म-सूत्र में प्रयुक्त हुए हैं।

शैशव काल (५०० ई० पू०—५०० ई०)

बौद्ध साहित्य की गणितीय शब्दावली को देन :

दशगुणोत्तर संख्याओं की वर्तमान शब्दावली में हजार के ऊपर एक एक नया नाम छोड़ के पूर्व नाम के पहिले दस लगा देते हैं जिससे कि १ स्थान मान भी बढ़ जाता है और नया नाम भी नहीं लेना पड़ता है। इस प्रकार दस हज़ार, दस लाख, दस करोड़ आदि अनेक संख्याओं के नाम बचा लिए हैं। यह प्रवृत्ति हमने बौद्ध साहित्य से ग्रहण की। हमारे यहां तो अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्युर्बुद, समुद्र, मध्य, अंत और परार्ध प्रत्येक स्थान के पृथक्-पृथक् नाम थे। इन वैदिक नामों में से आधे तो उक्त प्रवृत्ति के कारण व्यर्थ हो गए और आधे में से अर्बुद को छोड़कर शेष परिवर्तित कर दिए गए। अर्बुद (अरब) का भी मान बदल [illegible] इसके लिए अब कोटि शब्द प्रयुक्त होने लगा। बौद्ध साहित्य [illegible] चले जाते हैं। यथा

काच्चायन कृत पालि व्याकरण में से संख्याओं की एक मनोरंजक सूची नीचे दी जा रही है :—

१० × दस = सत
१० × सत = सहस्स
१० × सहस्स = दस सहस्स
१० × दस सहस्स = सत सहस्स
१० × सत सहस्स = दस सत सहस्स
१० × दस सत सहस्स = कोटि

इनमें से भी जनता ने केवल दस सहस्स ही लिया। शेष सत सहस्स, दस सत सहस्स ग्रहण न किए क्योंकि अधिक नाम छोड़ना यह भी सुविधाजनक नहीं था। सुविधा के लिए ही नाम रक्खे जाते हैं। वैदिक काल की संज्ञायें अयुत, नियुत, प्रयुत आदि यद्यपि छोटी थीं किन्तु अधिक विद्वत्तामय शब्द थे। उपसर्गों की भरमार थी, जिनमें से उच्चारण साम्य के कारण अर्थभेद करना कठिन हो जाता था। तांड्य ब्राह्मण में नियुत के लिए प्रयुत और प्रयुत के लिए नियुत प्रयुक्त किया गया है। इधर बौद्ध साहित्य ने भी इनके अर्थ गड़बड़ कर दिये। अर्जुन के पूछने पर क्या नवयुवक तुम कोटिगुणोत्तर संख्याओं को जानते हो। बोधिसत्व ने कहा 'सौ कोटि अयुत कहलाता है, सौ अयुत नियुत, सौ नियुत कंकर......। यहाँ अयुत नियुत के अर्थ कितने बदल दिए गये। अतएव ये शब्द छोड़ दिये गए। लाख शब्द बौद्ध साहित्य में चर्यापिटक में १०० कोटिवर्ष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। पुनः यह दाथावंस में वर्तमान अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत-साहित्य में याज्ञवल्क्य स्मृति, हरिवंशपुराण तथा ब्रह्मांडपुराण में यह शब्द आया है। हो सकता है बौद्ध साहित्य से ही यह शब्द संस्कृत साहित्य में आ गया हो। संस्कृत गणितज्ञों ने संभवतः इसको इसी कारण से बहुत दिनों तक नहीं अपनाया। अंत में जैन गणितज्ञ श्री महावीराचार्य (८५० ई०) ने इसका प्रचार किया, और तब से हमारी गिनती में इसका प्रयोग होना प्रारंभ हो गया। परवर्ती श्रीधराचार्य ने भी इसको अपना लिया। कोटि शब्द वाल्मीकि रामायण, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रयुक्त हुआ है। बौद्ध साहित्य में जातकों तथा कुल्लनिदेश में इसका प्रयोग हुआ है। वाल्मीकि रामायण के निम्न श्लोक में इसका प्रयोग देखिये :—

शतैःशतसहस्रैश्च वर्तन्ते कोटिभिस्तथा।
अयुतैश्चावृता वीर शंकुभिश्च परंतप॥

यदि यह वाल्मीकि रामायण का मूल श्लोक है तब तो कोटि शब्द संस्कृत साहित्य का है, नहीं तो यह बौद्ध साहित्य से आया है। कोटि शब्द आर्यभटीय में भी मिलता है, किन्तु लक्ष नहीं। दूसरे कोटि पालि के अविकृत रूप में भी मिलता है, अतः प्रमाण दोनों पक्षों में समान मिलते हैं।

बौद्ध साहित्य में गणित के स्थान पर 'संख्यान' शब्द चलता था। स्थानांग-सूत्र (३५० ई०पू०) तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र (३२२ ई०पू०) में भी इसी शब्द का प्रचार है। यथा :—

वृतचौलकर्मा लिपिं संख्यानंचोपयुंजीत्॥ (कौ०अ०)

अर्थात् चूड़ाकर्म के बाद लेखन-कला तथा गणित सिखाये जायँ। कौटिल्य अर्थशास्त्र में गणितज्ञ के स्थान पर गाणनिक्य शब्द प्रयुक्त हुआ है, जो गणना से बना है। गणना शब्द का भी बौद्ध साहित्य में प्रचुर प्रयोग है। प्राचीन बौद्ध साहित्य में 'मुद्रा' (मुद्दा) गणना और संख्यान तीन प्रकार का गणित बताया गया है। मुद्रा उंगलियों पर लगाये जाने वाले गणित को, गणना साधारण गणित को जो मन में ही लगाया जा सकता है तथा संख्यान उच्च गणित को कहते थे। विनयपिटक, दिव्यावदान, मिलिंदपञ्हो तथा दीर्घनिकायं में इनका उल्लेख है।[1] बौद्ध साहित्य में लेखा का अर्थ लेखन कला अथवा चित्रकला था।[2] पूज्य सुधाकर द्विवेदी जी के मत में लेखा का 'हिसाब' अर्थ भी बौद्धकाल से चला आता है। रूप शब्द विनयपिटक (१।७७) में चित्रकला के अर्थ में आया है। धम्म-संगनी में इलिप्स के लिए परिमंडल शब्द आया है, जिसको टीकाकार बुद्धघोष ने कुक्कटांड-संथान तथा पीतवत्थू टीका में आयतवृत्त कहा था। आयतवृत्त से ही वर्तमान दीर्घवृत्त शब्द का जन्म हुआ है।

जैन साहित्य की गणितीय शब्दावली को देन :

सूर्यप्रज्ञप्ति (५०० ई०पू०) में निम्नलिखित रेखागणित के शब्द आये हैं (सूत्र ११, १६,२५,१००)।

त्रिकोण	Triangle	विषम चतुष्कोण	Oblique parallelogram
समचतुरस्र	Square	समचक्रवाल	Circle
पंचकोण	Pentagon	विषम चक्रवाल	Ellipse
विषमचतुरस्र	Oblique square	चक्रार्ध चक्रवाल	Semi-ellipse
समचतुष्कोण	Even Parallelogram	चक्राकार	Segment of a sphere

वर्तमान शब्द, कोण, त्रिकोण तथा चतुष्कोण सूर्यप्रज्ञप्ति की देन हैं। हिन्दी में कोण से बिगड़ कर कोना शब्द भी बना है किन्तु इसका अर्थ अंग्रेजी के 'कौर्नर' का है न कि 'ऐंगिल' का। हिन्दी की यह विशेषता है कि संस्कृत का मूल शब्द भी इसमें है और उसका विकृत रूप भी इसमें प्रयुक्त होता है। दोनों के अर्थ किन्तु विभिन्न होते हैं। इसी प्रकार इस भाषा की शब्दावली विकसित हुई है।

स्थानांगसूत्र :

स्थानांगसूत्र में निम्नलिखित गणितीय शब्द प्रयुक्त हुए हैं :—

परिकम्म (संख्यान) (परिकर्म) ववहार (संख्यान) (व्यवहार)

---

१. दीर्घनिकाय १, पृ० ५१, विनयपिटक ४, पृ० ७, दिव्यावदान ई०बी० कावेल तथा आर ए नील द्वारा सपादित कैम्ब्रिज १८८६, पृ० ३,२६,८८, मिलिंद पञ्हो, राइसडेविस कृत अनुवाद, आक्सफोर्ड १८९० ई०,पृ० ९१।

२. विनयपिटक ४।७,१२८।

ववहार (संख्यान) (व्यवहार)	एकतोऽनन्त
रज्जू (,,) (रज्जु संख्यान)	द्विविधानन्त
रासी संख्यान (राशि संख्यान)	देशविस्तारानन्त
कलासवन्न (कलासवर्ण)	सर्वविस्तारानन्त
जावंतावति (यावत्तावत्)	शाश्वतानन्त
वग्गो (वर्ग)	भंग (स्थान-भंग और क्रम-भंग)
वग्गवग्गो (वर्गवर्ग)	ओज (विषम संख्या)
गणिय (गणित)	युग्म (सम संख्या)
सुहुम (सूक्ष्म)	
विकल्पगणित (क्रमचय तथा संचय)	

इन शब्दों में से यावत्तावत् शब्द विशेष उल्लेखनीय है। यह परवर्ती बी गणित की पुस्तकों में प्रथम अज्ञात राशि के लिए प्रयुक्त किया गया है। वर्ग, वर्ग आदि शब्द भी बीजगणितीय अर्थों में प्रथम बार यहाँ प्रयुक्त हुए हैं। इससे ज्यामितीय अर्थ में यह प्रयुक्त होते थे। गणित शब्द का प्राकृत रूप गणिय भी वि उल्लेखनीय है। गणित स्वतंत्र आधुनिक विषय के रूप में प्रथम बार यहीं देखने मिलता है। यद्यपि इससे पूर्व गणितानुयोग में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है वि गणितानुयोग स्वयं कालविधान जैसे अर्थ में ही प्रयुक्त होता था। अतएव उसका प्रयोग वेदांग-ज्योतिष के गणित शब्द से बहुत कुछ मिलता है अर्थात् गणित एक प्रकार से उस समय ज्योतिष अर्थ था।

भगवती सूत्र के शब्द :

संख्येय	घन (ठोस)
असंख्येय	घनत्र्यस्र (त्रिभुजाधार सूचीस्तंभ)
संयोग (संचय)	घनचतुरस्र (घन वर्ग)
त्र्यस्र	घनायत (आयत समांतर फलक)
चतुरस्र	घनवृत्त (गोला)
आयत	घनपरिमंडल (दीर्घवृत्तीय वेलन)
वृत्त	वलयवृत्त (वृत्तीय वलय)
परिमंडल (दीर्घवृत्त)	वलयत्र्यस्र (त्रिभुजीय वलय)
प्रतर (समतल)	वलय चतुरस्र (चतुर्भुजीय वलय)

यहाँ परिमंडल शब्द दीर्घवृत के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। पहिले चुके हैं कि इसका इस अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग धम्म-संगनी नामक बौद्ध ग्रं हुआ था।

उत्तराध्ययन सूत्र ३०० ई०पू० (सूत्र ३०।१०।११):

इसमें निम्नलिखित बीजगणितीय घातों के नाम प्रयुक्त हुए हैं :—

वर्ग

घन

वर्गवर्ग (४)

घनवर्ग (६)

घनवर्गवर्ग (१२)

इन शब्दों के देखने से यह पता चलता है कि घातों के शब्द गुणा-प्रक्रम के हैं न कि योग-प्रक्रम के, अर्थात् घनवर्गवर्ग का अर्थ १२ है न कि सात।

अनुयोगद्वार सूत्र (१५० ई०पू०) :

स्थान (संख्या-स्थान सूत्र १४२)	रसमान
द्रव्य प्रमाण	सूच्यंगुल (रैखिक माप)
क्षेत्र प्रमाण	प्रतरांगुल (क्षेत्रफलीय माप)
कालप्रमाण	घनांगुल (आयतनीय माप)
भाव प्रमाण	प्रथम वर्ग $= (क^{२})$
मान	द्वितीय वर्ग $= (क^{२})^{२} = क^{४}$
उन्मान	तृतीय वर्ग $= (क^{४})^{२} = क^{८}$
अवमान (रैखिकमान)	प वां वर्ग $= (क^{२})प = क^{२प}$
गणिम (संख्या-मान	प्रथम वर्गमूल $= क^{\frac{१}{२}}$
प्रतिमान	द्वितीयवर्ग मूल $= क^{\frac{१}{४}}$
धान्यमान	तृतीय वर्गमूल $= क^{\frac{१}{८}}$
	प वां वर्ग मूल $= क^{\frac{१}{२प}}$

इन शब्दों में स्थान शब्द तथा विभिन्न प्रकार के मापों के नाम जैसे रैखिक माप तथा क्षेत्रफलीय मापों के शब्द विशेष उल्लेखनीय है।

उमास्वाति शब्दावली :

वृत्त परिक्षेप (परिधि)	बाहु (त्रिज्या)
ज्या (जीवा)	भेद-गुणन (खण्ड-गुणन)
इषु (शर)	विष्कंभार्ध (तत्वार्थधिगम सूत्र भाष्य ४।१४
विष्कंभ (व्यास)	
धनुकाष्ठ (चाप)	व्यासार्ध (जम्बुद्वीप समास ४)

यहाँ व्यासार्ध तथा विष्कंभार्ध शब्द त्रिज्या के अर्थ में विशेष उल्लेखनीय हैं। व्यासार्ध शब्द जम्बूद्वीप समास में सर्व प्रथम प्रयुक्त प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि शुल्व सूत्रों में व्यास के अर्थ में व्यायाम तथा अर्धव्यास के अर्थ में अर्ध व्यायाम शब्द प्रयुक्त किए गए हैं। विष्कंभ शब्द का भी व्यास के अर्थ में शुल्व सूत्रों में प्रयोग मिलता है।

प्राकृत भाषा के शब्द :

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि वर्ग, वर्गमूल तथा घन शब्दों का बीजगणितीय अर्थ तथा घन का ठोस अर्थ एवं स्थान (संख्यास्थान) शब्द, मान, वलय (annuli), अनन्त, व्यासार्ध ये शब्द पहले प्राकृत में ही प्रयुक्त हुए। यद्यपि उपरोक्त शब्द संस्कृत में पहले से ही थे किंतु गणितीय अर्थों में प्राकृत साहित्य में ही प्रयुक्त हुए। कोण, त्रिकोण, चतुष्कोण पाटी (अंकगणित) श्रेढ़ी, गच्छ (अन्तिम पद, करण-गाथा) कलासवर्ण तथा जीवा शब्द प्राकृत से ही संस्कृत में प्रविष्ट हुए। हिन्दी के नील तथा पद्म शब्द कमल सम्बन्धी नाम हैं। कमल सम्बन्धी अनेक संख्या नाम जैसे उत्पल, नलिन, पद्म, कुमुद, जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति (५०० ई० पू०), सूर्य प्रज्ञप्ति, जीव समास आदि जैन ग्रन्थों में आये हैं तथा काच्चायन कृत पालि व्याकरण में भी सौगंधिक उप्पल (उत्पल) कुमुद, पुण्डरीक, पदुम आदि नाम आये हैं। इधर नव-निधियों के संस्कृत नामों में पद्म, शङ्ख, नील तथा खर्व शब्द आते हैं। वाल्मीकि रामायण में भी पद्म तथा ब्रह्माण्ड पुराण में खर्व, पद्म और शङ्ख शब्द संख्या के अर्थ में आये हैं। किन्तु वैदिक नाम अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद तथा परार्ध थे अतः इनको छोड़कर अन्य नाम किसी अन्य धर्मावलम्बी ने ही रक्खे होंगे। अतः सम्भव है कि नील तथा पद्म नाम जैन अथवा बौद्ध साहित्य के हों। शङ्ख शब्द वाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त हुआ है तथा जैन एवं बौद्ध साहित्य में यह नहीं मिला है अतः गणितीय अर्थ में यह संस्कृत का ही शब्द है।

जोड़ना भी जुड धातु से बना है। यह भी संस्कृत युज् धातु का प्राकृत रूप प्रतीत होता है। इसी प्रकार घटाना शब्द भी संस्कृत घाटयाति से बना है जो घातयति का प्राकृत रूप प्रतीत होता है। जैन साहित्य तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं परवर्ती गणित की पुस्तकों में ओज शब्द विषम-संख्या के अर्थ में आया है। वेदांग-ज्योतिष में इसको 'अयुज' शब्द आया था। हो सकता है अयुज से ही बिगड़कर प्राकृत में पहिले अउज तथा बाद में ओज हो गया हो और पाटी शब्द की भाँति पुनः संस्कृत में प्रविष्ट हो गया हो, क्योंकि यदि ओज शब्द स्वतन्त्र संस्कृत शब्द होता तो इसके जोड़ का युग्म का भी कोई दूसरा होता। ओज और युग्म का जोड़ा ही इस बात को बताता है कि ओज अयुज् से बिगड़कर बना है।

मुण्डा भाषा के शब्द :

भारत की आदिम जातियों जैसे कोल, किरात आदि की भाषाओं से भी कुछ शब्द हिंदी में आये हैं जैसे मयूर, कदली आदि। इनमें से गणितीय शब्द कोरी (२०) भी एक है। भारत की प्राचीन जातियों में २०-२० करके गिनने की प्रथा थी। अतएव उनकी भाषा में उसका वाचक कोरी शब्द भी था। जिस प्रकार कि रोमन जाति में १२-१२ करके गिनने की प्रथा थी। अतएव उनकी भाषा में डज़न शब्द है। जिससे हिन्दी में बिगड़कर दर्जन शब्द हो गया। हिन्दी में दर्जन का कोई अपना शब्द नहीं है क्योंकि यहाँ १२-१२ करके गिनने की कभी प्रथा नहीं रही थी। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि भारत की प्राचीन जातियों की भाषा भारत से लेकर आस्ट्रेलिया तक एक समान पाई जाती है। इस भाषा का नाम विद्वानों ने अब आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा रखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत से लेकर आस्ट्रेलिया तक पहले स्थल भी था अतएव इनका भाषा समान थी। समुद्र का प्रादुर्भाव बाद में हुआ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र की गणितीय शब्दावली :

कौटिल्य अर्थशास्त्र में निम्नलिखित गणितीय शब्द प्रयुक्त हुए हैं :—

संकलन (जोड़ना)
निर्वर्तन (घटाना)
अनुमान
संख्यायक
लिपि
वर्ग (समूह)
संख्यान (गणित)
नीवी (पूंजी, धनराशि)
अग्र (वृहद्‌योग)
व्याजी (क्षतिपूरक एक कर)
त्रिभाग (तिहाई)
शून्य (सूना)
वृत्त

चतुस्र (चौकोर)
दीर्घ (आयताकार)
वृद्धि (व्याज)
उदाहरण
अक्षपटल (ए० जी०—कार्यालय)
तल
गणना (गिनती)
गाणनिक्य (एकाउण्टेण्ट)
लेखक (क्लर्क)
रूपदर्शक (रुपया परखने वाला)
ओज (विषम)
युग्म (सम)
प्रमाण (भारमान)

कौटिल्य अर्थशास्त्र ने भी संकलन और व्याज का पूर्वज व्याजी शब्द प्रदान किया। इसके उपरान्त पिंगल छन्दःशास्त्र (२०० ई० पू०)ने गणितीय शून्य शब्द प्रदान किया। शून्यसूचक बिन्दु शब्द ५वीं शती के वासवदत्ता नामक ग्रन्थ में मिलता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में बिन्दु का प्रयोग नष्ट-प्रसूति स्त्री के लिए किया

है। उसमें कहा है कि "वन्ध्यां अष्टवर्षाणि आकांक्षेत, विन्दु दश, द्वादश कन्या-प्रस-विनीम्" कौ० अ० शा० २, पृ० १६५।

अर्थात् वन्ध्या स्त्री की आठ वर्ष तक पुत्र प्राप्ति की प्रतीक्षा करे, विन्दु की १० वर्ष तक तथा कन्या-प्रसविनी की १२ वर्ष तक प्रतीक्षा करे।

वक्षाली-शब्दावली :

ईसंवी तृतीय शती में भाग्यवश पेशावर के पास वक्षलै ग्राम में गणित की एक पुस्तक के केवल ५०, ५२ जीर्ण-शीर्ण पन्ने मिले हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि गणित की प्रगति ५०० ई० पू० से ३०० ई० तक निर्बाध रूप से सतत चलती रही। स्थानांग सूत्र (३५० ई० पू०) का कलासवर्ण शब्द, वक्षाली में भी मिलता है तथा इसके बाद महावीर एवं श्रीधर की रचनाओं में भी यह पाया जाता है। इसमें जोड़ के लिए सङ्कलित शब्द भी आता है जो बाद में ब्रह्मगुप्त, महावीर आदि की कृतियों में भी बाहुल्यरूप से पाया जाता है। अलबरूनी इस शब्द को अपने साथ अरब ले गया। जमा के लिए धन शब्द का भी प्रयोग मिलता है। आधारभूत प्रक्रियाओं के शब्द योग, वियोग, गुणा, भाग शब्द भी इसमें प्रयुक्त हुए हैं। तल, त्रैराशिक तथा मानी हुई राशि के लिए याद्दच्छ, कामिक शब्द तथा पिंड भी अवलोकनीय हैं। शून्य तथा मूलधन शब्द भी वर्तमान अर्थों में प्रयुक्त मिलते हैं। हिंदी के हुंडी शब्द का पूर्वज 'हुंडिका-समानयनसूत्र' शब्द व्याज सम्बन्धी नियमों के संग्रह के लिए आया है। सम्मिश्रण तथा क्रय, विक्रय शब्द भी अंकगणित के प्रश्न-विषयों के द्योतक हैं। वर्त्य शब्द काटने योग्य के अर्थ में अवलोकनीय शब्द है। इसी ने समापवर्त्य शब्द की नींव डाली। शुल्वकाल का करणी शब्द अभी तक चला आ रहा है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि न्यास के स्थान पर न्यासस्थापन शब्द प्रयुक्त किया है तथा श्रेढ़ी के स्थान पर वर्ग शब्द का प्रयोग किया गया है। नीचे वक्षालीगणित-शब्दावली दी जा रही है।

अनुक्रम पृ० १६७	
अभ्यास पृ० १६७	Multiplication
अंश (भाग) पृ० १६५	
इच्छा पृ० १६३	Assumed number
उत्तर पृ० १६२ भाग ३	
उदाहरण पृ० २२	Example
करण पृ० २२	Solution
करणी पृ० १७८	Surd
कलासवर्ण पृ० २०७, भाग ३	
कामिक पृ० १६४	Arbitrary Quantity

मुण्डा भाषा के शब्द :

भारत की आदिम जातियों जैसे कोल, किरात आदि की भाषाओं से भी कुछ शब्द हिंदी में आये हैं जैसे मयूर, कदली आदि। इनमें से गणितीय शब्द कोरी (२०) भी एक है। भारत की प्राचीन जातियों में २०-२० करके गिनने की प्रथा थी। अतएव उनकी भाषा में उसका वाचक कोरी शब्द भी था। जिस प्रकार कि रोमन जाति में १२-१२ करके गिनने की प्रथा थी। अतएव उनकी भाषा में डजन शब्द है। जिससे हिन्दी में बिगड़कर दर्जन शब्द हो गया। हिन्दी में दर्जन का कोई अपना शब्द नहीं है क्योंकि यहाँ १२-१२ करके गिनने की कभी प्रथा नहीं रही थी। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि भारत की प्राचीन जातियों की भाषा भारत से लेकर आस्ट्रेलिया तक एक समान पाई जाती है। इस भाषा का नाम विद्वानों ने अब आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा रखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत से लेकर आस्ट्रेलिया तक पहले स्थल भी था अतएव इनकी भाषा समान थी। समुद्र का प्रादुर्भाव बाद में हुआ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र की गणितीय शब्दावली :

कौटिल्य अर्थशास्त्र में निम्नलिखित गणितीय शब्द प्रयुक्त हुए हैं :—

संकलन (जोड़ना)
निर्वर्तन (घटाना)
अनुमान
संख्यायक
लिपि
वर्ग (समूह)
संख्यान (गणित)
नीवी (पूंजी, धनराशि)
अग्र (बृहद्योग)
व्याजी (क्षतिपूरक एक कर)
त्रिभाग (तिहाई)
शून्य (सूना)
वृत्त
चतुरस्र (चौकोर)
दीर्घ (आयताकार)
वृद्धि (ब्याज)
उदाहरण
अक्षपटल (ए० जी०—कार्यालय)
तल
गणना (गिनती)
गाणनिक्य (एकाउण्टेण्ट)
लेखक (क्लर्क)
रूपदर्शक (रुपया परखने वाला)
ओज (विषम)
युग्म (सम)
प्रमाण (भारमान)

कौटिल्य अर्थशास्त्र ने भी संकलन और ब्याज का पूर्वज व्याजी शब्द प्रदान किया। इसके उपरान्त पिंगल छन्दःशास्त्र (२०० ई० पू०) ने गणितीय शून्य शब्द प्रदान किया। शून्यसूचक बिन्दु शब्द ५वीं शती के वासवदत्ता नामक ग्रन्थ में मिलता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में बिन्दु का प्रयोग नष्ट-प्रसूति स्त्री के लिए किया

है। उसमें कहा है कि "वन्ध्यां अष्टवर्षाणि आकांक्षेत, विन्दु दश, द्वादश कन्या-प्रसविनीम्" कौ० अ० शा० २, पृ० १६५।

अर्थात् वन्ध्या स्त्री की आठ वर्ष तक पुत्र प्राप्ति की प्रतीक्षा करे, विन्दु की १० वर्ष तक तथा कन्या-प्रसविनी की १२ वर्ष तक प्रतीक्षा करे।

वक्षाली-शब्दावली :

ईसवी तृतीय शती में भाग्यवश पेशावर के पास वक्षलै ग्राम में गणित की एक पुस्तक के केवल ५०, ५२ जीर्ण-शीर्ण पन्ने मिले हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि गणित की प्रगति ५०० ई० पू० से ३०० ई० तक निर्बाध रूप से सतत चलती रही। स्थानांग सूत्र (३५० ई० पू०) का कलासवर्ण शब्द, वक्षाली में भी मिलता है तथा इसके वाद महावीर एवं श्रीधर की रचनाओं में भी यह पाया जाता है। इसमें जोड़ के लिए सङ्कलित शब्द भी आता है जो वाद में ब्रह्मगुप्त, महावीर आदि की कृतियों में भी बाहुल्यरूप से पाया जाता है। अलवरूनी इस शब्द को अपने साथ अरब ले गया। जमा के लिए धन शब्द का भी प्रयोग मिलता है। आधारभूत प्रक्रियाओं के शब्द योग, वियोग, गुणा, भाग शब्द भी इसमें प्रयुक्त हुए हैं। तल, त्रैराशिक तथा मानी हुई राशि के लिए याटच्छ, कामिक शब्द तथा पिंड भी अवलोकनीय हैं। शून्य तथा मूलधन शब्द भी वर्तमान अर्थों में प्रयुक्त मिलते हैं। हिंदी के हुंडी शब्द का पूर्वज 'हुंडिका-समानयनसूत्र' शब्द व्याज सम्बन्धी नियमों के संग्रह के लिए आया है। सम्मिश्रण तथा क्रय, विक्रय शब्द भी अंकगणित के प्रश्नविषयों के द्योतक हैं। वर्त्य शब्द काटने योग्य के अर्थ में अवलोकनीय शब्द है। इसी ने समापवर्त्य शब्द की नींव डाली। शुल्वकाल का करणी शब्द अभी तक चला आ रहा है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि न्यास के स्थान पर न्यासस्थापन शब्द प्रयुक्त किया है तथा श्रेढ़ी के स्थान पर वर्ग शब्द का प्रयोग किया गया है। नीचे वक्षालीगणित-शब्दावली दी जा रही है।

अनुक्रम पृ० १६७	
अभ्यास पृ० १६७	Multiplication
अंश (भाग) पृ० १६५	
इच्छा पृ० १६३	Assumed number
उत्तर पृ० १६२ भाग ३	
उदाहरण पृ० २२	Example
करण पृ० २२	Solution
करणी पृ० १७८	Surd
कलासवर्ण पृ० २०७, भाग ३	
कामिक पृ० १६४	Arbitrary Quantity

क्रय पृ० १६६	C.P.
छाय (गुण अथवा वर्ण)	Quality
योग १६१	
गुणाकार पृ० १८७	
गुणित	Multiplied
घटिका पृ० १९०	
घन (अंकगणितीय) पृ० १७८	Cube
घात पृ० १७६	
छेद (भाग) पृ० ५४	Operation of Division
जाति पृ० १६५	
तल पृ० १६९	Surface
तोला (भारमान) पृ० १९४	Measure of weight
त्रैराशिक विधान पृ० १८९	Rule of three
त्रैराशिक	Arithmetical proportion
दल (अर्द्ध) पृ० २१५	Half
दिन	Day
दृश्य (दी हुई संख्या) पृ० १९३	Given number
धन (जमा) पृ० १६१	Plus
नीवि (पूंजी) पृ० २२०	Capital
न्यास स्थापन पृ० २३३	Putting down the statement of data
पद पृ० १७६-१८९	
परावर्त (परिभ्रमण) पृ० २२४	Revolution
पिंड	
प्रक्षेप पृ० १९३	Interpolation
प्रत्यय पृ० ४	Proof, Verification
प्रत्यानय	Verification
फल पृ० २२, भाग १ (उत्तर)	Answer
भाग	Division

राशि पृ० २११	Quantity, number
रूप (एक) पृ० १६८-१७६	Unity
लाभ सूत्र ११	Gain
लिप्ता पृ० २२	Minute
वर्ग (श्रेढ़ी) पृ० १६३	Series
(वर्ग)	Square
वर्त्य (काटने योग्य) पृ० १६३	To be cancelled
वल पृ० १२५	Force
विक्रय सूत्र ४ पृ० ६१	S. P.
वियोग (घटाना) १६२	Subtraction
विलिप्ता पृ० २२	Second
वेग पृ० २२५	Velocity
वेगवल पृ० २२५	Force of velocity
वैथुल्य (चौड़ाई) पृ० १५६	Width
शून्य पृ० १६३ पृ० २२	Zero or empty place
शुद्धि पृ० १७७	
शेष पृ० २२	Remainder
शौल्किक पृ० २२१	Tax Cupdt.
सदृशीकरण	
सम्मिश्रण पृ० २१०	Alligation
सूत्र पृ० २२	Rule
संकलित पृ० १७६, भाग ३	Summation
स्थापन	Statement
हरसाम्यकरण	
हस्तंगतं (हाथ आया १)	
हुंडिका समानयन सूत्र	The rule dealing with interest

वक्षाली गणित में प्रयुक्त संकेताक्षर :

भा०	भाग	यु०	युत
शे०	शेष	+	ऋण चिह्न
मू०	मूल	छे०	छेद

फ०	फल	वि०	विलिप्ता
उदा०	उदाहरण	लि०	लिप्ता

मध्यकाल अथवा स्वर्णयुग (५०० ई०—१२०० ई०)

बक्षाली गणित के बाद पांचवी शताब्दी के अंत में ज्योतिष शिरोमणि आर्यभट ने निम्नलिखित गणितीय शब्द प्रयुक्त किए :—

अध ऊर्ध्व (ऊर्ध्वाधर से मिलता हुआ)	गुलिका (रंगीन गोली, अव्यक्त राशि के लिए)
अक्षांश	गोल
अचल (स्थिर)	गोलार्ध
अंतपद	घनफल
अनुलोम	चतुर्भुज
अपक्रम (क्रान्ति)	जीवा
अपमंडल (क्रान्ति वृत)	त्रिभुज
अयनादि	परिणाह (शुल्वकाल से आया हुआ)
आसन्न Approximate	परिधि
ऋण Minus	प्रतिलोम
कक्ष्या Orbit	पात Node
कर्ण Hypotenuse	भगण Revolution
कोटि Perpendicular	भूगोल
क्षितिज	मेषादि First point of aries
क्षय	लंबक
क्षेत्रफल	विपरीत त्रैराशिक
गति	होरा
सर्वग्रास	

वराहमिहिर :

आर्यभट के उपरांत आधुनिक फलित ज्योतिष के जन्मदाता वराहमिहिर ने भी निम्नलिखित गणितीय शब्द प्रयुक्त किए हैं। ये पंचसिद्धांतिका से लिए गए हैं—

अनुपात पृ० ५७	देशान्तर पृ० १, ४१
अपमान्तर (अपक्रमान्तर) पृ० ४६	ध्रुव (अर्धव्यास) पृ० ११
करणी (वर्ग) पृ० ११-१२	भुज (आधार) पृ०४ २
केन्द्र पृ० ६	भूमध्य (पृथिवी केन्द्र) पृ० ३६
खमध्य पृ० ३४	मध्यम पृ० ४८
त्रिज्या पृ० ११	मध्यममान पृ० २४
दिनवार (वार) पृ० ४५	वलन

विक्षेप पृ० २६-४१ संशुद्धि पृ० ४५
वेध पृ० ३८ हरिज पृ० ३०-४६
समांतर रेखा पृ० २१

वराहमिहिर ने भारतीय तथा यवन ज्योतिष के सिद्धांतों का पंचसिद्धांतिका नामक स्वग्रंथ में संग्रह किया। अतएव आपोक्लिम, यामित्र, मेषूरण, केन्द्र, हरिज आदि कुछ यूनानी शब्दों का भी प्रयोग करना उनके लिए स्वाभाविक था।

ब्रह्मगुप्त :

वराहमिहिर के बाद भारत के महान् गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने निम्नलिखित गणितीय शब्द प्रयुक्त किए—

अंश
अपवर्तन (सामान्य भाजक से काटकर लघु करना)
अवलम्ब (साहुलसूत्र) रूप (Absolute term)
अव्यक्त (अज्ञातराशि) लब्धि
आसन्न (निकटतर आसन्नमान) वज्रवध (वज्राभ्यास)
कुट्टक गणित (बीजगणित) वर्ण (जैसे बीजगणित में क, ख, ग)
गोमूत्रिका (गुणन की एक विधि) विषमत्रिभुज (Scalene triangle)
घात (गुणनफल) व्यवकलित (शोधन)
तद्गत (Raised to that power) व्यस्त (Inverse)
तात्कालिक व्यावहारिक (स्थूल)
द्विसमत्रिभुज (समद्विबाहु त्रिभुज) शोधन (व्यवकलन)
नतकाल (Hour angle) सम (समीकरण)
निरपवर्त (Reduced to least terms) समकरण (समीकरण)
भाज्य समखात (समपार्श्व)
भावित (Terms like x y) स्पष्टीकरण
भेद (Factor) सूची (सूचीस्तम्भ)
याम्योत्तर (Meridian) हृदय, हृदयरज्जु (कोणस्पृग्वृत्त कीत्रिज्या)

यह स्मरण रहे कि ब्रह्मगुप्त ने सबसे पहिले आधुनिक समीकरण शब्दावली को जन्म दिया। इन्होंने बीजगणित को कुट्टकगणित कहा था तथा कुट्टक अनिर्धार्य समीकरण के अर्थ में प्रयुक्त किया। इन्हीं के सम अथवा समकरण शब्द से अरब में अल्जेब्रा शब्द की उत्पत्ति हुई। इनके 'वध, हनन तथा 'घात' शब्दों से अरब में गुणा के लिए ज़रब शब्द की उत्पत्ति हुई।

भास्कर प्रथम :

ब्रह्मगुप्त के समसामयिक भास्कर प्रथम थे जिन्होंने आर्यभटीय की टीका में बीज-चतुष्टय शब्द का प्रयोग किया है जिसको भास्कर द्वितीय ने भी प्रयुक्त किया था। बीज-चतुष्टय ४ प्रकार के समीकरणों को कहते थे और समीकरण-साधन इतना महत्वपूर्ण था कि उसी के नाम पर परवर्ती पद्मनाभ तथा भास्कर द्वितीय ने अल्जेब्रा का नाम बीजगणित रक्खा। इसके अतिरिक्त महाभास्करीय में निम्न शब्द और प्रयुक्त किये जो आज की शब्दावली के लिए परम उपयोगी हैं—

अनुदिश पृ० ६३	संपात पृ० ६२
चक्रांश (अंश) पृ० १६	स्पर्शन पृ० ७६
दशलव (दशवां भाग) पृ० १०	हार पृ० ४५, ४६
बिन्दु पृ० २२	ओज लघुभास्करीय

महावीराचार्य :

ब्रह्मगुप्त और भास्कर के उपरांत दक्षिण के प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ महावीराचार्य (८५० ई०) हैं। इनकी गणितसार-संग्रह अंकगणित की अद्वितीय पुस्तक है। आज के संख्यावाचक शब्द बहुत कुछ उसी के आधार पर हैं। यथा—

एकं तु प्रथमस्थानं द्वितीयं दशसंज्ञिकम्।
तृतीयं शतमित्याहुः चतुर्थं तु सहस्रकम्॥
पंचमं दशसहस्रं षष्ठं स्याल्लक्षमेव च।
सप्तमं दश सहस्रं लक्षं तु अष्टमं कोटिरुच्यते॥
नवमं दशकोट्यस्तु दशमं शतकोट्यः।
अर्बुदं रुद्रसंयुक्तं न्यर्बुदं द्वादशं भवेत्।
खर्वं त्रयोदशस्थानं महाखर्वं चतुर्दशम्।
पद्मं पंचदशं चैव महापद्मं तु षोडशम्॥
क्षोणी सप्तदशं चैव महाक्षोणी दशाष्टकम्।
शंखम् नवदशं स्थानं महाशंखम् तु विंशकम्।

(ग०सा० स०, पृ० ७, ८)

इसमें नील को छोड़ कर शेष सब आधुनिक संख्यावाचक नाम आ गये हैं। उनके मानों में गत ११०० वर्षों में थोड़ा-बहुत अन्तर पड़ जाना तो बिल्कुल स्वाभाविक है। संख्यावाचक इन शब्दों के अतिरिक्त महावीराचार्य ने निम्न अन्य गणितीय शब्द प्रयुक्त किये हैं जो द्रष्टव्य हैं—

उन्नत (उन्नतोदर)	निम्न (नतोदर)
एकीकरण (अनेकों को एक करना)	निरुद्ध (ल०स०प०)
करणसूत्र (कार्यकारी सूत्र)	पृष्ठ
गुण (सामान्य अनुपात)	प्रचय (सामान्य अन्तर)
गुणोत्तर (सामान्य अनुपात)	मासिक वृद्धि
गुणसंकलित (गुणोत्तर श्रेणी)	मिश्रधन
घनीकृत (Cubbed)	वृत्त (Curvilinear figure)
चय (सामान्य अन्तर)	शतवृद्धि (प्रतिशत)
	समवृत्त (वृत्त)

कौटिल्य अर्थशास्त्र में मासिक वृद्धि के स्थान पर मासवृद्धि शब्द प्रयुक्त हुआ था।

पृथूदक् स्वामी :

आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्त के प्रसिद्ध टीकाकार पृथूदक् स्वामी (८६० ई०) से हमको द्विपद (Binomial), त्रिपद (Trinomial) आदि शब्द मिले।

श्रीधराचार्य :

इसके उपरान्त श्रीधराचार्य के निम्न शब्द अवलोकनीय हैं :—

चय संकलित (समांतर श्रेणी)	संस्थानक (Configuration)
संकलित (,,)	संस्थान (,,)
वृद्धयुत्तर (वर्द्धमान)	आय (धन)
हीनोत्तर (हीयमान)	व्यय (ऋण)
अर्धवृत्त	सम (Even)
निम्न	विषम (Odd)

श्रीपति :

श्रीधराचार्य के उपरांत अंकगणित की प्रसिद्ध पुस्तक गणिततिलक तथा सिद्धान्तग्रंथ सिद्धांतशेखर के रचयिता श्रीपति (१०३९ ई०) द्वारा प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्द नीचे दिये जा रहे हैं।

अतुल्यबाहु सि०शे०व्य० ३२	करणीपद पृ० १२
अभिघात (गुणा) ३	कु (आधार) व्य० २९
अवधा (Segments) पृ० २९	कृतिज (वर्गमूल) व्य० २२
अव्यक्तवर्ण (अज्ञात राशि) पृ० १ अव्य०	कृतिजसंकलित सि०शे०व्य० २४
एकक सि०शे०व्य० २१	कोटि (लंब) ,, ,, ,, ४०

खहर (अनंत) अव्य० ६
गुण १ (गुणनखण्ड) व्य० १३
२ गुणांक→अव्य० ३२
गुणक
गुण्य व्य० २
घनज (घनमूल) व्य० २२
घनज संकलित (घनमूल योग) व्य० २२
घनपाणि (घनहस्त) व्य० ४५
चरम (अंतिम)
छेद (हर) पृ० ३६
तक्षण (अपवर्तन) व्य० १५
ताडन (गुणा) ,, ६
द्वितुल्यबाहु (समद्विबाहु) ,, ३३
निकट (आसन्न) ,, ३६
निरग्रक (Completely divisible), २३
पक्ष (Side)
प्रकृति (गुणांक) अव्य ५६

भाजक व्यक्त २८
भाज्य ,, ३
भुजसमास $(a+b+c)$,, २८
लब्धि
वहिर्वृत्त (Circumcircle) ३२
विषमकर्म निम्न युगपत् समीकरण :—
$\text{क}^2 - \text{ख}^2 = \text{ग}$
$\text{क} - \text{ख} = \text{घ}$ अव्यक्त १३
विषम चतुर्भुज व्यक्त ३४
व्यक्त गणित (अंकगणित) व्यक्त २
शतफल (प्रतिशत) ग०ति०
संक्रमण (निम्न युगपत् समीकरण)
$\text{क} + \text{ख} = \text{ग}$
$\text{क} - \text{ख} = \text{घ}$ अव्यक्त १३
समीपमूल (आसन्नमूल) ,, ३६
सवर्णन ,, १०
सुसूक्ष्म (Well accurate) ,, ३५

उपरोक्त श्रीपति द्वारा प्रयुक्त शब्दावली के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भास्कर के गणित तथा उनकी शब्दावली पर श्रीपति का गहन प्रभाव है। इसमें व्यक्त गणित, अव्यक्त गणित खहर तथा गुणांक के लिए गुणक एवं पर्सेंटेज के लिए शतफल शब्द का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है। महावीराचार्य ने शतफल के स्थान पर शतवृद्धि शब्द का प्रयोग किया था।

भास्कर द्वितीय :

इसके उपरांत प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कर द्वितीय (१११४ ई०) की शब्दावली नीचे प्रस्तुत की जा रही है जो अवलोकनीय है :—

अकरणीगत लीलावती १४०पृ० Rational
अनेकवर्णसमीकरण बीजगणित १७६
अभिन्न (पूर्णांकीय) लीलावती पृ० १००
आनन्त्य (Infinity) बी०ग०पृ० ५३
आसन्न लीलावती पृ० १८६
इष्टकर्म ,, ,, ५०
थापन बी०ग०पृ० ७०
वर्णं समीकरण बी०ग०पृ० ५८

करणीगत (अपरिमेय) लीला०पृ० १७६
कल्पना बी०ग०पृ० ६३
गाणितिक (गणितज्ञ) लीला० पृ० १६४
तल (आधार), (तल्ला) ,, ,, २२१
तिर्यक् छेद (अनुप्रस्थकाट) ,, ,, २३२
दृढ़ (Reduced to least terms)
नवभुज लीला० पृ० २१२
पक्षनयन (पक्षांतरण) पृ० ७६

भावित बी० ग० वज्राभ्यास बी० ग०
मध्यमाहरण ,, (Elimination of middle term) विनिमय लीला० पृ० ८६

उत्तर काल (१२०० ई० १८०० ई०—)]

भास्कर द्वितीय के उपरांत सम्राट जगन्नाथ (१७वीं शती) ने रेखागणित नामक ग्रंथ रच कर रेखागणित की बहुत कुछ नवीन शब्दावली का सृजन किया। जिसको अधिकत: हिन्दी भाषा ने अपना लिया। यथा :—

अधिककोण
अधिककोण त्रिभुज
अन्तर्गत कोण (Included angle)
अन्तर्वृत (Incircle)
अर्धकरण (Bisection)
अष्टफलक
उपपत्ति Proof
उपरिवृत्त Circum Circle
एककेन्द्रक वृत Concentric Circle
कोदण्ड Segment of the circle
गोल क्षेत्र Sphere
घन क्षेत्र Solid
घनफल Volume
घनहस्त क्षेत्र Parallelepiped
घनकोण Solid angle
चापकर्ण Chord
चिह्न Point
धरातल Plane, Plane surface
धरातल क्षेत्र Plane area
निष्पत्ति Ratio
नि:शेष Without remainder
न्यूनकोण त्रिभुज
समत्रिबाहुक
समद्विबाहुक
समधरातल क्षेत्र Plane surface
रेखागणित
परिभाषा Termonology
पालि Circumference
पूर्णांक (जो अपने गुणनखण्डों का योग हो)
फलक Face
बहिर्गत कोण External angle
भ्रमण Rotation
मूल Foot of the perpendicular
योगांक Composite number
लंबरेखा Perpendicular line
वक्ररेखा
विषमकोण Scalene angle
विषम Odd
शंकु Cone
सजातीय Homogeneous
सजातीय क्षेत्र Similar figure
समकोण
समकोण त्रिभुज
समत्रिभुज
सूची-फलक घनक्षेत्र Pyramid

इन प्राचीन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि भारतीय गणित शब्दावली इतनी ही प्राचीन है जितना कि भारतवर्ष। इसका एक अपना सुसंबद्ध तथा सुश्लिष्ट इतिहास है। सहस्रों वर्षों तक की हुई निरन्तर कठोर तपस्या तथा सुदीर्घ चिंतन

का यह परिणाम है। वह किसी एक व्यक्ति की निजी मस्तिष्क की उपज नहीं है। शब्दों को एक दीर्घकाल तक उन्मुक्त प्रतियोगिता करने का भव्य अवसर मिला है तथा योग्यतमावशेष के सिद्धांत से जो सबसे सरल संक्षिप्त तथा सुन्दर थे, वही जीवित रहे शेष सब कालकवलित हो गये। फिर भी जो बचे उन में प्रधानतया संस्कृत तथा गौण रूप से प्राकृत पालि तथा अन्य प्राचीन एवं प्रादेशिक भाषाओं का अपना २ एक निजी भाग है। इस में सभी प्रांतों तथा धर्मों का समान हाथ है। शब्दों का इतिहास भी मानव-वंशपरंपरा के इतिहास के समान होता है। कोई शब्द-परिवार आदि काल से अब तक चला आ रहा है, कोई कुछ काल तक चल कर समाप्त हो गया और किसी दूसरे को अपने स्थान पर छोड़ गया। जो कुछ भी हो, हमें अपनी इस शब्दावली पर गर्व है। यह हमारे अतीत गौरव की स्मारक है। क्या कोई देश ऐसा है जिसकी गणितीय शब्दावली इतनी प्राचीन हो। नक्षत्रवाचक तथा संवत्, वर्ष, ऋतुमास, युग्म तथा अयुग्म शब्द वैदिक काल के अर्थात् ५००० वर्ष से भी अधिक प्राचीन हैं। संख्या, वृत्त तथा शून्य शब्द ब्राह्मण काल के अर्थात् ४००० वर्ष प्राचीन हैं, करणी, वर्ग, फलक, व्यास, रेखा, शंकु तथा विज्ञान शब्द शुल्ब काल के अर्थात् ३२०० वर्ष प्राचीन हैं। गणित, भिन्न, मुहूर्त, विभाजन, शोधन, गुण, गुणित, भूगोल, युत आदि शब्द वेदांग ज्योतिष के अर्थात् २५००-३००० वर्ष प्राचीन हैं। कोण, त्रिकोण, चतुष्कोण, शब्द सूर्यप्रज्ञप्ति के अर्थात् २५०० वर्ष पुराने हैं। संकलन, वृद्धि, व्याजी (व्याज का पूर्वज) कौटिल्य अर्थशास्त्र के अर्थात् २२८५ वर्ष प्राचीन हैं। चक्रवृद्धि, गौतम धर्म-सूत्र का तथा गणितीय शून्य शब्द पिंगल-छंदः शास्त्र का अर्थात् २१६० वर्ष प्राचीन हैं। उत्क्रमज्या ज्या, कोटिज्या शब्द सूर्य-सिद्धांत के अर्थात् २ हजार वर्ष प्राचीन हैं। अस्तु, निर्धन भारत की यही तो एक निधि है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इसको सदा सुरक्षित रखें।

अध्याय ३

भारतीय गणित शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन

गणितीय शब्दावली के ऐतिहासिक अध्ययन के उपरांत अब इस अध्ययन के फलस्वरूप जो-जो ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक तत्व दृष्टिगोचर हुए हैं उनका यहाँ संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है।

धन शब्द के अध्ययन से पता चला कि वैदिक काल में बड़े-बड़े खेल तथा दौड़ें हुआ करती थीं। धन शब्द किसी दौड़ तथा अन्य खेलों में विजेता को पारितोषिक के रूप में मिलने वाली वस्तु के लिए प्रयुक्त किया जाता था। शत्रु से जीते हुए सामान के अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त किया जाता था। इन दोनों तथ्यों के द्योतक 'हितंधनं' अर्थात् प्रस्तावित धन तथा 'धनंजित' और 'धनंजय' शब्द हैं। मोनियर विलियम्स शब्द कोष धन शब्द 'धन्' धातु से बना बताता है जिसका अर्थ है दौड़ना तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा इसे 'धा' धातु से बना बताते हैं जिसका अर्थ है रखना। अतएव उनके मत में पारितोषिक के रूप में रक्खे जाने से यह धन कहलाया।

ऋण शब्द निम्नलिखित ऋग्वेद के मंत्र में आया है:—

> जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित्।
> ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुपनक्तमेति ॥

अर्थात् इधर-उधर मारे फिरते हुए जुआरी पुत्र की हीनावस्था को प्राप्त माता संतप्त हो रही है और उधर ऋणग्रस्त जुआरी सब से डरता हुआ, धन की इच्छा करता हुआ रात को चोरी करने के लिए घर में घुसता है।

इससे भारत में अति प्राचीन काल से द्यूत-प्रथा तथा ऋण लेने की प्रथा का पता चलता है। सूर्य-सिद्धांत के अनुवादक श्री बर्जिस के मतानुसार कलियुग तथा कृतयुग शब्दों में कलि तथा कृत क्रमशः अक्ष (पासा) के एक और चार बिंदी वाले पहलुओं के नाम हैं। इसी प्रकार द्वापर तथा त्रेता शब्द भी पासे के दो बिन्दी वाले तथा तीन बिन्दी वाले पहलुओं के नाम हैं।

शून्य शब्द से प्राचीन भारतवासियों की ब्रह्मांड के नितांत बढ़ते जाने तथा उसके फटने से आकाश की उत्पत्तिविषयक आस्था का पता चलता है।

"तस्माद् एतस्माद् वा आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योरन्नम्। अन्नात् पुरुषः।" (तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मवल्ली-खण्ड)।

शून्य 'शून' शब्द की भाववाचक संज्ञा है तथा शून का अर्थ है 'अत्यन्त सूजा हुआ' अथवा बढ़ा हुआ।

अमरकोष में शून्य शब्द के पर्यायवाची वशिक, तुच्छ तथा रिक्तक शब्द हैं। यथा:—

"शून्यं तु वशिकं तुच्छ रिक्तके"—अमरकोष

इन में से शून्यार्थक तुच्छय और रिक्त शब्द ऋग्वेद में भी मिलते हैं। वशी शब्द कात्यायन श्रौतसूत्र में भी इसी अर्थ में मिलता है। ऋग्वेदीय खिलसूक्त तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में शून्य शब्द रिक्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। संसार की अन्य भाषाओं में इन्हीं चारों से मिलते-जुलते शब्द पाये जाते हैं। यथा :—

यूनानी	केनोस, केन्योस	शून्य से मिलते हुए, श का क हो जाता है
ऐलिक	केन्नोस	
लैटिन	वेक्युअस	वशिक से मिलते हैं।
इटैलियन	व्यूटो	
स्पैनिश	वेशिओ	
डैनिस	तोम	तुच्छ से मिलते हैं।
लियूनियन	तुच्छियस	
लैटिक	तुक्स	
स्लैविक	तुश्ती	रिक्त से मिलते हैं।
वोहीमियन जैक	रोड़नी	
पोलिश	रोज़नी	

उपरोक्त शब्दमाला के अवलोकन मात्र से ज्ञात होता है कि हो न हो इन सब जातियों का मूल स्थान कभी एक ही न हो और यह सब एक ही वृक्ष की शाखायें न हो। भारोपीय (इंडोयूरोपियन) तथा अवेस्तन भाषा में ऐसे एक नहीं अनेक शब्द मिलते हैं और इन सबसे इतिहासवेत्ता आर्य जातियों के एक मूल स्थान होने की संभावना करते हैं। अरबी भाषा इस भाषा-परिवार से पृथक् है लेकिन किस प्रकार अरब ने भारतीय ज्ञान विज्ञान पूर्व से लेकर पश्चिम पहुँचाया था यह भी शून्य शब्द के अध्ययन से पता चलता है। गणितीय अर्थ में शून्य शब्द भारत में २०० ई० पू० में ज्ञात कर लिया था। दशमिक अंक-प्रणाली में संख्याओं को लिखते समय शून्य का सांकेतिक चिह्न आविष्कृत न होने से पहिले उस स्थान को संभवतः रिक्त छोड़ देते थे अतएव भारत में इस संख्या को शून्य शब्द से व्यक्त किया गया। इस व्युत्पत्ति से तथा यहाँ शून्य के २०० ई० पू० प्रयोग मिलने से पता चलता है कि इसका भारत में आविष्कार हुआ। जब किसी नवीन विदेशी वैज्ञानिक भाव को किसी अन्य देशीय भाषा में अनूदित करना होता है तो उस शब्द के अन्य साधारण अर्थों में उस देश में जो शब्द चलता है उसी शब्द के अर्थों में उस वैज्ञानिक अर्थ को

भी बढ़ा देते हैं जैसे अरबी (जीवा) जेब, शब्द को जब लेटिन में अनूदित करना पड़ा तो जेब का साधारण अर्थ था कपड़े की जेब (अथवा Bosom of the garment) उस अर्थ में वहाँ साइनस शब्द था। अतएव जेब शब्द को साइनस शब्द से अनूदित कर लिया। इसी प्रकार शून्य का अन्य साधारण अर्थ था खाली, खाली के अर्थ में अरबी में 'सिफ़' शब्द था अतएव गणितीय शून्य को वहाँ सिफ़ शब्द से अनूदित किया गया और अरब से दो भिन्न मार्गों से चल कर यह 'सिफ़' शब्द यूरोप पहुँचा अतएव वहाँ इसके दो शब्द मिलते हैं, (१) साइफर (२) ज़ीरो। दोनों मार्ग ये हैं :—

प्रथम मार्ग	अरबी	स्पेनिश	पुरानी फ्रेंच	नई फ्रेंच	इंगलिश
शून्य	सिफ़	सिप्रा	सिफ़्रे	शिफ़्रे	साइफर

द्वितीय मार्ग	अरबी	लैटिन	इटालियन	फ्रेंच	इंगलिश
शून्य	सिफ़	ज़ैफ़म	ज़ैफीरो	ज़ीरो	ज़ीरो
		ज़ैफ़ीरम	ज़्यूरो		

करणी शब्द से पता चलता है कि भारतवर्ष में कभी बहुत यज्ञ होते थे। करणी उस रज्जु को कहते थे जिससे यज्ञों की वेदियां बनाते थे। आजकल करणी अंगरेजी के 'सर्ड' शब्द के लिए प्रयुक्त होती है। करणी का अर्थ ही है करने वाली अर्थात् रचना करने वाली। कात्यायन शुल्वसूत्र में कहा है :—"करणी तत्करणी, तिर्यङ्मानी, पार्श्वमान्यक्ष्णया चेति रज्जवः" अर्थात् रज्जु पाँच प्रकार की होती है— करणी, तत्करणी, तिर्यङ्मानी, पार्श्वमानी तथा अक्ष्णया। विश्व ने अंकगणित तथा रेखागणित के प्रथम पाठ भारत से ही पढ़े थे और भारतवर्ष में यज्ञों को उचित काल में करने की आवश्यकता से गणित शास्त्र की उत्पत्ति हुई जिससे ग्रह-गति-गणना द्वारा पर्वों का ठीक ज्ञान हो सके। देखिए वेदांग ज्योतिष का निम्न श्लोक :—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्याविहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रंयोज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥

अर्थात् वेदों की उत्पत्ति यज्ञों के निमित्त हुई और यज्ञ विहित काल पर करने चाहिए अतएव जो इस काल-विधान-शास्त्र ज्योतिष को जानता है वही यज्ञ को समझता है।

यज्ञ-व्यवस्था जो अब केवल प्राचीन धार्मिक रूढ़ि के रूप में मानी जाती है विश्व में समस्त ज्ञान के आदि-स्थान वेदों की उत्पादक हुई। इसी के निमित्त समुचित काल जानने के लिए ग्रहगणित की उत्पत्ति तथा वेदियाँ समुचित क्षेत्र तथा आकार की बनें अतएव रेखागणित के जन्मदाता शुल्व-सूत्रों की उत्पत्ति हुई। धन्य है उस यज्ञ-व्यवस्था को जिसने गणित को जन्म दिया और जिससे समस्त विज्ञान की उत्पत्ति हुई।

व्यक्तगणित और अव्यक्त गणित के देखने मात्र से पता चलता है कि यह उसी जाति के मस्तिष्क की खोज है जो व्यक्त तथा अव्यक्त के विचार में दिन-रात डूबी रहती थी। भारतवासियों ने जिस प्रकार व्यक्त लोक को उस अव्यक्त शक्ति परब्रह्म सच्चिदानंद परमात्मा से उत्पन्न माना था उसी प्रकार व्यक्तगणित के समस्त नियम अव्यक्तगणित से निस्सृत हो जाते हैं ऐसी उनकी आस्था थी। देखिये भास्कर की उक्ति :—

उत्पादकं यत्प्रवदन्ति बुद्धेरधिष्ठितं सत्पुरुषेण सांख्याः।
कृत्स्नस्य लोकस्य तदेकबीजमव्यक्तमीशं गणितं च वन्दे ॥

(भा०बी०ग०)

अर्थात् जिसको सांख्य शास्त्र के रचियिता बुद्धि तत्त्व का उत्पादक तथा पुरुष तत्त्व से अधिष्ठित मानते हैं और जो समस्त व्यक्त जगत का बीज है उस परमात्मा की मैं सादर वन्दना करता हूँ। (गणित पक्ष में) जो बुद्धि को बढ़ाने वाला है, जिसका ऊँचे २ विद्वानों ने परिशीलन किया, जो व्यक्तगणित का मूल है, उस बीजगणित की मैं वन्दना करता हूँ। भारतवासियों की प्रवृत्ति अमूर्तचिंतन की थी उसी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर उन्होंने बीजगणित को जन्म दिया। संसार में संसार से बिल्कुल विरक्त रहने वाले विषयों में अध्यात्म-विद्या (Metaphysics) के उपरांत गणित का ही स्थान है। अतएव अध्यात्म-विद्या का परिशीलन करते-करते उन्होंने ही गणितशास्त्र को जन्म दिया। उधर बाद को यूनानी लोग दर्शन-शास्त्र (Philosophy) के बड़े पंडित हुए। अतएव उन्होंने भी गणित का पर्याप्त विकास किया। गणित और दर्शनशास्त्र के संबंध के सूचक हमारे संख्याशास्त्र तथा सांख्यशास्त्र शब्द ही हैं। जब एक बार गणित का विकास हो गया तो अब कोई भी उन मूल सिद्धान्तों का आश्रय लेकर उसका अग्रिम विकास कर सकता है। उसमें अब अध्यात्म-विद्या जानने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

कई एक यूनानी और अरबी शब्द भारतीय ज्योतिष में मिलते हैं जैसे केन्द्र (Centre, anomaly) आपोक्लिम, मेपूरण, ताजिक, ईसराफ मुथशिल आदि, जिनसे प्रतीत होता है कि इन विभिन्न संस्कृतियों में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में किस प्रकार परस्पर सहयोग था और इन देशों के विद्वान किस प्रकार एक दूसरे देश में आते जाते रहते थे। वराहमिहिर ज्योतिष विषयक यूनानी ज्ञान को निम्न श्लोक में स्वीकार करता है :—

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक्शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः ॥ वृहत्संहिता।

अर्थात् यूनानी लोग यद्यपि म्लेच्छ[1] हैं किंतु वे ज्योतिष के अच्छे वेत्ता हैं। उनका भी ऋषियों के समान आदर होता है, तो फिर ज्योतिषी यदि ब्राह्मण हो तो उसके तो आदर का कहना ही क्या।

आज के वातावरण में 'म्लेच्छ' शब्द का प्रयोग भले ही अखरे किन्तु इसमें एक ऐतिहासिक तत्व अन्तर्निहित है कि इसी प्रकार अपने आचार व्यवहार पर गर्व करते हुए हमारे पूर्वजों ने शक्तिशाली विदेशी आक्रमणों से अपने धर्म, संस्कृति, सभ्यता तथा देश को उनसे सुरक्षित रक्खा नहीं तो,

> यूनान मिस्र रोमां सब मिट गए जहाँ से।
> बाकी रहा है अब तक नामोनिशां हमारा॥ —इकबाल।

हमको अपनी प्राचीन सत्ता पर गर्व करने का अवसर न मिलता। इस प्रकार हमारे पूर्वजों ने अनन्त काल से चली आई हुई इस संस्कृति को सुरक्षित रक्खा और किसी प्रकार संजोकर इस थाती को हमें अर्पित कर दिया। इस संबन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि हमने ही नहीं और लोगों ने भी इसी प्रकार विदेशियों से घृणा की जिसके द्योतक काफिर तथा देव शब्द हैं।

भारत में प्राचीन समय में वर्तमान प्रणाली पर इतिहास लिखने की प्रथा नहीं थी। वे लोग नश्वर मानव जीवन के वृत्तांत को लिखने में विश्वास नहीं करते थे। अतएव आज प्राचीन विद्वानों तथा सम्राटों आदि के तिथि-निर्धारण करने में बड़ी कठिनता अनुभव होती है। हमारे बहुत से गणितीय शब्दों का समय सुनिश्चित हो गया है जैसे केन्द्र, जामित्र, हरिज आदि यूनानी शब्द वराहमिहिर काल (५५० ई०) के शब्द हैं। इस तथ्य से हम अन्य कालिदास ब्रह्मगुप्त आदि अनेक विद्वानों का समय निर्धारण कर सकते हैं। ईसवी की प्रथम शताब्दी तक संख्यान तथा गणना शब्दों का गणित अर्थ में प्रचार कम हो गया और गणित शब्द का प्रयोग बढ़ गया था। अतएव कौटिल्य अर्थशास्त्र जिसमें इनका प्रयोग अधिक है निश्चय ही ईसवी पूर्व का ग्रन्थ है।

कुसीद शब्द ब्याज पर रुपया देने के अर्थ में तैत्तिरीयसंहिता में आता है। वृद्धि शब्द ब्याज के अर्थ में पाणिनीय व्याकरण तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी आता है अतः यह स्पष्ट है कि ब्याज लेने की प्रथा भारतवर्ष में अत्यंत प्राचीन है। परन्तु

---

१. म्लेच्छ स्वयं यवनों (यूनानियों) से पूर्व की एक विदेशी जाति का नाम है। अतएव यूनानियों को म्लेच्छ कहा। बाद को जब मुसलमानों का आक्रमण हुआ तो उसी प्रकार उनको यवन कहने लगे। म्लेच्छ और यवन शब्द स्वयं बुरे नहीं हैं किन्तु विदेशी और आक्रामक जातियों के नाम होने से घृणास्पद बन गए।

अर्थात् दो भ्रमर कमल पर पराग रंजित हो रहे हैं, शेष के आधे सप्तम भाग सहित किसी गजराज के गण्डस्थल पर मद का आनंद ले रहे हैं, यूथ का चौथाई भाग गुंजारता हुआ नवमल्लिका पर पहुँच गया। शेष केवल भ्रमरों का एक जोड़ा देखा गया। बताओ कुल कितने भौंरे थे।

ये निर्भरा दिनदिनार्धतृतीयषष्ठैः
संपूरयन्ति हि पृथक् पृथगेवमुक्ताः।
वापीं यदा युगपदेव सखे विमुक्ताः
ते केन वासरलवेन तदा वदाशु ॥ (लीला०)

अर्थात् एक झरना किसी बावली को एक दिन में, दूसरा आधे दिन में, तीसरा तिहाई दिन में और चौथा चौथाई दिन में पृथक्-पृथक् पूरा भर देता है तो यदि चारों निर्भर एक साथ चलें तो दिन के कितने भाग में बावली को भर देंगे।

आज अनैसर्गिक नागरिक जीवन हो जाने के कारण यही प्रश्न नल तथा हौज के हो गए हैं।

त्रिभिः पारावताः पंच पंचभिः सप्त सारसाः
सप्तभिर्नवहंसाश्च नवभिर्बर्हिणस्त्रयः।
राजपुत्रविनोदार्थं ज्ञात्वा मूल्यं यथोदितम्
शतेनैकेन रूपाणां जीवानां शतमानय ॥ (पाटीगणित)

अर्थात् यदि पांच कबूतरों के दाम ३ रु०, ७ सारसों के दाम ५ रुपये, ९ हंसों के दाम ७ रुपये, ३ मोरों के दाम ९ रुपये तो राजकुमार के मनोविनोद के लिए १०० रुपयों में १०० पक्षी ले आइये।

अस्ति स्तंभतले विलं तदुपरि क्रीडाशिखण्डी स्थितः
स्तंभे हस्तनवोच्चिते त्रिगुणिते स्तंभप्रमाणान्तरम्।
दृष्ट्वाहि विलमाव्रजन्तमपतत् तिर्यक् स तस्योपरि।
क्षिप्रं ब्रूहि तयोर्विलात्कति करैः साम्येन गत्योर्युतिः ॥ (लीला०)

अर्थात् एक लट्ठे के नीचे एक छेद है। लट्ठे की चोटी पर एक मोर बैठा है। लट्ठे की लंबाई ९ हाथ है। एक सांप को लट्ठे की ओर लट्ठे से उसकी लंबाई की तिगुनी दूरी पर आते हुए देखकर मोर तिर्यग्गति से उसके ऊपर कूद पड़ा। उस की और सर्प की गति समान थी। बताओ लट्ठे से कितनी दूरी पर उसने सांप को पकड़ा।

यदि आज का युग होता तो मोर के स्थान पर जैट वायुयान और सांप के स्थान पर रिपुसैन्य होता। इससे पिछले प्रश्न में भी आज के युग में राजकुमार न मालूम किन आधुनिक खिलौनों से खेलता।

उपरोक्त वर्णन से ओसवाल्ड स्पैंगलर की निम्न उक्ति सत्य ही प्रतीत होती है :— The type of mathematics found in any major culture

is a clue or key to the distinctive character of the culture taken as a whole.

अर्थात् गणित के प्रकार को देखकर किसी संस्कृति का प्रकार समझ में आ जाता है अंगरेजी वैज्ञानिक बैल ने भी ठीक ही कहा है—

Mathematics affects and to some extent determines our civilization. The history of Mathematical thought is inter-related with the history of civilization.

अर्थात् गणित हमारी सभ्यता का निर्देशक है अतएव गणितीय विचारों का इतिहास मानव सभ्यता के इतिहास से सह-संबद्ध है।

किसी ने सत्य ही कहा है:— Mathematics is a mirror of civilization. अर्थात् गणित किसी सभ्यता का दर्पण होता है।

जूल्स ब्लाक नामक एक फ्रेंच लेखक ने कहा था कि भारतीय शब्दावली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें एक अति प्राचीन काल से सातत्य चला आ रहा है। मैं केवल इसमें इतना और बढ़ाना चाहता हूँ कि न केवल उसकी शब्दावली की यह विशेषता है वरन् उस संस्कृति की भी यह विशेषता है।

अध्याय ४

गणितीय शब्दावली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन

प्रकरण १. गणितीय शब्दों की व्युत्पत्तियाँ

व्युत्पत्ति को संस्कृत में निरुक्ति, व्युत्पत्ति करने को निर्वचन तथा व्युत्पत्ति विषयक शास्त्र को निरुक्त कहते हैं। यद्यपि यह छः वेदांगों में से एक वेदांग है[1] किन्तु इस विषय पर प्राचीन काल से लेकर अभी तक बहुत थोड़ा-सा कार्य हुआ है। वास्तव में यह विषय भी बड़ा क्लिष्ट है। हम ही से यदि कोई पूछे कि आज से २००० वर्ष पूर्व के हमारे पूर्वज का क्या नाम था जिसकी वंश-परंपरा में हम उत्पन्न हुए हैं तो इस प्रश्न का उत्तर देना प्रायः असंभव है। जिस प्रकार हमारी वंश-परंपरा का इतिहास नहीं लिखा है, उसी प्रकार शब्दों का भी कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं लिखा है। फिर भी इस शास्त्र के प्रति अपनी रुचि बहुतों ने दिखाई है। कौटिल्य कहते हैं:—

"गुणतः शब्दनिष्पत्तिर्निर्वचनम् — व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम्"

(कौ० अर्थशास्त्र, पृ०, ४२६)

अर्थात् शब्द की इस प्रकार व्याख्या करना जिससे उसका अन्तर्गत भाव झलक पड़े निर्वचन कहलाता है जैसे श्रेय अर्थात् कल्याण से जो दूर हटाता है उसको व्यसन कहते हैं।

भरतनाट्यशास्त्र[2] के पृष्ठ ३ पर 'शास्त्र' की व्युत्पत्ति का उल्लेख है—'शास्त्रं शासनोपायात्' अर्थात् शासनोपाय होने के कारण शास्त्र शब्द बना।

होरा शब्द की व्युत्पति बताने की वराहमिहिर की भी इच्छा हुई। वे कहते हैं:—

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वांछन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति॥

अर्थात् अनेक आचार्यों के मत में होरा शब्द अहोरात्र शब्द से आदिम और

---

१. शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं चैव वेदांगानि षडैव तु॥

२. बड़ौदा प्रकाशन।

कि अंगरेजी का बाल शब्द दीवाल से बना है। मैंने पूछा 'दी' कहां चला गया उन्होंने कहा कि वह तो केवल आर्टीकिल था अतएव निकल गया। एक सज्जन अमृतवान को मृद-भांड का विकृत रूप कहने लगे। उन्हें यह पता नहीं था कि यह पहिले बंगाल के मर्तवान नामक नगर से आने के कारण उक्त नाम से बोधित किया गया है।

अब गणित के कुछेक शब्दों की व्युत्पत्तियों पर प्रकाश डाला जाता है।

उत्क्रमज्या, शर :

अंगरेजी में जिसे हम वर्स्ड साइन कहते हैं। संस्कृत में उसे हम उत्क्रमज्या अथवा शर कहते हैं। अंगरेजी के शब्द का वाच्यार्थ उल्टा साइन अर्थात् $\frac{१}{\text{साइन}}$ अथवा कोसीकैंट किंतु अर्थ है '१— कोसाइन'। इस उलटफेर को समझाने के लिए उनके पास कोई व्याख्या नहीं है, क्योंकि यह उत्क्रमज्या का अनूदित शब्द है, अतएव यह हमारा कर्तव्य है कि हम बतायें कि उत्क्रमज्या में क्या उत्क्रमता है। सूर्यसिद्धांत में बताया है कि राशि के अष्टम भाग की ज्या अथवा जीवा का लगभग वही मान होता है जो चाप का। इसके उपरांत ९०° में $३\frac{३}{४}$ अंश के अंतर पर २४ ज्याओं के मान निकाले हैं। ज्याओं के मान निकालने के उपरांत उसमें कहा है कि अंत की दो २ राशियों का अंतर लेकर उत्क्रम से रक्खे अर्थात् अंतिम अंतर का मान ही प्रथम $३\frac{३}{४}$ अंश की उत्क्रमज्या का मान होता है। इसी प्रकार अन्य उत्क्रमज्यायें भी निकाली जाती हैं। सूर्य-सिद्धांत के वे श्लोक निम्नलिखित हैं :—

> राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्धमुच्येत।
> ततद्विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद्द्वितीयकम् ॥
> रूपाग्नि सागरगुणा वस्वाग्निकृत वह्नयः।
> — — —
> प्रोज्झ्योत्क्रमेण व्यासार्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥
>
> (स्पष्टाधिकार १५-२२।)

उक्त व्याख्या से उत्क्रमज्या शब्द अन्वर्थक हो जाता है और अपनी संतति वर्स्ड साइन को भी अन्वर्थक कर देता है। इस का आकार शर के समान होने के कारण इसको शर भी कहते हैं, देखिए आसन्न चित्र पर अ ब धनुष के बाण जैसा ही लगता है। उत्क्रमज्याओं की सारणी द्वितीय भाग में ज्या शब्द के अंतर्गत दी हुई है।

अ

ब
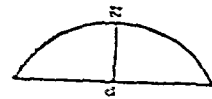
दिन, वार :

प्रारम्भ में दिन और वार दो दिनवाची पृथक् शब्द नहीं थे बल्कि अकेले वार के स्थान पर दिनवार शब्द प्रयुक्त होता था। दिन का अर्थ है 'प्रकाश'। प्रकाश के बाद अन्धकार और अंधकार के बाद प्रकाश आता है इस प्रकार इस अनन्त क्रम में कालविशेष को जानने के लिए सात क्रमानुगत प्रकाशों के नाम ग्रहों के नाम पर रख लिये। ज्योतिष की भाषा में ये ग्रह दिनाधिपति देवता माने गए। अतएव सोमवार का अर्थ है उस दिन की बारी जिसका अधिपति सोमदेव है। इसी प्रकार इतवार का अर्थ है वह दिन जिसका अधिपति आदित्यदेव है। दिनवार शब्द का वराहमिहिर कृत प्रयोग निम्न श्लोक में देखिये :—

दिनवार प्रतिपत्ति र्न समा सर्वत्र कारणं कथितम्।
नेहापि भवति यस्माद्विप्रवदन्तेऽत्र देवताः॥
द्युगणाद्दिनवाराप्तिः द्युगणोऽपि देशकाल संबंधात्।

पुनः दिनवार के दो टुकड़े हो गए एक दिन और दूसरा वार। दोनों स्वतन्त्र रूप में मूल अर्थ के द्योतक हो गए जैसे अश्विनीकुमार के दो टुकड़े होकर आश्विन और कुवांर दोनों मूल अर्थ के द्योतक स्वतन्त्र शब्द बन गए। इसी प्रकार बलीवर्द शब्द से बैल और वर्द दो पृथक् शब्द बन गए। हिन्दी के इन 'डबलिट' शब्दों का एक अपना निजी इतिहास है।

अंश :

अंश शब्द चक्रांश का संक्षिप्त रूप है। राशिचक्र के ३६० भाग किये गए और प्रत्येक भाग को अतएव चक्रांश कहा गया जिसका संक्षिप्त होकर अंश रह गया। देखिये चक्रांश का प्रयोग :—

चक्रांशकैस्तद्नैरनुवक्रं तदधिकोनभागकलाः।
मण्डलभागैस्तदूनैः प्राक् राशिषु चतुर्षु वक्रम्॥ (ब्रा० स्फु० सिद्धान्त)।
'चक्रांशैरपहृतयोजनानि कोटिः' (महाभास्करीय, पृ० १९)।

घात :

घात का अर्थ अब 'पावर' है पहिले इसका अर्थ था गुणा। पावर भी गुणा-संख्या की ही द्योतक होती है। गुणा के पर्याय थे हनन, वध तथा घात और उस समय गुणा करने से वास्तव में गुण्य के एक-एक अंक का वध ही हो जाता था अर्थात् वे मिटा दिये जाते थे, अतएव गुणा को हनन, वध तथा घात शब्दों से व्यक्त करने लगे। पूर्ण प्रणाली-ज्ञान के लिये कृपया द्वितीय भाग में गुणा शब्द का अवलोकन कीजिये। हिन्दी में इस परिवार के शब्दों में अब घात ही बचा है शेष भुला दिये गये। किन्तु ये शब्द अरब पहुँच कर ज़रब (चोट पहुँचना) शब्द से अनूदित कर लिये गये और अरबी का यह शब्द आज भी अरब तथा भारतवर्ष में प्रचलित है।

घटाना :

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'घटाना' शब्द बहुत क्लिष्ट है क्योंकि यह घट् धातु से बना मालूम होता है जिससे घटन, संघटन आदि शब्द बनते हैं। किन्तु उनमें से किसी में घटाने का गणितीय अर्थ तक नहीं है। अन्वेषण करने पर पता चला कि यह घट् धातु की प्रेरणार्थक (णिजन्त) क्रिया घाटयति से बना है। घाटयति का अर्थ हानि पहुँचाना है, इसी से हिन्दी शब्द 'घाटा' बना जिसका अर्थ है हानि। घाटे अथवा हानि से कमी होती है अतएव घाटन का अर्थ 'कम होना' हो गया। संस्कृत घाटन से हिन्दी में घटाना बना क्योंकि संस्कृत में णिजन्त में प्रायः आ पहिले अक्षर के बाद में किन्तु हिन्दी में किसी बाद के अक्षर के उपरांत लगता है जैसे पातन (सं०) तथा गिराना (हि०)। ऐसा प्रतीत होता है कि घाटन संस्कृत घातन का प्राकृत रूप होगा जो बाद में संस्कृत ने अपना लिया।

जोड़ना :

यह शब्द भी जुड़ धातु से बना है जुड़ का अर्थ है बांधना। जुड़ से जोड़न बना। जोड़न का पूर्व रूप योजन था। साधारण जनता की भाषा में 'योजन' का 'जोड़न' बन गया। अतः जोड़ना रूप हिन्दी में प्रचलित हुआ और योजन इस अर्थ में नहीं चला। योजन[1] का सर्व प्राचीन अर्थ था रथ आदि में बैल, घोड़े आदि का जोतना। जिनमें बैल जोते जाते थे उनको युग कहते थे जिसको आजकल 'जुअर' या 'जुआ' कहते हैं। बोलचाल की भाषा में प्राचीन 'योजन' को जोतना या जोड़ना आजतक कहते हैं। जैसे हल और बैल को जोड़ते हैं उसी प्रकार दो संख्याओं को जोड़ने में भी उनको एक में दूसरे को मिलाते हैं। इस प्रकार कृषीय अथवा वाहन शब्दावली से गणित का यह प्रसिद्ध शब्द निस्सृत हुआ है।

देशांतर :

यह शब्द 'देश कालान्तर' शब्द से मध्यम पद लोपी समास होकर बना है। काल शब्द का लोप हो गया। एक निर्दिष्ट देश के काल से अन्य देशों (स्थानों) का कालों का अन्तर करके ही हम अन्य देशों का देशांतर निकालते हैं। इंगलैंड के ग्रीनिच नगर को निर्दिष्ट देश (स्थान) मानकर अन्य स्थानों के देशांतर (Longitude) निकालते हैं। प्राचीन काल में उज्जयिनी को निर्दिष्ट देश मानते थे। पंचांग में काशी के सापेक्ष अन्य स्थानों का देशांतर दिया रहता है। देखिये :—

लंकामात्स्यपुरावन्तिस्थानेश्वरसुरालयान्।
अवगाह्य स्थिता रेखा देशान्तरविधायिनी॥ (लघुभास्करीय, पृ० ८)

---

१. योजन दूरी का भी एकक था। बैल या घोड़े एक दफ़े में जुत कर बिना खोले हुए जितनी दूर चले जाते थे, उनको योजन कहते थे।

अर्थात् शून्य देशान्तर वाली रेखा पहिले लंका, उज्जैन तथा थानेश्वर से होकर जाती थी। देशान्तर के लिए महाभास्करीय, (पृ० २१३६ ई०) में देशकाल विवर शब्द आया है, विवर का अर्थ 'अन्तर' होता है। अतएव उक्त व्युत्पत्ति की पुष्टि होती है।

इस प्रकार गणितीय शब्दों की व्युत्पत्तिविषयक अध्ययन सम्भवतः यह प्रथम ही है। इस प्रकार की रोचक व्युत्पत्तियों से यह ग्रंथ ओतप्रोत है। अतः और अधिक उदाहरण देने से क्या लाभ। पाठकगण स्वयं ही ग्रंथ में यथास्थल इन व्युत्पत्तियों को देखने की कृपा करेंगे।

प्रकरण २. गणितीय शब्दों के प्राचीन प्रयोग

गणित भारत के प्राचीनतम शास्त्रों में से एक है अतएव उसके प्रयोग भी प्राचीनतम क्यों न हों। नीचे कुछ प्राचीन प्रयोग दिखाये जा रहे हैं :—

संख्यावाचक शब्द—संख्यावाचक शब्द ऋग्वेद में ही मिलते हैं। देखिए :—

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥

इस मन्त्र में बारह के लिये द्वादश तथा तीन सौ के लिये त्रिशत् तथा साठ के लिये षष्टि शब्द आये हैं। यजुर्वेद के निम्नलिखित मंत्र में दस खरब तक की संख्याओं का उल्लेख है। यथा :—

इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सान्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रास्मिंल्लोके।

(यजु० १७।२)

संख्या :

संख्या शब्द का प्रयोग भी अत्यन्त प्राचीन है। यह सबसे पहले शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। यथा :—'कैतासामसंख्यातानां संख्येति' अर्थात् ब्रह्मा के उस अनन्त रेत की संख्या क्या है ?

गणित :

गणित शब्द निम्नलिखित वेदांग ज्योतिष के श्लोक में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ है :—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा
तद्वद्, वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि वर्तते।

शून्य :

गणितीय अर्थ में शून्य शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पिंगल छन्दःशास्त्र में हुआ है। यथा :—'रूपे शून्यं' रूपे अर्थात् एक घटाने पर शून्यं अर्थात् शून्य चिह्न लगायें। 'द्विः शून्ये' अर्थात् जहाँ-जहाँ शून्य चिह्न हो वहाँ दो से गुणा करें।

भिन्न :

भिन्न शब्द का गणितीय अर्थ में प्रथम प्रयोग वेदांग ज्योतिष के निम्नलिखित श्लोक में हुआ है :—

> त्र्यंशो भशेपो दिवसांशभागश्चतुर्दशस्याप्यपनीय भिन्नम्
> भार्धेऽधिके चाधिगते परेंशे द्यूतमैकं नवकैरवेत्य ।२७।।

अंश :

अंश शब्द भी वर्तमान अर्थ में उक्त श्लोक में सर्वप्रथम आया है।

वर्ग :

वर्ग शब्द पंक्ति के अर्थ में गणितीय प्रसंग में शुल्व सूत्रों में सर्वप्रथम देखने को मिलता है :—

> यावत्प्रमाणा रज्जुर्भवति तावन्तस्तावन्तो वर्गा भवन्ति।

यहाँ वर्ग का अर्थ पंक्ति तथा किन्हीं के मत में एकक वर्ग भी है।

ज्या :

त्रिकोणमितीय ज्या के अर्थ में ज्या का प्रथम प्रयोग सूर्यसिद्धान्त के निम्नलिखित श्लोक में आया है :—

> राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते।

इसी ज्यार्ध शब्द का संक्षिप्त होकर ज्या शब्द बन गया। वैसे ज्या शब्द वैदिक है। वहाँ इसका अर्थ प्रत्यंचा है। बाद को इसका अर्थ जीवा और पुनः अंत में त्रिकोणमितीय ज्या हो गया।

ऋण, धन :

ऋण और धन शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलते हैं :—

> जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित्
> ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुपनक्तमेति।

ये ही साधारण धन, ऋण शब्द बाद में गणित के पारिभाषिक शब्द बन गये।

इस प्रकार के प्राचीन प्रयोगों का इस ग्रंथ के द्वितीय भाग में सर्वत्र उल्लेख किया गया है। आशा है पाठकगण इनको देखकर अपने गणित तथा अपनी सभ्यता की प्राचीनता का अनुमान लगाकर आनन्दविभोर हो जायेंगे।

प्रकरण ३. गणितीय शब्दों के अर्थ विकास की एक झलक

गणित :

गणितीय शब्दों के अर्थ विकास का इतिहास बड़ा रोचक है। इसका विशद वर्णन द्वितीय भाग में है। नीचे उदाहरणार्थ कुछ शब्दों का अर्थ विकास दिखाया गया है :—

गणित शब्द वेदों में नहीं आया और न गण धातु का कोई प्रयोग वेदों में मिलता है। किन्तु गण शब्द समूह अथवा कबीले के अर्थ में वेदों में बाहुल्य रूप से मिलता है। केवल गण धातु से बना हुआ गण्या मही के विशेषण के अर्थ में आता है जिसका अर्थ सायण ने पूजार्ह किया है। हो सकता है कि यह गण धातु से ही निस्सृत हो। किन्तु गण शब्द कबीले का वाचक होने से गणना से पहले के भाव का द्योतक है अतः सम्भव है बाद में गणों के गिनने की आवश्यकता पड़ी हो, अतएव गण धातु की कल्पना की गई हो। वाजसनेयि संहिता में गणक शब्द मिलता है। अतएव उस काल तक की गण धातु की कल्पना अवश्य हो चुकी थी। फिर भी क्त प्रत्ययान्त रूप 'गणित' वेदांग ज्योतिष में ही सर्वप्रथम देखने को मिलता है, जहाँ इसका अर्थ ज्योतिष है। इस गणित का आदिम रूप नक्षत्र-विद्या ही रही होगी जिसका उल्लेख छान्दोग्योपनिषद् वाली नारद सनत्कुमार कथा में आया है। बाद को गणित तथा ज्योतिष शब्द नक्षत्र विद्या के स्थान पर प्रयुक्त होने लगे। यद्यपि संहिता-काल में गणक शब्द के मिलने से यह प्रतीत होता है कि कुछ साधारण गणना ज्योतिषी लोग कर निकले होंगे किन्तु शास्त्र के रूप में वेदांगज्योतिष काल में ही इसका प्रयोग देखने को मिलता है। वेदांगज्योतिष में भी गणित का अर्थ ग्रह-गणित अथवा ज्योतिष ही था। विशुद्ध गणित के अर्थ में संख्यान शब्द का प्रयोग होता था। जैनियों के धार्मिक ग्रंथों में गणितानुयोग नामक एक अनुयोग था। जैन काल में ही ३०० ई० पूर्व के आसपास गणित विशुद्ध गणित के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। बख्शाली पांडुलिपि में, आर्यभटी के गणितपाद शब्द में गणित विशुद्ध गणित के अर्थ में आया है। यद्यपि क्षेत्रगणित इसमें सम्मिलित था। स्पष्ट है गणित अब ज्योतिष से पृथक् सत्ता रखने लगा।

करणी :

शुल्बकाल में करणी शब्द का अर्थ था करने वाली अर्थात् वेदी की रचना करने वाली। रचना करने वाली रस्सी हुआ करती थी। इसी को अक्ष्णया रज्जु अथवा अक्ष्णयाकरणी कहते थे। बाद को करणी का अर्थ रज्जु हो गया। इससे वर्गाकार वेदी की भुजा बनती थी अतएव उसका अर्थ वर्ग की एक भुजा हो गया। पुनः वर्ग बनाते-बनाते करणी का अर्थ वर्ग भी हो गया। इसके उपरान्त उस संख्या के लिये यह शब्द प्रयुक्त होने लगा जिसका वर्ग-मूल पूरा न निकल सके। किन्तु जो वर्ग की एक भुजा द्वारा निरूपित किया जा सके।

वर्ग :

वर्ग शब्द शुल्व काल में पंक्ति के अर्थ में था तथा आधुनिक वर्ग के अर्थ में समचतुरस्र शब्द चलता था। जहाँ कोई भ्रम न हो वहाँ अकेला चतुरस्र शब्द भी वर्ग के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था। वर्ग की भुजाओं में एकक मान की दूरी पर उतने वर्ग बन जाते थे जितनी एकक लम्बी वर्ग की एक भुजा हो। इन्हीं एकक वर्गों से बाद में वर्ग शब्द सम-चतुरस्र के स्थान में प्रयुक्त होने लगा। इसके उपरान्त संख्यात्मक वर्ग भी किसी संख्या को उसी संख्या से ही गुणा करने पर आता है। इसी प्रकार वर्ग का क्षेत्रफल भी भुजा को भुजा से ही गुणा करने पर आता है। अतएव संख्यात्मक वर्ग के लिये वर्ग शब्द ही प्रयुक्त होने लगा। इसी प्रकार घन शब्द भी पहले ठोस के अर्थ में था बाद में अंकगणितीय अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा।

शर, इषु :

साधारण भाषा में इनका अर्थ बाण था। किन्तु कात्यायन शुल्व सूत्र में यह इषु शब्द समद्विबाहु त्रिभुज के शीर्ष-लम्ब के लिये प्रयुक्त होने लगा। यह भी बाण के आकार का ही होता है। बाद को जीवा के एक भाग के लिये प्रयुक्त होने लगा। यह भी बाण जैसा ही दृष्टिगोचर होता है जैसा कि आसन्न चित्र में दिखाया गया है। क ख शर है। जब ज्या सूर्य-सिद्धान्त में

त्रिकोणमितीय अर्थ में प्रयुक्त होने लगा तब शर शब्द उत्क्रम ज्या के अर्थ में आगया क्योंकि इसका मान क ख ही रहा।

चाप :
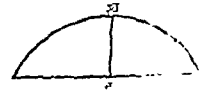
पहले चाप धनुष का विशेषण था अर्थात् चाप नामक बांस विशेष से विनिर्मित, जैसे शार्ङ्ग का अर्थ था शृंग का बना हुआ। किन्तु बाद में चाप का अर्थ धनुष हो गया। धनुषाकार होने से वृत्त की परिधि के एक अंश को भी चाप कहने लगे। इसी प्रकार जीवा धनुष की प्रत्यंचा के आकार के होने के कारण जीवा कहलाने लगी। त्रिकोणमितीय भाव में किन्तु जीवार्ध शब्द चला जिसका संक्षिप्त रूप ज्या ही रह गया।

व्याज :

व्याज शब्द प्रारम्भ में छल के अर्थ में था। पुनः छल करने के निमित्त राजा को अन्नादि के लेने में जो हानि होती थी उसकी पूर्ति करने के लिये जो ऊपर से और मुट्ठी भर अन्न डाल दिया जाता था उसको व्याजी कहते थे। इसी प्रकार राजा के लिए यदि गरम घी खरीदा जाता था तो तप्तव्याजी नामक एक क्षतिपूरक कर के रूप में राजा को थोड़ा और घी दे दिया जाता था। इसका उल्लेख कौटिल्य अर्थ-शास्त्र में मिलता है। बाद को यह शब्द इस अर्थ में संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त नहीं हुआ। केवल प्रादेशिक बोलियों में गुजरात की तरफ व्याज शब्द सूद के अर्थ में

प्रयुक्त होता रहा। गणित तिलक की टीका में पुन:सिंहतिलक सूरि ने इसे संस्कृत में प्रविष्ट किया। इस प्रकार ब्याज का अर्थ सूद हो गया। अब प्राय: सभी हिन्दी भाषी क्षेत्रों में इसका प्रयोग सूद के अर्थ में होता है।

अंक :

यह शब्द सर्वप्रथम आंकड़ें (हुक) के अर्थ में प्रयुक्त होता था। आंकड़ा भी टेढ़ा होता है। देखिये ऋग्वेद का मंत्र :—

यन्नीक्षणं मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।
ऊष्मण्या पिधानां चरूणामंका: सूना परि भूषयन्तश्वम्।

(अर्थ द्वितीय भाग में देखिये)

अंक से बना हुआ अंकस शब्द है जिसका अर्थ ऋग्वेद में (४।४०।४) में वक्र अथवा सड़क की मोड़ है। अंक का अर्थ बाद में चिह्न हो गया। पहले पशुओं के दागने के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था। कौटिल्य अर्थशास्त्र की निम्न पंक्ति अवलोकनीय है :—

मासद्विमासजातानंकयेत्। अंकं चिह्नं शृंगान्तरं च लक्षणमेवमुपजा निवन्धयेत्।

इस काल में चिह्न प्राकृतिक चिह्न को कहते थे तथा अंक दागने के चिह्न को कहते थे। अंक शब्द सील के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ। यथा :—

कृतनरेन्द्रांकं शस्त्रावरणमायुधागारं प्रवेशयेत्। (कौटिल्य०)

सील में राजा के नाम के अक्षर होते हैं अत: उसके लिए अंक शब्द प्रयोग किया गया। संख्याओं के अंक संख्याओं के चिह्न ही होते हैं। अत: अंक आधुनिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ। संख्याओं को चिह्नित करते-करते अंक का अर्थ संख्या भी हो गया। जैसे अंकगणित तथा गुणांक शब्द में। अंक का एक अर्थ अक्षर भी है। अंक तथा अक्षर दोनों चिह्न विशेष हैं तथा वक्रों से ही बने हैं। तुलसीदास जी ने इस अर्थ में इसका निम्नलिखित चौपाई में प्रयोग किया है :—

जरत विलोकेउ जबहि कपाला। विधि के लिखे अंक निज माला।।

यदि देखा जाय तो अंक मोड़ों का ही एक शास्त्रीय तथा विशिष्ट विकास है। इसी प्रकार गणितीय शब्दों का क्रमिक अर्थ विकास को दिखाने का इस ग्रंथ में प्रयत्न किया गया है। पाठकगण इसे द्वितीय भाग में यथास्थल देखने का कष्ट करेंगे।

प्रकरण ४. प्राचीन गणितीय शब्दावली की रचना के मूलभूत सिद्धांत

प्राचीन शब्दों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि हमारे पूर्वज शब्दावली की रचना के इन आगे लिखे मूल सिद्धांतों से [illegible]त थे :—

१. शब्द जहां तक हों छोटे तथा सुश्लिष्ट होने चाहिये। अतः उनको प्रायः मध्यम-पद-लोपी समास का आश्रय लेना पड़ा। जैसे देशान्तर शब्द देशकालान्तर से बना है जिसमें मध्यमपद काल का लोप कर दिया। शब्द को यों भी संक्षिप्त कर देते थे जैसे क्रान्ति के लिये आर्यभट्ट ने 'अपक्रम' शब्द प्रयुक्त किया अतएव क्रान्ति-वृत्त के लिए अपक्रम मंडल होना चाहिए था, लेकिन उन्होंने इसको संक्षिप्त करके अपमण्डल कर दिया। चक्रांश को भी संक्षिप्त करके अंश शब्द से व्यक्त करने लगे।

२. यथासम्भव शब्द अन्वर्थक होने चाहिये। प्राचीन शब्दों में यह गुण बहुत अधिक मात्रा में देखने को मिलता है। भिन्न (टूटा हुआ), हर (भाग देने वाला), अंक (चिह्नित करने वाला), बीजगणित, समीकरण, देशांतर, अक्षांश, आदि शब्द अधिकतर अन्वर्थक हैं। कृपया उनकी अन्वर्थकता जानने के लिये इनकी व्युत्पत्तियों को द्वितीय भाग में यथास्थल देखिये।

३. कभी-कभी जब भाव बहुत क्लिष्ट हो तो उसको यों ही किसी यादृच्छिक शब्द से व्यक्त कर देते थे। जैसे महावीराचार्य ने लघुतमसमापवर्त्य को निरुद्ध शब्द से व्यक्त किया।

४. यदि कोई विषय विदेश से लिया हो तो उस विषय के वस्तु एवं नाम सम्बन्धी नाम नये बनाने की आवश्यकता नहीं। जैसे फलित ज्योतिष में वर्षफल पद्धति जब फारस से अपनाई गई तो नीलकंठ जी ने ताजिक नीलकंठी में योगों के नाम नये नहीं बनाये बल्कि उन्हीं के शब्द ले लिये। उनके स्थान पर अपने नाम गढ़ना व्यर्थ था।

५. यदि विदेशी शब्द छोटे और सुन्दर हों तथा अपने शब्दों से मेल खाते हों एवं वे किसी क्लिष्ट कल्पना के वाचक हों तो उनके लिए अपने शब्द बनाना व्यर्थ है। उनको अपना लेने में कोई हानि नहीं। जैसे केन्द्र तथा होरा शब्द प्राचीन भारतीय ज्योतिष ने अपना लिये।

६. संदिग्धता दोष का निवारण करना चाहिए। संदिग्ध और अयथार्थ शब्दों की अपेक्षा विदेशी शब्द अच्छे होते हैं। जैसे केन्द्र के लिए पहले मध्य शब्द प्रचलित था किन्तु मध्य शब्द में केन्द्र से सन्निहित भाग भी समझा जा सकता था, अतएव मध्य के स्थान पर केन्द्र शब्द ग्रहण कर लिया। केन्द्र का मूल यूनानी शब्द केन्त्रान नुकीली परकार के अर्थ में था। परकार से छिदे हुए बिन्दु को भी केन्त्रान कहते थे। अतः वह मध्य की अपेक्षा केन्द्र के लिए अधिक उपयुक्त था।

७. हम विदेशी शब्द आवश्यकतानुसार ग्रहण कर लें किन्तु उनका व्याकरण हो। अलबरूनी ने त्रैराशिक का राशिक शब्द तो ले लिया किन्तु उसका बहुवचन

राशिकात बनाया और इस प्रकार अपनी पुस्तक का नाम 'फीराशिकातअलहिन्द' रखा ।

८. विदेशी शब्दों के अपनाने में अनुपात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। वराहमिहिर ने यूनानी विषय रोमक सिद्धान्त, पोलिश सिद्धान्त आदि भी प्रतिपादित किए। किन्तु पूरी पंच सिद्धान्तिका में १० शब्दों से अधिक यूनानी शब्द ग्रहण नहीं किए। इसी प्रकार नीलकण्ठ ने ताजिक नीलकंठी पारसीक पद्धति के आधार पर लिखी फिर भी फ़ारसी शब्द पचास से अधिक नहीं लिए होंगे। यदि उचित अनुपात में विदेशी शब्द अपनी भाषा में अपनाये जायें तो वे पच सकते हैं। किन्तु यदि दस हिन्दी शब्दों में तीस अंगरेजी शब्द मिला दिये जायें तो वे पचाये नहीं जा सकते। उनके योग से एक विचित्र भाषा बनकर तैयार हो जाती है जिसको अपनी भाषा कहना किसी भी देश तथा जाति के लिए गौरवप्रद नहीं हो सकता। आजकल की हमारी बोलचाल की भाषा कुछ ऐसी ही है। यथा :—

"कल सिनेमा के सेकेंड शो में गए थे। इन टाइम पहुँचे। टिकट विण्डो पर बड़ा रश था। बड़ी डिफीकल्टी से टिकट लिया और हौल में एंटर हुए। स्मोकिंग की वजह से तमाम एटमास्फीयर खराब हो रहा था। उधर थर्डक्लास जैन्ट्री हूटिंग कर रही थी। हाल बुरी तरह पैक्ड था किन्तु जैसे ही न्यूज़ रील खत्म हुई और पिक्चर स्टार्ट हुई कि पिनड्राप साइलेंस हो गई।"

बहुत से लोग इसी प्रकार की वैज्ञानिक भाषा बनाना चाहते हैं।

९. प्राचीन परम्परावादी पुरुष नए शब्द बिल्कुल नहीं बनाना चाहते और यद्यपि नये भाव प्राचीन शब्दावली की अपेक्षा दूनी मात्रा में भी हों तो भी उन्हीं शब्दों के संयोगों से उन भावों को व्यक्त करना चाहते हैं और उनके लिए नए छोटे शब्द नहीं बनाना चाहते। इस प्रकार की लम्बी शब्दावली कभी समादृत नहीं होती और अतएव चिरस्थायी नहीं होती। देखिए सम्राट् जगन्नाथ के निम्नलिखित लम्बे शब्द अब नए छोटे शब्दों से प्रतिस्थापित कर दिये गये हैं :—

छेदित-घनक्षेत्र (समपार्श्व), सूचीफलकशंकुघनक्षेत्र (सूचीस्तम्भ), समानान्तर-धरातलघनक्षेत्र (समांतरफलक), समतलमस्तकपरिधि (वेलन), मस्तकपरिधि (शीर्षलंब), समकोणसमचतुर्भुज (वर्ग), चापकर्ण (जीवा)।

१०. शब्दावली को जनसाधारण की भाषा से बहुत दूर नहीं जाना चाहिए। कभी-कभी साधारण भाषा के शब्दों में ही विशिष्ट अर्थ निहित कर देने से वे ही पारिभाषिक शब्द बन जाते हैं। जैसे शून्य, रेखा, विन्दु, खंड, गणना, समान्तर, अन्तर, योग, वियोग, भाग, भिन्न, वर्ग, घन आदि। वैदिक तथा ब्राह्मण शब्दों को

सूचियों को जो ऐतिहासिक अध्ययन के अध्याय में दी हुई हैं देखिए। इनके देखने से पता चलेगा कि गणित ने अनेक साधारण भाषा के शब्दों को अपना रखा है।

११. प्राचीन शब्दावली के अध्ययन से पता चलता है कि प्रत्येक लेखक ने अपने समय से पूर्व की शब्दावली को पूर्णरूप से अपनाया है, तथा केवल नए भावों के लिये ही नए शब्द बनाए। यों ही बिना आवश्यकता के नवीन शब्द सृजन करने का किसी को चाव नहीं था। बहुत से लोग यों ही नए शब्द गढ़कर पुत्रजन्म के सुख का अनुभव करते हैं।

१२. शब्दावली व्याकरण-सम्मत तथा कोश-सम्मत होनी चाहिए। इसी कारण प्राचीन गणितीय शब्दावली इतनी अधिक चिरस्थायी तथा समादृत हुई।

१३. केवल प्राचीन होने से ही शब्द ग्रहण योग्य नहीं हो जाते, जब तक कि वे उस समय की भाषा की प्रकृति के अनुरूप न हों। देखिए वैदिक काल तथा शुल्वकाल की कितनी शब्दावली बाद में बदल गई। भाषा को सामयिक होना आवश्यक है। अयुत, नियुत तथा प्रयुत वाली वैदिक संख्या-शब्दावली को जीवित रखने का हिन्दू गणितज्ञों ने अथक प्रयत्न किया किन्तु अन्त में सफल नहीं हुए और दस सहस्र, लक्ष, दस लक्ष तथा कोटि शब्द उनके स्थान पर आ ही गये। कवि-कुल गुरु कालिदास की निम्न उक्ति इस प्रसंग में स्मरणीय है :—

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्,
न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूर्खाः पर प्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

१४. विदेशी शब्द को अपनाते समय यह देखते थे कि यदि शब्द छोटा हो और अपनी भाषा में उच्चारणीय हो तो उससे मिलते-जुलते किसी अपने शब्द में उक्त अर्थ लिख देते थे। जैसे अरब वालों ने जीवा के अर्थ को अपने जेब (कपड़े की) शब्द के आगे रख दिया। यदि कोई ऐसा शब्द न मिले तो ध्वनि साम्य पर अपनी भाषा में वैसा ही एक नया शब्द बना लेते थे और उसका अर्थ वही रख देते थे जो कि विदेशी शब्द का हो। जैसे कैंत्रान का केन्द्र, द्रावमे का द्रम्म तथा होराइजन का हरिज। यदि शब्द बहुत ही छोटा हो और अपनी भाषा से मिलान खाता हो तो ज्यों का त्यों भी ले लेते थे। जैसे यूनानी शब्द होरा ले लिया गया। यदि शब्द बिल्कुल अग्रहणीय हो तो उस शब्द के मूर्त अर्थ अथवा विज्ञानेतर अर्थ का अनुवाद कर लेते थे। जैसे अरबी शब्द जेब का योरोपीय भाषाओं में साइनस शब्द से अनुवाद कर लिया। दोनों का मूर्त अर्थ 'बूज़म आफ दी गारमेंट' था। यदि वैज्ञानिक अर्थ —रल हो और अनूदित हो सकने योग्य हो तो अनूदित भी कर लेते थे। जैसे त्रैराशिक

नियम शब्द को 'रूल आफ दी थ्री' से अनुदित कर लिया गया। हिन्दी की वर्तमान गणितीय शब्दावली का उक्त नियमों के अनुसार अगले प्रकरण में अध्ययन किया गया है।

प्रकरण ५. वर्तमान गणितीय शब्दावली में विदेशी भाषाओं के शब्द

समध्वनिक शब्द :

अंगरेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं के कुछ शब्दों का केवल ध्वनि साम्य के आधार पर हिन्दी में अनुवाद किया गया है। अनुवाद कर लेने के पश्चात् उनमें सेकुछ शब्दों के संस्कृत के आधार पर अर्थ भी निकाल लिए गए हैं। इस प्रकार के कुछ शब्द नीचे दिए जा रहे हैं :—

अपेरण	Abberation	मितकेन्द्र	Meta Centre
लघुगणक (लघुरिक्थ)	Logarithm	सर्पिल	Spiral
परवलय	Parabola	फलन	Function
दशमलव	Decimal	अन्वालोप	Envelope
ज्यामिति	Geometry	त्रिकोणमिति	Trigonometry
निष्पत्ति (निस्वत)		सममिति	Symmetry
परिमिति	Perimeter	अन्तराल	Interval
केन्द्र	kentron	अन्तरिम	Interim

उपरोक्त शब्दों में से कुछ ध्वनिसाम्य तथा अर्थ साम्य दोनों पर ही आधरित हैं, जैसे परिमिति, सममिति, अन्तराल तथा अन्तरिम शब्द।

लघुगणक के लिये महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने अपने गणित के इतिहास में लघुरिक्थ शब्द बनाया था। रिक्थ पैतृक धन को कहते हैं इसका अर्थ नितान्त अप्रासंगिक समझकर बाद में इसे लघुगणक कर दिया, जिसका अर्थ है लघु रीति से गणना कर देने वाला अर्थात् शीघ्र बड़े-बड़े गुणा भाग तथा घात गणना कर देने वाला। वास्तव में इसकी सहायता से चक्रवृद्धि व्याज के लम्बे-लम्बे प्रश्न भी शीघ्र निकल आते हैं तथा इसी प्रकार अन्य लम्बी-लम्बी गणनायें भी। त्रिलोकसार में नेमिचन्द्र जैन ने अर्धच्छेद शब्द इससे कुछ मिलते-जुलते अर्थ में प्रयुक्त किया था जैसे आठ के तीन अर्धच्छेद हो सकते हैं। अर्धच्छेद का अर्थ अधियाना है अर्थात् आठ तीन बार अधियाये जा सकते हैं। डा० रघुवीर ने इसी आधार पर छेदा शब्द लघुगणक के लिये बताया था।

सममिति का अर्थ है समान मिति अथवा सम-मित का भाव। कोई वक्र तब किसी रेखा के प्रति सममित होता है जब इस रेखा के इधर-उधर के दोनों भाग बिलकुल एक से हों।

फंक्शन का पर्याय फल ही पर्याप्त था। जैसे जनसंख्या-वृद्धि, जन्मदर, मृत्युदर तथा प्रव्रजन का फल है। ध्वनिसाम्य के कारण तथा फल के अनेकार्थक होने के कारण इसको फलन कर दिया गया।

त्रिकोणमिति शब्द बापूदेव शास्त्री ने (सन् १८२१ ई०) बताया था। उन्होंने त्रिकोणमिति नामक ग्रन्थ लिखा था। मिति किसी शब्द के आगे विद्या के अर्थ में लगाया जाता है। उर्दू में भी त्रिकोणमिति को इल्मे मुसल्लस कहते हैं। त्रिगोन, त्रिकोण तथा मुसल्लस त्रिभुज के पर्यायवाची शब्द हैं।

कुछ समासयुक्त पदों का एक शब्द ध्वनि साम्य पर तथा दूसरा अर्थ साम्य पर बना है जैसे हाइपरबोला के लिये अतिपरवलय शब्द है। अति उपसर्ग का अर्थ अंगरेजी के हाई के समतुल्य है।

कोरे शब्दानुवाद :

कुछ शब्द कोरे शब्दानुवाद हैं। जैसे अंगरेजी के एक्सप्रेशन के लिये हिन्दी का व्यंजक शब्द अथवा इनशिया के लिये जड़त्व। इनशिया का अर्थानुवाद अवस्थितित्व है। क्योंकि जड़ता में केवल जड़ रहने का ही अर्थ है किन्तु इनशिया शब्द में यदि चल रहा हो तो चलता ही रहे और जड़ हो तो जड़ ही बना रहे, ये दोनों अर्थ सम्मिलित हैं। अंगरेजी के न्यूटरल का उदासीन, इंट्रिंसिक का नैज तथा क्यूबाइड का घनाभ कोरे शब्दानुवाद हैं। नीचे इस प्रकार के कतिपय और शब्द दिये जा रहे हैं:—

चिक्कण वक्र	Smooth curve	प्राकृत (लघुगणक)	Natural logarithm
उचित भिन्न	Proper fraction	केशाकर्षण	Capillary attraction
सदिश त्रिज्या	Radius vector		

इसमें कोई संदेह नहीं कि विदेशों से भी भारत में कुछ शब्द फलित ज्योतिष के संबंध में आए। यूनानी शब्द 'कैंत्रान' यहाँ आकर केंद्र बन गया। सबसे पहिले यह ज्योतिषीय शब्द ऐनामली के अर्थ में प्रयुक्त हुआ था। पुनः यह ज्यामितीय होने लगा। यूनानी शब्द 'आपो केंद्र के अर्थ में भी प्रयुक्त क्लिम' मेषूरण, हरिज, द्रेष्काण तथा फारसी अरबी के ईसराफ, ईक्कवाल, इंदुवार (अदवार), रद्दयोग, इत्थशाल, तम्बीर आदि अनेक शब्द ताजिक नीलकंठी में मिलते हैं। यूनानी शब्द वराहमिहिर ने तथा फ़ारसी एवं अरबी के शब्द नीलकंठ ने अपने

ग्रंथ में ग्रहण कर लिए। हमारा दाम शब्द भी यूनानी शब्द 'ड्राक्मे' है जिससे संस्कृत में द्रम्म शब्द बना तथा द्रम्म से हिंदी में दाम बना। यह चाँदी का एक सिक्का था जो कनिष्क तथा हुविष्क के समय में बहुत चलता था। आर्यभट्ट ने भी दो एक यूनानी शब्द लिए जैसे शनैश्चर के लिए उनका कोण शब्द, तथा होरा शब्द। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिन विदेशी शब्दों को भारतीय लेखकों ने अपनाया उनका भारतीयकरण अवश्य किया। मूल रूप में केवल वे ही शब्द लिए जो संस्कृत में चल सकते थे। जैसे यूनानी कैंत्रान शब्द केन्द्र बनाकर ही ग्रहण किया न कि कैंत्रान के रूप में। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इस प्रकार का आदान-प्रदान चलता था और इसमें हमारे पूर्वज अपनी मानहानि नहीं समझते थे। भारतीयकरण करके विदेशी शब्द ऐसे रचपच जाते थे कि वे विदेशी लगते ही नहीं थे और इस प्रकार सुदीर्घकाल तक प्रयोग में चलते रहे, नहीं तो थोड़े काल के उपरान्त ही दूसरे लेखक उन्हें ग्रहण नहीं करते थे। सम्राट जगन्नाथ ने फ़ारसी 'निस्बत' शब्द को निष्पत्ति बनाकर ग्रहण किया जिसे अब बहुत कम लोग विदेशी समझते हैं, बल्कि उल्टे निस्बत को ही निष्पत्ति से निस्सृत मानते हैं। आजकल के बहुत से विद्वान विदेशी शब्दों को ज्यों का त्यों लेने के पक्ष में हैं। उन्हें इन प्राचीन विद्वानों से शब्दावली-रचना के नियम सीखने चाहिए। वे लोग विषय तथा भाषा दोनों के ही विद्वान थे अतः उनका दिखाया हुआ मार्ग ही अधिक अनुसरणीय है।

बियर का अर्थ रीछ है। संभव है 'बियर' ऋक्ष का ही अनुवाद हो। ऋक्ष का ऋग्वेदीय प्रयोग निम्नलिखित मंत्र में देखिए :—

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृशे। कुह चिद्दिवेयुः ॥
(१।२४।१०)

अर्थात् ये ऋक्ष जो रात में चमकते हैं दिन में कहाँ चले जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में कहा है :—

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते।
(श० ब्रा० २. १. २. ४.)

अर्थात् सप्तर्षियों को ही पहिले ऋक्ष कहते थे।

भारतीय अंकगणितीय और बीजगणितीय शब्दावली ने अरब को बहुत अधिक प्रभावित किया। ज्योतिष में गणनाओं का वाचक शब्द धूलिकर्म था जिसको उन्होंने हिसाबअलगुबार तथा धूलिअंकों को हुरूफुलगुबार शब्दों से उत्तरी अफ्रीका (मिस्र देश) तथा स्पेन देश में अनूदित किया। अंकगणित के पर्यायवाची पाटीगणित शब्द को 'इल्म-हिसाब-अलतख्त' तथा 'हिसाबुलहिंद' शब्दों से अनूदित किया। योरुप में इन्हीं धूलिकर्म तथा पाटीगणित शब्दों को 'लाइबर एबेकी' तथा 'एबेकस' शब्दों से अनूदित किया। अंगरेजी का एबेकस शब्द यूनानी आबक्स (Abax) शब्द से निस्सृत है जो स्वयं सैमिटिक आबाक़ (Abaq)[1] से बना है। आबाक़ का अर्थ है धूल, अतएव एबेकस का अर्थ है 'ऐसी पट्टी जिस पर धूल बिछी हो। इस प्रकार 'लाइबर एबेकी, का वही अर्थ हो जाता है जो धूलिकर्म तथा पाटीगणित शब्दों का होता है। पहिले भारत में ज्योतिषी लोग पट्टी पर धूल बिछाकर गणना किया करते थे।

बीजगणित शब्द का अर्थ था बीजों अर्थात् चारों प्रकार के समीकरणों से संबन्धित गणित अर्थात् समीकरणगणित। समीकरणों के साधन में भिन्नों के हरों को गुणा करके उन्हें समहर कर लिया जाता था और पुनः हर को दोनों ओर से निकाल देते थे। इस क्रिया के करने के बाद दोनों पक्षों की तुलना की जाती थी। इन दोनों क्रियाओं के द्योतक शब्द अरबी में क्रमशः जब्र और मुक़ाबला शब्द थे। अरबी लेखक अलख्वारिज्मी (८२५ ई०) ने अतएव अपनी बीजगणित की पुस्तक का नाम 'अलजब्रुल मुक़ाबला' रक्खा। इसी अरबी पुस्तक का योरुप में इटली आदि देशों में इतना प्रचार हुआ कि इस शास्त्र का नाम ही वहाँ अल्जेब्रा हो गया। लेओनार्डो नामक इटली का एक व्यापारी उक्त पुस्तक को इटली ले गया था। वहाँ

---

१. देखिए बुलैटिन आफ मैथिमैटिकल एसोशियेशन, इलाहाबाद यूनि० १९२८-२९, पृ० ३४।

लैटिन में सर्वप्रथम लूकस पेसिओलस (१४६४ ई०) ने लेओनार्डो के पुस्तक के आधार पर प्रथम बीजगणित की पुस्तक लिखी। अल्जेब्रा को अंगरेजी में 'अनेलिसिज' भी कहते थे। डी एलेम्बर्ट कहते हैं :—Analysis is a method of resolving mathematical problems by reducing them to equations.

यह परिभाषा भी बीजगणित शब्द के मूल अर्थ से मिलान खाती है। जापानी भाषा का किगेनसीहो (Kigenseiho) शब्द जिसका अर्थ है अव्यक्त को व्यक्त करना, समीकरण से ही संबन्धित है। अतः हमारे बीजगणित शब्द से ही बहुत से बीजगणित के पर्यायवाची शब्द व्युत्पन्न हुए। बीजगणित से पूर्व कुट्टक शब्द इसके लिए ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रयुक्त किया गया था, योरुप में भी इसको whet stone से अनूदित किया। कुट्टक भी पत्थर तोड़ने का लोढ़ा जैसा एक उपकरण था।

ब्रह्मगुप्त का योग तथा श्रेढ़ीयोग के अर्थ का द्योतक शब्द संकलित से प्रभावित होकर अलबरूनी ने अपनी एतद्विषयक पुस्तक का नाम 'फी संकलित इल-अदद-जै निस्फ' रक्खा। त्रैराशिक शब्द से प्रभावित होकर उसने अपनी एक और पुस्तक का नाम 'फी-राशिकात-अल-हिंद' रक्खा। अंक के अनुवाद हिंदसा[2] तथा अल अरकाम अल हिंद शब्द द्योतित करते हैं कि अरबों ने अंक भारतवर्ष से ही सीखे थे। अतएव अंक को अनूदित करने के बजाय उन्होंने उक्त तथ्य के स्मारक उक्त शब्द रखे। त्रिकोणमितीय जीवा, कोटिज्या, उत्क्रमज्या शब्दों का भी अरबों पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने जीवा को तो ग्रहण ही कर लिया और उसका देशगत उच्चारण 'जेब' कर लिया। लैटिन का 'साइनस' तथा अंगरेजी का 'साइन' शब्द जेब के ही अनूदित शब्द हैं। सबका मूल अर्थ वही है जो अरबी के जेब शब्द का अर्थात् कपड़े की जेब (Bosom of the garment)। सूर्य सिद्धान्त में ज्या के अर्थ में क्रमज्या शब्द को अरब वालों ने करज तथा कर्दज शब्दों से अनूदित किया। लैटिन में इन्हीं शब्दों के करदज तथा गरदज विकृत रूप हुए। उत्क्रमज्या का भी वर्स्डसाइन अनूदित शब्द है। अरबी में इसके पर्यायवाची 'शर' शब्द का अनूदित शब्द 'सुहुम' है इसका भी अर्थ है बाण। शर शब्द का भी इषु के रूप में मूल प्रयोग शुल्वसूत्र में मिलता है। यद्यपि वहाँ इसका अर्थ कुछ भिन्न है।[1]

हमारे 'मूल' शब्द से ही अरबी का जज्र तथा अंगरेजी का 'रूट' एवं लैटिन का 'रैडिक्स' अनुवाद मात्र हैं। क्योंकि इन सबका मूल अर्थ है पेड़ की जड़।

समीकरण के पर्यायवाची सम तथा समकरण एवं साम्य शब्दों से अरबी में मसामात तथा अंगरेजी में इक्वेशन शब्द बने। अर्थ सबका एक ही है। हमारे यहां 'सम' तथा 'समकरण' शब्दों का ब्रह्मगुप्त ने सर्वप्रथम प्रयोग किया था। इससे

१. देखिये पृ० ५२।

२ अरबी के विद्वान इन व्युत्पत्तियों में मतभेद रखते हैं।

प्राचीन प्रयोग विदेशों में नहीं मिलता है। वास्तव में ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों का अरब में बहुत प्रचार हुआ। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त को 'सिंदहिंद' तथा उनके खण्डखाद्यक ग्रंथ को 'अलअर्कंद' नाम से अनूदित किया गया। फहरिस्त के मत में याकूब इब्न-तारीक ने ७७० ई० में ब्रह्मगुप्त की क्रमज्या सारणी को प्रकाशित किया। अरब में आर्यभट्ट का नाम भी प्रसिद्ध हो गया था। उनको वहां 'अर्जभर' नाम से बोधित किया जाता था। ब्रह्मगुप्त की भेदगुणन रीति इटली में 'स्कैपीजो' तथा 'रैपीगो' विधि नाम से व्यक्त की जाती थी। श्रीधर की तस्थविधि आज भी तिर्यक्गुणन रीति में सुरक्षित है। अलनस्वी ने सन् १०२५ ई० में दूसरी एक विधि को 'अल-अमल-अल-हिंद' अथवा 'तरीका-अल-हिंद' नाम से व्यक्त किया। अरब और योरुप की भाग सम्बन्धी गैलीविधी भी भारतीय रीति थी आधुनिक भिन्न-लेखन-प्रणाली भी प्राचीन भारतीय रीति पर ही आधारित है केवल अंतर यह है कि पहिले यहाँ बीच में रेखा नहीं खींचते थे।

श्रेणी-संकलन विधि भी अरब वालों ने यहाँ से अपनाई। अलबरूनी ने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था 'फी संकलित इल-अदद-जैनिस्फ'। अरब वालों ने अंकों को 'अलअर्काम्-अल-हिंद' भी कहा था।

हमारे विषुवत रेखा शब्द के ही 'खते उस्तवा' तथा इक्वेटर अनुवाद हैं क्योंकि इन दोनों का अर्थ भी 'साम्य कर देने वाला' ही है विषु का अर्थ भी साम्य तथा विषुवत् का अर्थ साम्य कर देने वाला होता है। सूर्य जब इस रेखा पर आता है तो रात-दिन बराबर हो जाते हैं। विषुवत् शब्द वैदिक है अतएव ये दोनों हमारे शब्द के अनुवाद मात्र हैं।

करणी शब्द से अरब में असम तथा अंगरेजी में 'सर्ड' एवं लैटिन में सर्डस शब्द बने। ये विदेशी शब्द हमारे ही शब्द के अनुवाद हैं। अरबी असम तथा अंगरेजी सर्ड दोनों का अर्थ बैहरा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे करणी शब्द को भूल से 'अकर्णी' समझ लिया—अकर्णी का भी अर्थ बैहरा है—या उन्होंने हमारे 'अकरणीगत' शब्द को कर्णी के अर्थ में समझ लिया। हम भी विदेशी शब्द 'खालिस' को भूल से निखालिस कह देते हैं। हमारे यहाँ कर्णी शब्द को कई एक प्राचीन लेखकों ने करणी कर दिया। जब हमारे यहाँ ऐसी भूल हो सकती है तो विदेशों में ऐसी भूल होना कोई विचित्र बात नहीं है।

हमारे भिन्न शब्द के अंगरेजी शब्द फ्रैक्शन तथा अन्य योरोपीय शब्द फ्रैक्टियो, राउन्ड, रोटो और रोक्ट्रो शब्द केवल अनुवादमात्र है। ये लैटिन शब्द फ्रैक्टस (फ्रैन्जिएर) अथा रप्टस (टूटा हुआ) से व्युत्पन्न हुए हैं। हमारे शून्य शब्द

से अरबी का सिफ्र तथा अरबी सिफ्र से योरप के अन्य शब्द साइफर, ज़ीरो आदि बने। शून्य के पर्यायवाची रिक्त, वनिक तथा तुच्छ शब्दों से ही मिलते-जुलते शब्द संसार की अनेक भाषाओं में पाये जाते हैं। इसके विवरण के लिए कृपया द्वितीय भाग में शून्य शब्द को देखिये। ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रयुक्त अव्यक्त राशि शब्द का भी सुदूर देशों तक व्यापक प्रभाव पड़ा। मिस्र में इसको हौ (Hou) कहते हैं जिसका अर्थ है राशि (Heap, mass) एतदर्थक यूनानी शब्द 'प्लीथो मोनेडोन अलोगोन' (Plethos monadon alogon) है इसका अर्थ भी अव्यक्त है। चीन का भी एतदर्थक शब्द यूएन (yuen) है जिसका अर्थ है बीज (Element)।

सारांश यह है कि भारतीय अंकगणितीय तथा बीजगणितीय शब्दावली का विदेशों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। बहुत से शब्द जैसे धूलिकर्म तथा वध, हनन आदि जो हमने तो भुला दिये किन्तु विदेशी लोग उन्हें हिसाब-उल-गुबार तथा ज़रब कहकर अब भी जीवित किये हुए हैं।

द्वितीय भाग

विशिष्ट अध्ययन

अध्याय १

गणित

व्युत्पत्ति :

यह शब्द गण धातु से क्त प्रत्यय लगाकर बना है । गण् धातु का अर्थ है 'गिनना' । क्त प्रत्यय कई एक अर्थों में लगा करती है किन्तु इस शब्द के साथ जितने अर्थों में यह आई है वे निम्नलिखित हैं :—

१. भूतकालिक अर्थ अर्थात् गिना हुआ जैसे,

तस्माद्विक्रय: पण्यानां धृतो मितो गणितो वा कार्य:

(कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ० ११०)

अर्थात् विक्रयार्थ वस्तुओं को तोलकर, नाप कर अथवा गिनकर विक्रय करे । अमरकोष में भी कहा है 'संख्यातम् गणितम्' अर्थात् गणित का अर्थ है संख्या किया हुआ ।

२. गणना अथवा हिसाब जैसे, गणित करके बताओ । 'नपुंसके भावे क्त:' इस सूत्र से यहाँ क्त प्रत्यय संज्ञार्थ में लगी है । इस प्रकार के अन्य प्रयोग भी हैं जैसे गीत, हसित आदि ।

३. शास्त्रवाचक अर्थ अर्थात् वह शास्त्र जिसमें गणना की प्रधानता हो । इस प्रकार के अन्य शब्द निरुक्त, संगीत आदि हैं ।

४. ज्योतिष, जिसमें प्रारंभिक अंकगणित भी सम्मिलित था क्योंकि वह उसका साधन था देखिए :—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणं गणितं मूर्ध्नि स्थितम् ।।[1] (वेदांग ज्योतिष, श्लोक ४)

५. ग्रहगणित । ज्योतिष की तीन शाखायें मानी जाती हैं :—(१) गणित अर्थात् ग्रहगणित, (२) संहिता अर्थात् सामान्य फलित ज्योतिष, (३) होरा अर्थात् जातक-शास्त्र जिसमें जन्मकाल की ग्रह-स्थिति के फलों का विवरण दिया रहता है ।

६. अंकगणित जिसमें क्षेत्र-गणित (Mensuration) भी सम्मिलित था । ज्योतिषशास्त्र इसमें सम्मिलित नहीं था । देखिये :—

गणितज्ञो गोलज्ञो गोलज्ञो ग्रहगतिं विजानाति ।
यो गणित-गोलबाह्यो जानाति ग्रहगतिं स कथम् ।।

(ब्रा० स्फु० सि०, गोलाध्याय)

---

१. अर्थ भूमिका के प्रारम्भ में दिया है ।

बक्षाली पाण्डुलिपि[1], आर्यभटी के गणितपाद, ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त का गणिताध्याय गणित-सार-संग्रह तथा गणित कौमुदी आदि शब्दों में गणित का यही अर्थ है।

७. बीजगणितसहित गणित। गणित का विषय और विकसित हुआ और गणित के अन्तर्गत बीजगणित भी एक शाखा बन गई। निम्नलिखित श्लोक में भास्कर ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है—

सृष्ट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेदः क्रमात्।
चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः॥

८. किसी गणितीय श्रेणी का योग, देखिये ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त १२, १७।

९. क्षेत्रफल। यथा :—

'गणितं चतुरभ्यस्तं दशपदमक्तं पदे भवेद्व्यासः' गणितसार-संग्रह, पृ० १३२।

अर्थात् वृत्त के क्षेत्रफल को ४ से गुणा करे, १० से भाग दे फिर वर्गमूल लेने से व्यास प्राप्त होता है।

'विष्कंभः पादाभ्यस्तः स गणितम्' तत्वार्थाधिगम-सूत्र-भाष्य, १५०,३३।

अर्थात् व्यास के चौथाई से परिधि को गुणा करे तो क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

'कर्णो गणितेन समः समचतुरश्रस्य को भवेद्बाहु' गणित सार संग्रह, पृ० १२६।

अर्थात् यदि किसी समचतुरश्र (वर्ग) का कर्ण उसके क्षेत्रफल की संख्या के बराबर हो तो उसकी भुजा क्या होगी।

१०. संख्या (तादाद)। जैसे, इष्टका-गणित अर्थात् ईंटों की संख्या। देखिये ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त (१२,४७)। शीलांक सूरि ने विकल्पगणित (Permutations and Combination) से सम्बन्धित तीन प्राचीन कारिकाओं को समझाते हुए लिखा है—

तत्रैव १, २, ३, ४, ५, ६ षटपदानि स्थाप्यानि। एतेषां परस्परताडनेन सप्तशतानि विंशत्युत्तराणि गणितमुच्यते।

यहाँ भी गणित का अर्थ विकल्पों की संख्या है।

११. इस समय गणित उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें संख्यासंबन्धी, परिमाण सम्बन्धी, राशि सम्बन्धी तथा दिक् सम्बन्धी बातों का विशद विवेचन किया जाता है। इसकी इस समय लगभग ५० शाखायें मानी जाती हैं। मुख्यतः गणित के दो भेद माने जाते हैं। प्रथम अमूर्त्तगणित तथा द्वितीय अनुप्रयुक्त गणित। अमूर्तगणित में बीजगणित, कलन तथा संख्या-सिद्धान्त आदि विषय आते हैं तथा अनुप्रयुक्त गणित में गति-विज्ञान, स्थिति विज्ञान, द्रवगति विज्ञान आदि अनेक विषय आते हैं। वस्तुतः गणित-विद्या आधुनिक सब विज्ञानों की जननी है।

---

१. सर्वेषामेव शास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि तिष्ठति—बक्षाली पाण्डुलिपि।

भिक्षु जंगलों में रहते थे उनको नक्षत्रों की पहिचान तथा आकाश में दिशाओं की पहिचान करना आवश्यक कर दिया ।[1]

संख्याशास्त्र शब्द का प्रयोग गणिततिलक के निम्नलिखित श्लोक में देखिये :—

संख्याशास्त्रे यदि तवमतिः स्फारभावं प्रपन्ना

बौद्ध साहित्य में गणना तथा संख्यान में कुछ अर्थ भेद भी था । गणना मन के भीतर हिसाब लगाने को अथवा साधारण गणित को कहते थे एवं संख्यान उच्च प्रकार के हिसाब को कहते थे ।[2]

पाणिनि के 'गण संख्याने' अर्थात् गणधातु का अर्थ है संख्यान इस उक्ति से ही यह प्रतीत होता है कि संख्यान शब्द प्राचीन समय में गणना या गणित से अधिक प्रचलित था । बौद्धकाल में तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र में इसका बाहुल्य रूप से प्रयोग हुआ । कौटिल्य अर्थशास्त्र में एकाउण्टेंट के लिए संख्यायक[3] शब्द आया है। परवर्ती काल में संख्यान शब्द केवल गणना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ । जैसे—

लौकिके वैदिके वापि तथा सामयिकेऽपि यः ।

व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ।। (गणित सार० सं०) ।

गणित की प्रशंसा में यह वचन महावीराचार्य का है। वह कहते हैं कि लौकिक, वैदिक तथा अन्य सब प्रकार के सामयिक कृत्यों में संख्यान (गणना) का प्रयोग किया जाता है ।

गणना और गणित के शब्दार्थ मात्र से यह प्रतीत होता है कि गणना गिनने की क्रिया तथा गणित उसका फल है । गिनने वाले ने २० आम गिने और कह दिया २०, यहाँ गिनने की क्रिया गणना से तथा २० गणित शब्द का वाच्यार्थ है अतएव गणित शब्द का ८ वां, नववाँ और दसवाँ अर्थ उसका वाच्यार्थ है । पूछने वाला पूछता है 'भाई गिन चुके ।' हाँ । कितना हुआ ? बीस । कितना हुआ प्रयोग में क्त प्रत्यय की झलक है ।

गणना और गणित का भेद :

गणना का प्रारंभिक अर्थ गिनना अथवा गिनती ही था बाद में उसका 'गणित की प्रक्रियाओं द्वारा हिसाब लगाना' अर्थ भी हो गया । अब भी जनगणना, पशुगणना आदि शब्दों में गणना का प्रारंभिक अर्थ सुरक्षित है । कौटिल्य अर्थशास्त्र में आया है 'विध्वस्त गणनां च कुर्यात्' अर्थात् टूटे हुए हथियारों का हिसाब रक्खें,

---

१. राइस डेविस कृत 'डाइलोग आफ दी बुद्ध', खण्ड-४, पृ० २०; 'विनय टैक्स्ट 'कुल्ल वग्ग' ८, ६, ३ ।

२. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, पृ० ३८ ।

३. कौ०अ०शा०, पृ० ६९ ।

इसमें भी गणना का उपरोक्त अर्थ ही है। गणना, गणित और संख्यान शब्दों के प्राचीन प्रयोगों में भी अत: इतना अन्तर है कि गणना से गणित की साधारण क्रिया तथा गणित और संस्थान शब्दों से गणित की विशिष्ट तथा उच्च क्रियायें अभिलक्षित होती हैं।

गणितशास्त्र की प्राचीनता—

वैदिक काल :

भारतवर्ष का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य वैदिक साहित्य है जिसमें उस काल के गणित के ज्ञान का पर्याप्त परिचय मिलता है, यद्यपि इतिहासकार वैदिक सभ्यता से पूर्व भी यहाँ द्रविड़-सभ्यता की सत्ता स्वीकार करते हैं। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाइयों के फलस्वरूप पता चला है कि उस समय भी भारत के निवासी किस प्रकार उच्च और सुव्यवस्थित नागरिक जीवन व्यतीत करते थे जिससे हम केवल अनुमान ही कर सकते हैं कि नागरिक जीवन के लिए परम अपेक्षित गणित के ज्ञान का भी प्रचार रहा होगा किंतु उस काल की संज्ञालिपि (Code) का जब तक भली-भांति अभिज्ञान नहीं होता तब तक प्रामाणिक रूप से इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

वैदिक साहित्य में ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। ऋग्वेद में हमको संख्याओं के उल्लेख मिले हैं। यथा :—

द्वादशप्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानिक उ तच्चिकेत

तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः

इसमें द्वादश (१२), त्रिशत (३००), षष्टि (६०) संख्याओं का उल्लेख है। दस के बाद की संख्या १२ और सौ से ऊपर की संख्या ३०० के लिए उसमें नवीन शब्द नहीं बल्कि पूर्व संख्याओं के यौगिक शब्द द्वादश तथा त्रिशत ही प्रयुक्त किए गए हैं। द्वादश में द्वि तथा दश का योग है तथा त्रिशत में शत शब्द से पूर्व त्रि शब्द का योग है। इसके विपरीत अंगरेजी संख्यावाचक १-१२[१] तक के शब्द स्वतंत्र हैं और १३ से एक प्रकार के यौगिक शब्द चलते हैं अतः इससे इस बात का पता चलता है कि वैदिक काल में ही भारतवर्ष में संख्याओं की दशमिक प्रणाली का ज्ञान था जबकि रोमन लोगों को इसका पता नहीं था। वे लोग १२, १२ की ढेरियों में वस्तुओं को गिनते थे। हमारे यहाँ कोल सभ्यता में २०, २० करके चीजों के गिनने की प्रथा थी। मुंडा भाषा का कोरी (२०) शब्द इस तथ्य का द्योतक है।

---

१. यद्यपि अंगरेजी के इलेविन और ट्वेल्व के भी अर्थ हैं दस तथा एक एवं दस तथा दो; फिर भी शब्द गठन वैसा नहीं जैसा कि आगे का अर्थात् टीन पर समाप्त होने वाला। अतएव यह प्रतीत होता है कि यह नाम बाद के हैं।

ऋग्वेद में उक्त संख्याओं के अतिरिक्त विंशति (२०), त्रिंशति (३०), चत्वारिंशत (४०), पञ्चाशत (५०), सप्तति (७०) और सप्तशतानि विंशति (७२०) का भी उल्लेख है।

यथा :—

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्तिचक्रं परिद्यामृतस्य।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासोअत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥[१]

अर्थात् द्यौ लोक में परिभ्रमण करने वाले इस काल चक्र में १२ अरे लगे हैं जो कभी क्षीण नहीं होते (बारह राशियां या १२ मास ही १२ अरे बताए हैं)। इस में मिथुन भाव से अर्थात् दो-दो के जोड़े में ७२० पुत्र स्थित हैं (३६० दिन और ३६० रात)।

यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य वाजसनेय कृत वाजसनेयी संहिता के निम्नलिखित मंत्र में एक से लेकर परार्ध (दस खरब) तक की संख्याओं का उल्लेख है :—

एका च दश च, दशच शतंच, शतंच सहस्त्रंच, सहस्रं चायुतं च, अयुतंच नियुतंच, नियुतं च प्रयुतं च, प्रयुतं च अर्बुदं च, अर्बुदं च न्युर्बुदं च, समुद्रश्च मध्यं च, अंतश्च परार्धश्च। (वाजसनेयी संहिता १७.२)।

सांख्यायन श्रौतसूत्र (१५.११.४) में अनन्त (नील) तक संख्यायें दी हुई हैं। यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता (अनुवाक् ११-२०) में युग्म और अयुग्म संख्याओं का उल्लेख है उसमें १०० तक की निम्नलिखित सारणियाँ भी हैं :—

४×१=४	५×१=५	१०×१=१०
४×२=८	५×२=१०	१०×२=२०
४×३=१२	५×३=१५	१०×३=३०
२०×१=२०	१००×१=१००	१००×१०=१०००
२०×२=४०	१००×२=२००	१००×१००=१००००
२०×३=६०	१००×३=३००	१००×$१०^{१०}$=$१०^{१२}$
	१००×४=४००	

तैत्तरीय संहिता में निम्नलिखित परिभाषाएँ भी हैं :—

$१०^{२}$=शत	$१०^{६}$=प्रयुत	$१०^{१०}$=मध्य	$१०^{१४}$=व्युस्ति
$१०^{३}$=सहस्र	$१०^{७}$=अर्बुद	$१०^{११}$=अन्त	$१०^{१५}$=देश्यत्

---

१ चतस्रश्च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च में षोडश च मे षोडश चमे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टा-विंशतिश्च मे ष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशतिश्च मे द्वात्रिंशतिश्च मे ऽष्टाचत्वारिं शच्च मे यज्ञेन कल्पताम्।

10^4=अयुत	10^8=न्यर्बुद	10^{12}=परार्ध	10^{16}=उद्यत्
10^5=नियुत	10^9=समुद्र	10^{13}=उसस	10^{17}=उदित
			10^{18}=सवर्ग
			10^{19}=लोक

इससे यह स्पष्ट है कि संहिता काल (३००० ई० पूर्व) से आर्य लोग योग, गुणा, घात आदि गणित की मूलभूत क्रियाओं से भलीभाँति अवगत थे।

वाजसनेयि-संहिता की एक उक्ति है :—

'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शं यादसे गणकं'

अर्थात् विशेष ज्ञान के लिए नक्षत्रदर्श गणक के पास जाओ, नक्षत्रदर्श[1] का अर्थ है नक्षत्र देखने वाला तथा गणक का अर्थ है गणना करने वाला ज्योतिषी। इससे प्रतीत होता है कि गणित ज्योतिष के विशेषज्ञ भी उस काल में वर्तमान थे। वे न केवल नक्षत्रों का वेध ही कर लेते थे अपितु गणना करके उनकी गति, तिथि, मास, वर्ष आदि भी निकाल लेते थे।

छान्दोग्य उपनिषद् (७,१,२,४) में एक कथानक आता है—नारद ऋषि सनतकुमार ऋषि के पास जाते हैं, उनसे ब्रह्मविद्या पढ़ने की प्रार्थना करते हैं। सनतकुमार जी के पूछने पर कि उन्होंने कौन-कौन विद्यायें पढ़ रखी हैं, नारद जी बताते हैं कि वे नक्षत्र-विद्या और राशिविद्या पढ़ चुके हैं। इस कथानक से यह ज्ञान होता है कि राशि-विद्या (अंकगणित) उपनिषत्काल में ज्योतिष से पृथक् सत्ता रखती थी। ब्रह्मविद्या सीखने से पूर्व ही प्रायः ऋषि गणित को सीख लेते थे।

गणित शब्द यद्यपि वैदिक काल में अपने मूलरूप में नहीं पाया जाता किन्तु उसके सव्युत्पत्तिक शब्द गणक, गण और गण्या ऋग्वेद तक में मिलते हैं।[2] उस समय गणित नक्षत्रविद्या (ज्योतिष) के अन्तर्गत आता था। गणित-ज्योतिष का भाग क्यों था इसका प्रमुख कारण यह था कि आर्यजाति एक धर्मपरायण जाति थी, वे यज्ञ करने के बहुत प्रेमी थे। यज्ञों के फल के लिए आवश्यक था कि वे यथाकाल किए जाएं। काल जानने के लिए ज्योतिष की आवश्यकता पड़ी तथा उसका सम्यक् ज्ञान नक्षत्र वेध तथा ग्रहगणित द्वारा ही हो सकता था। अतएव गणित, ज्योतिष के अन्तर्गत ही था। जैनियों में भी शुभ मुहूर्त में दीक्षा लेना मुनि होने के लिए आवश्यक समझा जाता था और शुभ मुहूर्त बिना ग्रहगति-ज्ञान के निकल ही नहीं सकती थी; अतएव ज्योतिष अथवा गणित उनके धर्म का भी अंग हो गया।[3] अतः ज्योतिष, कालविधान शास्त्र और गणित ये पर्यायवाची शब्द हैं। देखिये :—

---

1. बौद्ध साहित्य में इसे नक्षत्रपाठक भी कहते थे। देखिए महानिद्देस पृ०, ३८२।

2. देखिए भाग १, ४, २।

3. गणिततिलक, भूमिका, पृ० ६।

वेदाहि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्या विहिताश्चयज्ञाः

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं, वेद स वेद यज्ञान्। (वे०ज्यो०३)

गणित शब्द का प्रथम प्रयोग :

गणित शब्द का प्रथम प्रयोग वेदांग ज्योतिष के निम्नलिखित श्लोक में हुआ है :—

यथाशिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद्वद्वेदांगशास्त्रणां गणितं मूर्ध्नि स्थितम्॥

अर्थात् जैसे मयूरों की शिखाएँ तथा नागों की मणियाँ मस्तक पर विराजमान होती हैं उसी प्रकार गणित वेदों के सब अंगों में शिरोमणि है।

जैनधर्म में गणित का स्थान :

जैनियों के प्राचीन धार्मिक साहित्य का वर्गीकरण चार अनुयोगों में किया गया है। अनुयोग का अर्थ है सिद्धांत-विवेचन। इनमें एक गणितानुयोग भी है। प्राकृत भाषा में गणित का विकृत रूप 'गणिय' शब्द व्यवहृत किया जाता था। आचारांगनिर्युक्ति (५।५०) में प्रत्येक जैन आचार्य को इसका अध्ययन करना अनिवार्य बताया गया है।

गणित विषय की सूक्ष्मता :

स्थानांगसूत्र (३५०ई०पू०) के ७१६ वें सूत्र में गणित को अति सूक्ष्म विषय बताया गया है। यथा :—

दस सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा—पाण सुहुमे जाव सिणेह सुहुमे गणिय सुहुमे भंगसुहुमे।

टीकाकार ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा था कि गणित वज्र के समान अत्यन्त कठिन होता है :—

"गणित सूक्ष्मं—गणितं संकलनादि तदेव सूक्ष्मं

सूक्ष्मबुद्धिगम्यत्वात्, श्रूयते च वज्रान्तं गणितमिति।

वेदांग ज्योतिष के परवर्ती संस्कृत साहित्य में गणित शब्द का प्रयोग महाभारत, भागवत पुराण, मृच्छकटिक नाटक, बखालीहस्तलिपि, आर्यभटीय आदि ग्रन्थों में मिलता है।

बखाली हस्तलिपि और आर्यभटीय के गणित शब्द में ज्योतिष सम्मिलित नहीं है। भास्कर द्वितीय रचित सिद्धान्त-शिरोमणि के गणिताध्याय शब्द में गणित का तात्पर्य ग्रह-गणित था। बखाली समय के कुछ पूर्व से अर्थात् प्रथम शती के लगभग गणित ज्योतिष से पृथक् एक स्वतंत्र विषय हो गया था और इस पर आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, श्रीपति आदि लेखकों ने अपने ज्योतिष-ग्रन्थों में पृथक् अध्याय लिखे।

प्राचीन गणित ग्रन्थ :

वक्षाली पाण्डुलिपि (३०० ई०), गणित तिलक (१०३९ ई०), गणित-सार-संग्रह (८५० ई०), पाटीगणित (९०० ई०), गणित-कौमुदी (१३५६ ई०) आदि गणित के स्वतंत्र ग्रंथ लिखे गए। इनमें क्षेत्रगणित के नियम भी दिये रहते थे। गणित और ज्योतिष की पृथक् २ सत्ताओं के संबंध में आर्यभट्ट का निम्न श्लोक अवलोकनीय है :—

प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां परं ब्रह्म ।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम् ।।

गणित का क्षेत्र-विकास :

अब गणितज्ञ को ज्योतिष का ज्ञान होना आवश्यक नहीं रह गया। अब तो उसके लिए निम्न विषयों का ज्ञान होना ही आवश्यक रह गया :—

परिकर्मविंशतिं यः संकलिताद्यां पृथग्विजानाति ।
अष्टौ च व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः ।।
(ब्रा०स्फु०सि० १२।१)

अर्थात् संकलित आदि गणित की २० क्रियाओं तथा ८ व्यवहारों को जो जानता है वही गणक है। वैदिक काल के गणक (ज्योतिषी) की परिभाषा अतः अब ७वीं शती में बदल चुकी थी। गणित की अब मूलभूत क्रियायें २० थीं। यथा :—

संकलितव्यवकलिते प्रत्युत्पन्नोऽथ भागहारश्च ।
वर्गस्तस्य व मूलं घनघनमूले तथैतानि
भिन्नानि षट् प्रकारः कलासवर्णो यथा क्रमशः
भागस्तथा प्रभागोऽथ भागभागश्य तत्परतः ।।
भागानुबंध भागापवाहसंज्ञौ च भागमाता च ।
त्रैराशिकं ततस्तद्व्यस्तमथो पञ्चसप्त नव राशि ।
भाण्डप्रतिभाण्डजीवविक्रयौ संयुता नवभिरेव ।
परिकर्मविंशतिरिह व्यवहाराः स्युर्नव क्रमशः ।।
मिश्रकर्मादीतदनुश्रेढ़ीक्षेत्रं ततश्च खातचिती
क्रकचराशी छाया ततः परं शून्यत्वमिति ।।
(श्रीधर कृत पाटीगणित, पृ० २)

अर्थात् गणित की निम्नलिखित क्रियायें हैं :—

(१) संकलित (संकलन), (२) व्यवकलन, (घटाना), (३) गुणा, (४) भाग, (५) वर्ग, (६) वर्गमूल, (७) घन, (८) घनमूल, (९) भागजाति, (१०) प्रभाग जाति

(११) भागभागजाति, (१२) भागानुबंध जाति, (१३) भागपवाह जाति, (१४) भाग-माता जाति, (१५) त्रैराशिक (व्यस्त त्रैराशिक), (१६) पंचत्रैराशिक, (१७) सप्त त्रैराशिक, (१८) नवत्रैराशिक, (१९) भाण्डप्रतिभाण्ड, (२०) जीव-विक्रय।

नवव्यवहार निम्नलिखित हैं :—

(१) मिश्रकर्म, (२) श्रेढ़ी-व्यवहार, (३) क्षेत्र-व्यवहार, (४) खात-व्यवहार, (५) चिति-व्यवहार, (६) क्राकच व्यवहार, (७) राशि-व्यवहार, (८) छाया-व्यवहार, (९) मृत्य-व्यवहार।

उपरोक्त ६-१४ तक के नामों से भिन्नों की विविध क्रियायें तथा नियम मंतव्य हैं। क्षेत्र व्यवहार से तात्पर्य मैंस्यूरेशन से था। खात व्यवहार में भूमि खोदने अर्थात् घनज्यामिति से तात्पर्य था। चिति व्यवहार ईंटों के चट्टे लगाने से संबंधित गणित को कहते थे। क्राकचिक लकड़ी फाड़ने तथा राशि व्यवहार अन्न की ढेरी लगाने से संबंधित गणित को कहते थे।

ये ही सब क्रियायें तथा व्यवहार किंचिनमात्र रूपान्तर से भास्कर द्वितीय तथा अन्य परवर्ती प्राचीन हिन्दू गणित-वेत्ता मानते रहे।

गणित स्वतंत्र विषय बनकर दिन प्रतिदिन असाधारण उन्नति करने लगा। बीजगणित, रेखागणित, क्षेत्रगणित, त्रिकोणमिति, गतिविज्ञान, स्थितिविज्ञान, साँख्यिकी आदि उसकी अनेक शाखाएं बन गई। गत दो शताब्दियों से तो ज्योतिष (Astronomy) की भी गणित के ही अंतर्गत गणना होने लगी।

कैसी विचित्र बात है कि गणित जो सम्राट ज्योतिष का कभी एक कर्मचारी मात्र था, राजनीति की शतरंजी चालों को चलकर एक स्वतंत्र अधिपति बन बैठा और फिर अपने बुद्धिबल का प्रयोग करके ज्योतिष सम्राट के स्थान पर स्वयं सम्राट बन गया और बिचारा ज्योतिष अब एक अधीनस्थ राजा मात्र ही रह गया।

अध्याय २

अंकगणित

प्रकरण १. अंकगणित

व्युत्पत्ति :

अंकगणित का अर्थ है अंकों अर्थात् संख्याओं सम्बन्धी गणित। अंगरेजी शब्द अरिथमेटिक का शब्दानुवाद है क्योंकि यह भी अरिथमोज (Arithmos) से बना है जिसका अर्थ है संख्या (Number)।

पर्याय :

अंकगणित शब्द के निम्नलिखित पर्याय हैं :—

(१) राशिविद्या, (२) धूलिकर्म, (३) पाटीगणित, पाटी अथवा परिपाटी, (४) व्यक्तगणित।

राशिविद्या :

राशिविद्या शब्द का प्रयोग छान्दोग्य उपनिषद् (७।१।३) में आया है। नारद ऋषि सनतकुमार ऋषि के पास विद्या पढ़ने जाते हैं। सनतकुमार जी के यह पूछने पर कि उन्होंने कौन-कौन सी विद्याएँ पढ़ रखी हैं, नारद जी बताते हैं—

"स होवाच—ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं
सामवेदमाथर्वणं च चतुर्थमितिहासपुराणं
पंचमं वेदानां वेदं पित्र्य ँ राशिं दैवं निधिं
वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां,
भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्यांमेतद् भगवोऽध्येमि"

इसमें राशि शब्द अंकगणित के अर्थ में आया है।[1] बाद में राशि से तात्पर्य राशि (अन्न की ढेरी) सम्बन्धी गणित अथवा त्रैराशिक नियम से हो गया है। स्थानांग सूत्र ७४७ (३५० ई०पू०) में भी इसका प्रयोग मिलता है। यथा :—

---

१. हिंदू गणितशास्त्र का इतिहास, पृ० ३। वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, पृ० ३२।

परिकम्मं ववहारो रज्जुरासी कलासवन्नेय।
जावन्तावति वग्गो ततह् वग्गवग्गो विकप्पोत ॥

इसमें गणित के विषय गिनाये गए हैं, राशि जिनके अंतर्गत है। लीलावती, पाटीगणित आदि परवर्ती अंकगणित की पुस्तकों में राशिकव्यवहार नामक एक अध्याय रहता था जिसमें अन्न-राशि से सम्बन्धित नियम तथा उनके प्रश्न दिये रहते थे।

धूलिकर्म :

धूलिकर्म शब्द का प्रयोग ब्रह्मगुप्त (६२८) तथा भास्कर द्वितीय (१११४ ई०) ने क्रमशः ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि के वासनाभाष्य में किया है। प्राचीन काल में कागज की कमी थी अतएव १९वीं शताब्दी तक पाटी (तख्ती) पर धूल बिछाकर गणित किया करते थे अतएव अंकगणित अथवा गणित को धूलिकर्म कहने लगे। यथा :—

'अत्र धूलिकर्मणा प्रत्यक्ष प्रतीतिः'

—सिद्धान्तशिरोमणि, चन्द्रग्रहणाधिकार, श्लोक ४ की टीका।

सुधाकर द्विवेदी (१८६० ई०) ने अपने गणित के इतिहास में लिखा है कि "पटरे पर धूल या अबीर फैलाकर उस पर हिसाब करना, यह रीति मेरे पढ़ने के समय तक बनारस संस्कृत कालिज में थी। पीछे से बापूदेव शास्त्री (ज० काल १८२१ ई०) ने अंग्रेजी स्लेट चलाई।" पुराने आचार्य ज्योतिष के दो भेद करते थे। (१) धूलिकर्म, (२) दृग्गणित अथवा दृग्ज्योतिष। धूलिकर्म से तात्पर्य गणना द्वारा ग्रह-स्थिति जानना तथा दृग्गणित से तात्पर्य वेध करके उनकी गतियों आदि को निकालना था। दृग्गणित और धूलिकर्म के फलों में जब अन्तर होता था तब उन दोनों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए धूलिकर्म के फलों में कुछ संशोधन किया करते थे। इन संशोधनों को बीज, बीजसंस्कार अथवा दृग्गणितैक्य कहते थे। यथा :—

पूर्वाचार्यमतेभ्यो यद्यच्छ्रेष्ठं लघुस्फुटं बीजम्।
तत्तदिहाविकलमहं रहस्यमभ्युद्यतो वक्तुम् ॥ (पंचसिद्धान्तिका, पृ० १)

अर्थात् पूर्वाचार्यों के मतानुसार अपेक्षित बीज संस्कारों के रहस्यों को मैं पूर्णतया बता रहा हूँ। इस श्लोक की टीका में सुधाकर द्विवेदी जी ने बीज शब्द का अर्थ 'दृग्गणितैक्यार्थ संस्कार विशेष' किया है।

धूलिकर्म का अरबी में अनुवाद :

अंकगणित के पर्यायवाची धूलिकर्म को उत्तरी अफ्रीका और स्पेन में 'हिसाब-

अल-ग़ुबार' अथवा 'इल्म अल ग़ुबार' तथा अंकों को 'हुरुफ़-अल-ग़ुबार' कहा है। अब्साल्ह इब्न तामिन (९५० ई०) कृत 'सिफरयसीरह्' की टीका में लिखा है कि उसने हिन्दू गणित पर, जिसको हिसाब-अल-ग़ुबार कहते हैं, एक पुस्तक लिखी है। दूसरी पुस्तक 'कश्फ अस् असरार' व 'इल्म अल ग़ुबार' (अर्थात् इल्म ग़ुबार के रहस्यों का उद्घाटन) ट्यूनिस निवासी अबुलहसन अली (मृत्यु १४८६ ई०) ने लिखी।[1] धूलिकर्म का प्रयोग ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में सर्वप्रथम हुआ। इस ग्रंथ का अनुवाद अरबी में 'सिन्द हिन्द' नामक ग्रन्थ में किया गया। अतः यह स्पष्ट है कि धूलिकर्म और धूल्यंकों (धूलि पर लिखे हुए हमारे अंकों) को अरब तथा स्पेन में क्रमशः इल्म-हिसाब-अल-ग़ुबार तथा हुरुफ़-अल-ग़ुबार शब्दों द्वारा अनूदित किया गया।

पाटीगणित :

पाटीगणित का अर्थ है पाटी अर्थात् तख्ती पर निकाला जाने वाला गणित। हम ऊपर बता चुके हैं कि पहिले पट्टी पर धूलि बिछाकर अथवा काली पट्टी करके खड़िया द्वारा गणित की क्रियायें करते थे, अतएव अंकगणित को पाटीगणित भी कहते थे। पाटी शब्द संस्कृत पट्ट का प्राकृत रूप है जो पुनः संस्कृत भाषा में ७वीं शती के आसपास प्रविष्ट हो गया। ब्रह्मगुप्त (६२२ ई०) की कृतियों में सर्वप्रथम यह शब्द मिलता है जब कि पट्ट शब्द महाभारत और सुश्रुत तक में मिलता है। पाटी शब्द आज भी पाटी पूजा अथवा पट्टी पूजा, पटरानी आदि शब्दों में प्रयुक्त होता है।

श्रीधर (९००) ने पाटीगणित तथा मुनीश्वर (१६०३ ई०) ने पाटीसार नामक ग्रन्थ लिखे। भास्कर द्वितीय ने लीलावती में भी इस शब्द का प्रयोग किया है। यथा :—

'पाटीं सद्गणितस्य वच्मि' अर्थात् पाटीगणित को कहता हूँ।

पाटीसूत्रोपमं बीजं गुढ़मित्यवभासते।
नास्तिगूढ़मगूढ़ानां नैव षोढ़ेत्यनेकधा।।

अर्थात बीजगणित भी पाटीगणित के समान है। देखने में गूढ़ लगता है किंतु अमूढ़मतियों के लिए वह कुछ भी गूढ़ नहीं है तथा वह केवल छः प्रकार का होता है यह बात भी नहीं है।

अरबी में अनुवाद :

अलबरूनी ने सन् १०३० ई० में हिन्दुस्तान की पाठशालाओं में लड़कों को

---

१. दे० डाक्टर बी० बी० दत्त का लेख—'हिन्दू कंट्रीब्यूशन टु मेथिमेटिक्स'।

काली पट्टी पर एक सफेद चीज से लिखते देखा था ।[1] पाटीगणित शब्द को भी अरब वालों ने अपना लिया । उन्होंने इसको अनूदित करके 'इल्म-हिसाब-अल-तख्त, और पाटीसार को 'किताब-अल-तख्त' नाम रख लिए । स्मिथ और मुराद (Mourad) का कहना है कि ९वीं तथा १०वीं शती की अंकगणित की अरबी पुस्तकों के नामों में तख्त और किताब अलतख्त शब्द प्रायः आये हैं । यह स्मरण रहे कि उन सबमें हिन्दू अंकगणित का ही वर्णन किया गया है ।

योरोपीय भाषाओं में भी अनुवाद :

योरुप में भी मध्य काल में अंकगणित की पुस्तकों के नाम 'लाइबर एबेकी' (Liber Abaci) पर थे । इसी से अंगरेजी का एबेकस (Abacus) शब्द निस्सृत है । एबेकस शब्द यूनानी आबक्स (Abax) से बना है[2] जो स्वयं सैमिटिक-आबाक (Abaq) से बना है । आबाक का अर्थ है धूल । अतएव एबेक्स का अर्थ है 'ऐसी पट्टी जिस पर धूल बिछी हो ।' इस प्रकार लाइबर एबेकी का वही अर्थ हो जाता है जो पाटीगणित अथवा धूलिकर्म शब्दों का है । धूलिकर्म और पाटीगणित शब्दों के इस विवेचन से स्पष्ट है कि किस प्रकार भारतीय अंकगणित का प्रभाव अरब और योरुप के देशों पर पड़ा ।

व्यक्तगणित :

पाटीगणित के समान व्यक्तगणित भी अंकगणित का भारतीय नाम है । श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में व्यक्तगणित और अव्यक्तगणित नामक पृथक्-पृथक् अध्याय लिखे । व्यक्तगणित का अर्थ है व्यक्तराशियों (known quantities) द्वारा निकाला जाने वाला गणित । भास्कर ने भी व्यक्तगणित और अव्यक्तगणित शब्दों का प्रयोग निम्नलिखित श्लोक में किया है :—

उत्पादकं यत्प्रवदन्ति बुद्धेरधिष्ठितं सत्पुरुषेणसांख्याः
व्यक्तस्य कृत्स्नस्य तदेकबीजमव्यक्तमीशं गणितं च वन्दे ॥

अर्थात् जैसे ईश्वर समस्त लोकों का आदि कारण है वैसे ही अव्यक्तगणित व्यक्तगणित का मूल है ।

अंकगणित शब्द का प्रादुर्भाव :

जब स्लेट, पैंसिल और कागज ने १९वीं शती के अंत में पट्टी का स्थान ले लिया तो पाटीगणित शब्द के स्थान पर रेखागणित के वजन पर अंगरेजी अरिथ-मैटिक का शब्दानुवाद अंकगणित शब्द विराजमान हो गया । सुधाकर द्विवेदी जी के

---

१. देखिए 'ई० सी० सोचो कृत 'अलबरूनीज इण्डिया', खंड १ पृ० १८२ ।

२. देखिये 'बुलैटीन आफ मैथिमेटिकल एसोसियेशन', इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १९२८-२९ में डाक्टर बी० बी० दत्त का लेख 'हिन्दू कन्ट्रीव्यूशन टु मैथिमेटिक्स' ।

अनुसार स्लेट का प्रथम प्रचार बापूदेव शास्त्री ने किया। अतएव हो सकता है कि अंकगणित शब्द भी उन्होंने ही चलाया हो। उन्होंने सर्वप्रथम 'अंकगणित' नामक एक पुस्तक भी लिखी थी। बाद को इस शब्द का ऐसा प्रचार हुआ कि सहस्रों वर्षों से प्रयुक्त शब्दों धूलिकर्म, पाटीगणित और व्यक्तगणित को भुला दिया गया। बीजगणित और रेखागणित शब्द पहिले से ही चले आ रहे थे अतएव उसी वजन पर अंकगणित शब्द का बनना स्वाभाविक था।

सारांश :

अंकगणित शब्द के अर्थ-विचार से भारत के अतीत गौरव का पता चलता है। उस गौरव के परिचायक हैं हमारे अंकगणित के प्राचीन पर्याय 'धूलिकर्म' तथा 'पाटीगणित' शब्द जिनका प्रचार एशिया, योरुप तथा अफ्रीका के विभिन्न देशों में हिसाब-अल-गुबार, इम्महिसाब-अल-तख्त, हिसाबुल हिन्द, लाइबर एबेकी, एबेकस आदि अनूदित रूपों में था। 'चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः' अर्थात् भाग्य की गति भी रथचक्र के समान ऊपर नीचे होती रहती है। जिस देश ने अनेक देशों के अंकगणित के वाचक अनेक शब्दों को जन्म दिया उसी देश को आवश्यकता के वशीभूत होकर अंगरेजी शब्द अरिथमैटिक के आधार पर अपने धूलिकर्म और पाटीगणित शब्दों को भुलाकर एक नवीन शब्द अंकगणित बनाना पड़ा। अंकगणित शब्द यद्यपि नवीन है किन्तु इसके आधारभूत शब्द अंक और गणित शब्द विश्व के प्राचीनतम शब्दों में से हैं।

(देखिए अंक तथा गणित शब्द)

प्रकरण २. अंक

अंक शब्द भारोपीय (Indo European) धातु 'अंक' से बना है। अंक धातु का अर्थ है मुड़ना। जो मोड़ा जाये वह अंक था। अतः यह शब्द प्रारम्भ में आंकड़े (Hook) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आंकड़ा मुड़ा होता है। देखिये ऋग्वेद का निम्नलिखित मन्त्र :—

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामंकाः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम्।

ऋग्वेद १। १६२। १३

यहाँ सायण ने इस मंत्र की व्याख्या करते हुए अंक का अर्थ बेंत की शाखा

अर्थ १-९ तक के अंक (Digits) ही है। लीलावती के अंकपाश नामक प्रकरण में अंक शब्द का उक्त अर्थ में बाहुल्य रूप से प्रयोग हुआ है।

श्रीहर्ष ने नैषध काव्य में दमयन्ती के रूप वर्णन में कर्ण का वर्णन करते हुए अंक शब्द को उपरोक्त अर्थ में ही प्रयुक्त किया है तथा अंकों को ९ ही बताया है। देखिये :—

अस्या यदष्टादश संविभज्य विद्याः श्रुती दध्रतुरर्धमर्धम्।
कर्णान्तिरुत्कीर्णगभीररेखः किं तस्य संख्यैव नवा नवांकः॥

अंक शब्द की अन्वर्थकता :

अंक संख्याओं के चिह्न ही होते हैं अतः अंक शब्द अन्वर्थक है। शून्य का स्थान रिक्त छोड़ देते थे अतः शून्य शब्द भी अन्वर्थक है। यदि अंक शब्द को भारोपीय अंक धातु से निस्सृत मानें तो भी यह अन्वर्थक है क्योंकि समस्त अंक (चिह्न) वक्रों से ही बने हैं।

अंक के विविध अर्थ :

अंक शब्द के निम्नलिखित अन्य सजातीय अर्थ भी हैं :—

१— गोद (वक्रित होने के कारण),
२— चिह्न, लक्षण (वक्रित होने के कारण)
३— अक्षर (,, ,,)
४— रेखा, वक्र रेखा, मोड़ (,, ,,)
५— लिपि
६— मोहर, ठप्पा
७— संख्या
८— गुणांक, जैसे $३ क^२ + ४ क + ग$ में ३, ४ अंक हैं, क्योंकि वे अज्ञात राशियों के गुणांक हैं।

अंकन अर्थात् आंकने अथवा दागने से जो निशान बनते थे उनको अंक तथा प्राकृतिक निशानों को चिह्न कहते थे। यथा :—

मासद्विमासजातानंकयेत्। अंकं चिह्नं वर्णं शृंगान्तरं च लक्षणमेवमुपजा निबन्धयेत् —(कौटिल्य अर्थशास्त्र)

अर्थात् 'महीने दो महीने बड़े पशुओं को दाग दे देवे, प्रत्येक पशु के अंक (दाग) प्राकृतिक चिह्न, रंग तथा सींगों की दूरी को लिख लेवे।"

अंक शब्द का ठप्पा अथवा मोहर अर्थ भी है जो दागने का सजातीय अर्थ है। देखिये :—

कृतनरेन्द्रांकं शस्त्रावरणमायुधागारं प्रवेशयेत्॥ (कौटिल्य अर्थशास्त्र)

अर्थात् शस्त्र और कवच तभी आयुधागार में रखे जायें जब उन पर राजा की मुहर लग जाये।

अंक शब्द का गुणांक के अर्थ में प्रयोग पृथूदक् स्वामी (८६० ई०) ने किया है[1]। चिह्न के अर्थ में अंक शब्द का प्रयोग तारांकित और रेखांकित शब्दों में अब भी निहित है। गुणांक, अंकगणित, सूचकांक, कोणांक, स्थिरांक आदि शब्दों में अंक का अर्थ संख्या ही है। सम्राट जगन्नाथ ने रेखागणित नामक अपने ग्रन्थ में जो यूक्लिड के एलीमेंट्स (Elements) ग्रन्थ का एक प्रकार से अनुवाद ही है, संख्या-सिद्धान्त (Number theory) वाले खण्ड का अनुवाद करते समय संख्या के अर्थ में अंक शब्द का ही प्रयोग किया है। उन्होंने अंक की परिभाषा "अंको नाम रूपाणां समुदाय:" अर्थात् अंक रूपों का समुदाय है, की है। अंकों की सहायता से ही संख्या प्रकट की जाती है अतएव अंक शब्द का संख्या अर्थ भी हो गया। संख्या के अर्थ में अंक शब्द के प्रयोग-बाहुल्य के कारण ही संभवतः बाद में अरिथमैटिक के लिये अकगणित शब्द की सृष्टि की गई।

'आंकड़ा' शब्द का बहुवचन 'आंकड़े' है, जिसका अर्थ अंकसमूह है। यह शब्द भी अंक से निसृत है। अंक से आंक बना और आंक से स्वार्थ में 'ड़ा' प्रत्यय लगाकर आंकड़ा हुआ, जैसे सैकड़ा (शतक+ड़ा)।

अंक का अर्थ अक्षर भी है। प्रायः ग्रामीण जन बोलते हैं ' हमें तो आंक भी नहीं बांचवो आवतु" अर्थात् हम एकदम निरक्षर हैं। यहाँ अंक का अर्थ अक्षर ही है।

अंक का अर्थ लिपि भी है। वास्तव में लिखने (Script) में पहले दो क्रियाएँ सम्मिलित होती थीं। प्रथम लोहे आदि की लेखनी से ताड़ आदि के पत्तों पर अंकित करना और पुनः करखी से लीप देना। पहली क्रिया अंकन और दूसरी लेपन है। इन दोनों के मेल से लिपि बनी। नैषधकार ने जिसे वैधसी लिपि कहा उसी को तुलसीदास जी ने विधि के अंक कहकर द्योतित किया।
देखिये:—

अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नृपः ॥

जरत विलोकेउ जबहि कपाला
विधि के लिखे अंक निज भाला
नर के कर आपन वध बांची
हंसेऊ जानि विधि गिरा असांची।। (रामचरित मानस)

---

१. देखिये, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त १८। ४४ (टीका)।

यहां अंक का अर्थ लिपि अथवा अक्षर है।

ऐतिहासिकता :

अंक-लेखन-प्रणाली के मूर्त्त प्रमाण अशोक के शिलालेखों (३०० ई०पू०) से पहले के नहीं मिलते। जैन आगम ग्रन्थों के समवायांग में (४०० ई०पू०) प्रज्ञापना सूत्र में अट्ठारह लिपियों का उल्लेख है, जिनमें अंक-लिपि और गणित-लिपि भी सम्मिलित हैं। अंक-लिपि से तात्पर्य उस अंक-लेखन-प्रणाली से था जो शिलालेखों में प्रयुक्त होती थी। गणित-लिपि साधारणतया गणित में प्रयुक्त होती थी। ललित-विस्तार नामक बौद्ध ग्रन्थ में भी संख्या-लिपि का उल्लेख मिला है। इससे प्रतीत होता है कि ईसा से चौथी शती पूर्व भी अंक-लेखनी-प्रणाली प्रचलित थी। इस सम्बन्ध में मेरा विचार यह है कि अंकगणितीय प्रक्रियाओं का प्रयोग विना अंक-लेखन-ज्ञान के हो ही नहीं सकता। कोई व्यक्ति दो बड़ी संख्याओं को अक्षरों में लिखकर उन संख्याओं का परस्पर भाग कैसे कर सकता है। प्रारम्भक छोटे-मोटे जोड़, बाकी तो उंगलियों पर किये जा सकते हैं, शेष प्रक्रियाएँ उंगलियों पर नहीं की जा सकतीं। यदि यह अनुमान सत्य है तो वेदांग-ज्योतिष काल (८००-५०० ई० पू०) से तो निश्चित ही अंक-लेखन-प्रणाली के ज्ञान का आभास मिलता है। वेदांग-ज्योतिष के कतिपय श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं जिनमें भिन्न, गुणा, भाग, जोड़ और घटाने का स्पष्ट उल्लेख है:—

"तिथिमेकादशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्।।"

अर्थात् तिथि को ग्यारह से गुणा करे, उसमें पर्वभाशं जोड़े, फिर नक्षत्र समूह से भाग दे, इस प्रकार तिथि के नक्षत्र को बताये। इसमें "अभ्यस्तां' शब्द गुणावाचक अभ्यास शब्द का भूतकालिक प्रयोग है। अभ्यास शब्द अब भी वज्राभ्यास (Cross multiplication) में गुणा के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। विभज्य का अर्थ तो भाग देकर है ही। आज भी विभाजन शब्द से भाग का अर्थ समझा जाता है। स्थानांगसूत्र ७४७ (३५० ई० पू०) में गणित की मूलभूत प्रक्रियाओं त्रैराशिक नियम, तथा समीकरणों का उल्लेख मिलता है। ये सब अंक-लेखन-प्रणाली के उस समय प्रचलित होने के निश्चित प्रमाण हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में गाणनिक्याधिकार नामक एक अध्याय है जिसमें गणना पुस्तक (निवन्ध पुस्तक) तथा उसमें वेतन, भत्ता, विभाग-संख्या आदि प्रविष्ट करने का उल्लेख है।[1] संख्यायक (एकाउण्टेंट), लेखक (क्लर्क), रूपदर्शक (रुपये परखने वाला) का उल्लेख है।[2]

---

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ० ६२।

२. तस्मादस्याध्यक्षा : संख्यायक, लेखक रूपदर्श कनीवीग्राहकोत्तराध्यक्षसखा: कर्माणि कुर्युः (कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ० ६६)।

गणित की प्रक्रियाओं, संकलन, व्यवकलन (निर्वर्तन) का भी उल्लेख है।

"ततः परं कोशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसंकलननिर्व... चारप्रयोगैरवेक्षेत्।" शाम शास्त्री ने इसका अंगरेजी में निम्नलिखित किया है :—

Then the table of daily accounts submitted by him alo... the net revenue shall be checked with reference to the r... forms of righteous transactions and precedents and by apply... arithmetical processes as additions, subtractions, inferenc... espionage.

उस समय लिपि और संख्यान (गणित) चूड़ा-कर्म के बाद सीखे... लेखा-विभाग भी बहुत बड़ा था। लाखों संख्याएँ लिखनी-पढ़नी पड़ती थीं। अन्त में गाणनिक लोग अक्षपटल में जाकर अपनी विभिन्न शीर्षकों की धन... के बृहद्योग (Grand totals) जिनको उस समय अग्र कहते थे, सुनाते... देखिये :—

गाणनिक्यान्याषाढ़ीमागच्छेयुः। आगतानां समुद्रपुस्तभांडनीवीनामेकत्र र... षणावरोधं कारयेत्। आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वानीवीमवहारये...

(कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ०

इस तथ्य-समूह से क्या हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते कि चन्द्रगुप्त ... (३२२ ई० पू०) के शासनकाल में भी अंक-लेखन-प्रणाली का ज्ञान अवश्य र... होगा ? मैगस्थनीज उस समय सड़कों पर मील होने का भी वर्णन करता है। ज... मील थे तो उन पर दूरी-सूचक अंक भी अवश्य रहे होंगे।[1]

कात्यायन शुल्व सूत्र से दो प्रकरण उद्धृत किये जा रहे हैं, जिनसे गणितीय... उच्च ज्ञान का आभास मिलता है :—

"मंडलं चतुरस्रं चिकीर्षन् विष्कम्भमष्टौ भागान् कृत्वा भागमेकोनत्रिंशधा विभज्याष्टाविंशतिभागानुद्धरेद् भागस्य च षष्ठमष्टमभागोनम्।"

इसका अर्थ यदि गणितीय भाषा में कहें तो यह होगा :—

$$\pi = ४ \left(१ - \frac{१}{८} + \frac{१}{८.२९} - \frac{१}{८.२९.६} + \frac{१}{८.२९.६.८} \right)$$

इसी प्रकार आपस्तंब की निम्नलिखित पंक्ति भी $\sqrt{२}$ का मान निर्धारित करती है :—

"प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेतच्चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन स विशेषः"

१. इण्डिया ऑफ मैगस्थनीज, पृ० १२५-१२६।

अर्थात् $\sqrt{२} = १ + \frac{१}{३} + \frac{१}{३.४} - \frac{१}{३.४.३४}$

तैत्तिरीय संहिता में भी $३९^२ = ३६^२ + २५^२$ आया है। ऋग्वेद में अयुत (१०,०००) तक की संख्यायें तथा यजुर्वेद में दश खर्व तक की संख्याओं का उल्लेख है तथा उसके एक मन्त्र[१] में ४ का १२ तक पहाड़ा-सा भी पढ़ा गया है।

इन उद्धरणों से प्रतीत होता है कि वैदिक काल (३००० ई० पू०) में बड़ी-बड़ी संख्याओं का ज्ञान था। किन्तु अंक-लेखन-प्रणाली का ज्ञान था या नहीं, इसका निश्चित ज्ञान हमको नहीं है। यद्यपि हिन्दू जैन तथा बौद्ध परम्परायें ब्राह्मी लिपि तथा अंक-संकेतों को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का आविष्कार मानती हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाइयों के फलस्वरूप कुछ लेख और मोहरें मिली हैं। उन पर अंक जैसे कुछ चिह्न मिलते हैं किन्तु जब तक उनकी लिपि का भलीभांति अभिज्ञान नहीं हो जाता तब तक ३००० ई० पूर्व अंक-लेखन-प्रणाली के ज्ञान का होना हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते।

भारत के जिन अंकों (धूलि-अंकों) को देखकर अरब वालों ने हरुफुल गुबार, हिन्दसा तथा अल-अरकाम्-अल-हिन्द कहा, उन्हीं अंकों को यूरोप वालों ने अरबों से सीखकर अरैबिक न्यूमरल कहा और उन्हीं को हम अन्तर्राष्ट्रीय अंक (International Numerals) कहते हैं। कितने दुःख की बात है कि आज हमारे भोले अनभिज्ञ अनेक भारतवासी अपने इन अंकों को विदेशी नामों से पुकारते हैं और इन्हें देवनागरी अंक कहते हुए तथा इनका प्रयोग करते हुए कुछ दुःख एवं अपमान अनुभव करते हैं। दूसरे शब्दों में इन पर यह उक्ति चरितार्थ होती है :—

निज हैं उन्हें अन्य जन सारे
भव पर विभव उन्होंने वारे।
पर हा उलटे भाग्य हमारे
निज भी हुए पराये ॥ (यशोधरा से)

अंगरेजी के अंकों का रूप अब भी देवनागरी के अंकों से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। अरबी लिपि दायें से बाएँ लिखी जाती है किन्तु संख्याएँ वहाँ भी अब तक बायें से दायें ही लिखी जाती हैं। अरबों द्वारा भारतीय अंक-लेखन-प्रणाली ग्रहण करने का यह अकाट्य प्रमाण है।

---

१. दे० पृ० ११६, पाद टिप्पणी।

प्रकरण ३. शून्य

शून्य शब्द श्वि धातु के क्त प्रत्ययान्त रूप शून की भाववाचक संज्ञा है। श्वि का अर्थ है सूजना, बढ़ना। श्वि की क्रियार्थक संज्ञा श्वयन है जिससे बिगड़कर हिन्दी की क्रियार्थक संज्ञा सूजना बनी। शून का अर्थ है सूजा हुआ।[1] ऋग्वेद में शून का अर्थ है बढ़ा हुआ तथा समृद्ध। सृष्टि के प्रारम्भ में अण्ड (ब्रह्मांड) शून होता अर्थात् बढ़ता चला गया और फिर फट गया जिससे आकाश की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार शून्य के "खालीपन" तथा "आकाश" अर्थ हुए। प्रसिद्ध गणितज्ञ महावीराचार्य संख्यावाचक शब्दों को गिनाते हुए शून्य के विषय में लिखते हैं :—

पर्याय :

> आकाशं गगनं शून्यमम्बरं खं नभो वियत्
> अनन्तमन्तरिक्षं च विष्णुपादं दिविस्मरेत्।

अर्थात् आकाश, गगन, अम्बर, ख, नभः वियत्, अनन्त, अन्तरिक्ष, विष्णुपाद तथा दिव शब्द शून्य के पर्यायवाची हैं। ज्योतिषी लोग शून्य के लिये पूर्ण शब्द का भी व्यवहार करते हैं। अमरकोष में भी लिखा है :—

"शून्यं तु वशिकं तुच्छरिक्तके" अर्थात् रिक्तार्थक शून्य शब्द के ४ पर्याय हैं :—१. शून्य, २. वशिक, ३. तुच्छ, ४. रिक्त। इनमें से शून्यार्थक तुच्छय और रिक्त शब्द ऋग्वेद में भी मिलते हैं। वशी शब्द कात्यायन श्रौत सूत्र में शून्यार्थ में ही मिलता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में शून्य शब्द के रिक्त अर्थ में प्रयोग मिलते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र (३२५ ई० पूर्व) में "शून्यमूलं" शब्द में शून्य आया है। इसमें शून्य का अर्थ है खाली अथवा अरक्षित। अमरकोष की उक्त पंक्ति भाषाविज्ञान की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। देखिये संसार की अन्य भाषाओं में इन्हीं चारों से मिलते-जुलते शब्द पाए जाते हैं। यथा :—

भाषा	शब्द	
यूनानी	केनोस, केन्योस	शून्य से मिलते-जुलते
ऐलिक	केन्नोस	
लैटिन	वेक्वयुअस	वशिक से मिलते-जुलते
इटैलियन	व्यूटो	
स्पैनिश	वेशियो	
डैनिश	तोम	तुच्छ से मिलते-जुलते
लियूनियन	तुश्चियस	
लैटिश	तुक्स	
स्लैविक	तुश्ती	

---

१. विनय-पिटक में भी शून का सूजा हुआ अर्थ मिलता है। देखिए रायस डेविसकृत पाली शब्दकोष।

बोहीमियन, जैक	रैज़्डनी	} रिक्त से मिलते-जुलते
पोलिश	रोज़नी	

ज़ीरो तथा साइफर :

अरबी भाषा में रिक्त के अर्थ में सिफ्र शब्द था अतएव उन्होंने शून्य को 'सिफ्र' शब्द से अनूदित किया। सिफ्र शब्द निम्नलिखित दो मार्गों से अंगरेजी में पहुंचा अतएव अंगरेजी में उसके दो भिन्न विकृत रूप 'साइफर' तथा 'ज़ीरो' मिलते हैं। ज़ीरो इस प्रकार एक डबलैट शब्द है।

प्रथम मार्ग	अरबी	स्पेनिश	पुरानी फ्रैंच	नई फ्रैंच	अंगरेजी
शून्य	सिफ्र	सिफ्रा	सिफ्रे	शिफ्रे	साइफर
द्वितीय मार्ग	अरबी	लेटिन	इटेलियन	फ्रैंच	अंगरेजी
शून्य	सिफ्र	ज़ैफ्रम ज़ैफीरम	ज़ैफीरो ज़्यूरो ज़ीरो	ज़ीरो	ज़ीरो

अरबी का सिफ्र शब्द संस्कृत शून्य का ही अनुवाद है। इसके तीन प्रमाण मिलते हैं :—

(१) अरबों ने अंक भारतवर्ष से सीखे, अत: उनको हिन्दसा (हिन्दुस्तान के) अथवा अलअरकाम् अलहिन्द (अलबरूनी का शब्द है, अर्थात् हिन्दुस्तान के अंक) कहते थे। अंकों को वे हरूफुल गुबार भी कहते थे, जो हमारे धूलि-अंकों के आधार पर ही बना हुआ शब्द है। अरबों ने यह कभी दावा नहीं किया कि अंकों का उन्होंने स्वयं आविष्कार किया। (२) द्वितीय प्रमाण शून्य की व्युत्पत्ति है। दशमिक अंक-प्रणाली भारत की देन है। इस प्रणाली में इकाई, दहाई, आदि के पृथक् स्थान थे। जिस स्थान पर कोई अंक नहीं होता था उसको सम्भवत: रिक्त छोड़ देते थे जैसे २५०३०४ को वे ○ ○ ○ ○ ○ ○ यों लिखते थे।[1] बाद में शून्य का
२ ५   ३   ४

---

1. In the utilization of a system of notation wherein the several numerical figures used have place values apart from what is called their intrinsic value. In writing out a number according to such a system of notation, any notational place may be left empty when no figure with an intrinsic value is wanted there. It is probably that owing to this very reason, the Sanskrit word शून्य meaning empty came to denote zero; and when it is borne in mind that the English word 'cipher' is derived from an Arabic word having the same meaning as the Sanskrit शून्य, we may safely arrive at the conclusion that in this country the conception of zero came naturally in the wake of the decimal system of notation."

Rangacharya, commentator of गणित-सार-संग्रह (Ganit sar sangrah).

सांकेतिक चिह्न (०, .) आविष्कृत हुए। अन्य देशों के शून्य-वाचक
युक्तियुक्त व्युत्पत्ति नहीं मिलती। (३) भारत में शून्य-चिह्न का प्रयो
पू० के पिंगल छन्दः शास्त्र नामक ग्रन्थ में मिलता है। इतना प्राचीन
किसी देश में नहीं मिलता। देखिए :—

"रूपं शून्यं" (पिंगल ८।२९)

हलायुध वृत्ति (विषमसंख्यातः रूपम् एकसंख्याम् अपनयेत्। र
शून्य लभ्यते)

द्विः शून्ये (पिंगल ८।३०)

हलायुधवृत्ति (शून्यस्थाने द्विरावृतिं कुर्यात् तत्र निराकारतया
प्रथमातिक्रमे कारणाभावात् एकसंख्या लभ्यते। तां शून्यस्थाने स्था
येत्) पिंगल ने इन सूत्रों में छन्दों के प्रस्तार की पद्धति बतायी है
६ वर्णों वाले गायत्री छन्द के कितने भेद होंगे। उक्त पद्धति के हिसा
होंगे। उपरोक्त उद्धरणों में बताया है कि रूपं अर्थात् १ घटाने
शून्य चिह्न रखिये। द्विः शून्ये" अर्थात जहाँ-जहाँ शून्य चिह्न
गुणा करिये।

बक्षाली-पांडुलिपि (३०० ई०) में भी शून्य-चिह्न का प्रयोग कर
लिखी हैं जैसे पत्र ५६ (बी) पर

८८०	९९४
८४	१६८

गुणा करने प
संख्यायें प्राप्त हुई। बक्षाली-पांडुलिपि में (पृ० १८७) 'शून्यं हस्तं
इसमें भी शून्य का अर्थ सिद्ध है। उक्त ग्रन्थ के २२ वें पृष्ठ पर शून्य का
मिलता है। शून्य का प्राचीनतम चिह्न (.) है। सुबन्धु कृत वासवदत्ता (५
की निम्न पंक्तियाँ इस सम्बन्ध में अवलोकनीय हैं।

"विश्वं गणयतो विधातुः शशिकठिनीखण्डेन तमोमयी श्यामे अजिन इव
ससारस्य अतिशून्यत्वात् शून्यबिन्दव इव विलिखिताः जगत्त्रयविजिगीषाविनिर्ग
रतिकरविकीर्णा इव लाजांजलयः······तारा व्यराजन्त"

अर्थात् "किंवा संसार की गणना प्रसंग में भगवान् ब्रह्माद्वारा चन्द्रमारु
खड़िया से कज्जलतुल्य अंधकार से श्यामवर्ण चर्मसदृश आकाश में संसार के अत्यन्त
निस्सार एवं सर्वथा विनाशी होने के कारण शून्यता सूचक लगे हुए बिन्दुओं के समान
तारे शोभायमान लग रहे थे।" यहाँ शून्य बिन्दवः का अर्थ है शून्य (संख्या) के
सूचक बिन्दु (चिह्न)। शून्य एक संख्या है और बिन्दु उसका चिह्न है। भास्कर
प्रथम (६२९ ई०) ने आर्यभटी की टीका में स्थानमानयुक्त शून्य सहित अंकों का
प्रयोग किया है। आधुनिक प्रणाली के समान उन्होंने भी पहले इकाई, दहाई आदि

के स्थान द्योतक चिह्न ००००० लिखे हैं। आठवीं शती के जयवर्धन द्वितीय के रघोली पट्टों में शून्य-चिह्न को प्राचीनतम पुरालेख सम्बन्धी प्रमाण हैं। इसमें शून्य का चिन्ह वृत्ताकार ० है।

शून्य ऋण चिह्न के रूप में :

भास्कर प्रथम ने ० को अंक के पार्श्व में तथा परवर्तियों ने अंक के ऊपर इस चिह्न को लगाकर उस राशि के ऋणत्व को सूचित किया है।

अर्थात् $\left\{\begin{matrix} १ & १ \\ २ & ६० \end{matrix}\right\} = \frac{१}{२} - \frac{१}{६}$

२५ १६° = २५ — १६

भास्कर द्वितीय ने कहा है "अत्र रूपाणाममव्यक्तानां चाद्यक्षराण्युपलक्षणार्थं लेख्यानि यानि ऋणगतानि तानि ऊर्ध्वविन्दूनि च —(भास्करीय बीजगणित)।

अर्थात् अव्यक्त राशियों के द्योतक कालक, नीलक आदि के प्रथम अक्षर का० नी० आदि होते हैं। यदि यह ऋणात्मक हों तो उनके ऊपर विन्दु लगाना चाहिए।

शून्य के आविष्कार का महत्व :

यदि शून्य चिह्न का आविष्कार न हुआ होता तो न मालूम संख्याओं को व्यक्त करने के लिये कितने चिह्न बनाने पड़ते और दशमिक अंक-लेखन-प्रणाली का आविष्कार ही न हुआ होता। सकल विज्ञानों की जननी गणित-विद्या है और गणित की जननी संख्याएँ हैं जिनके लेखन की आधार भूत सामग्री शून्य है। यदि शून्य का आविष्कार न हुआ होता तो आज विज्ञान की इतनी प्रगति न हुई होती। प्रो० इरविन स्क्रूडिंगर अपनी 'स्पेस टाइम स्ट्रक्चर' नामक पुस्तक (१९५० ई०) में लिखते हैं, 'The most important number in Mathematics is zero'. अर्थात् गणित की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संख्या शून्य है। अमरीका के प्रो० हालसटीड इसके आविष्कार के विषय में लिखते हैं :—

This giving to airy nothing not merely a local habitation and a name, a picture, a symbol but helpful power is the characteristic of the Hindu race whence it sprang. It is like coining the nirvan into Dynamos. No single mathematical creation has been more potent for the general ongo of intelligence and power.

अर्थात् इस हवाई अभावात्मक वस्तु को न केवल स्थान-मान तथा संज्ञा प्रदान करना अपितु उसको चित्रित करना तथा उसको सांकेतिक चिह्न प्रदान करना, हिन्दू जाति की विशेषता है जिसने इसको जन्म दिया। यह निर्वाण को गति प्रदान करने के समान है। बुद्धि तथा शक्ति की व्यापक प्रगति के लिये गणित का अन्य कोई आविष्कार इतना अधिक सहायक सिद्ध नहीं हुआ।

शून्य का विकृत रूप 'सुन्ना' भी हिंदी की कई बोलियों में चलता है। ज्योतिषी गणना करते समय पांच गुणा दो आए दस, दस का पूर्ण हाथ लगा एक कहते हैं, अतएव शून्य के लिये पूर्ण शब्द का भी व्यवहार किया जाता है। मोनियर विलियम्स संस्कृत कोश में भी पूर्ण का अर्थ शून्य दिया है। शून्य कहना वह अशुभ समझते हैं अतएव उसके स्थान पर पूर्ण शब्द का व्यवहार करते हैं। दश पर दशमिक अंक-माप (Decimal Scale) पूर्ण हो जाता है अतः शून्य के स्थान पर पूर्ण शब्द का प्रयोग सार्थक भी है। किन्तु हँसी की बात यह है कि खग्रास (पूर्ण ग्रहण) शब्द में शून्य का पर्यायवाची 'ख' शब्द पूर्ण अर्थ में प्रयुक्त होता है।

शून्य संख्या है अथवा चिन्ह ?

जैसा कि ऊपर बताया गया है शून्य संख्या होती है और बिन्दु उसका चिह्न। एक में से एक घटाया शेष आया शून्य, यहाँ स्पष्ट है शून्य एक संख्या विशिष्ट है। यह सकल धनात्मक तथा सकल ऋणात्मक संख्याओं की मध्यवर्ती संख्या है। बिंदु अथवा बिंदी शून्य का सांकेतिक चिन्ह है जैसे सौ में दो बिन्दी लगती हैं।[1] बच्चे संख्या-पाठ करते समय बोलते हैं "एक कड़ा पै दो बिन्दी पूरे राम सौ।" एक कड़ा का अर्थ एक आँकड़ा अथवा एक अंक है। बिंदु, जल-बिन्दु शब्द का संक्षिप्त रूप है और अतएव उसका आकार • है। पहिले शून्य का चिह्न '•' था बाद में वह वृत्ताकार ० हो गया। उर्दू में शून्य का चिह्न (.) अर्थात् बिन्दी ही है। संभवतः इसका कारण यह भी हो कि यदि शून्य का वृत्ताकार चिह्न लगायें तो उर्दू पाँच ० का भ्रम लगने लगेगा। अंगरेजी में शून्य का चिह्न वृत्ताकार ही है क्योंकि बिन्दु पूर्ण विराम का चिह्न है।

प्रयोग :

आर्यभट के बाद ही प्राचीन गणित की पुस्तकों में शून्य परिकर्म नामक एक अध्याय पाया जाता है जिसमें शून्य द्वारा योग, गुणा, भाग आदि क्रियाओं के करने का विधान दिया रहता था। देखिए ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०) का एतद्विषयक सूत्र :—

शून्य-विहीनमृणमृणं धनंधनं भवतिशून्यमाकाशम्।
शोध्यं यदा धनमृणाद् ऋणं धनाद्वा तदा क्षेप्यम्॥

अर्थात् शून्य को किसी धन अथवा ऋण राशि में घटाने से राशि धन ही अथवा ऋण ही रहती है तथा शून्य में से शून्य घटाने से शून्य राशि ही प्राप्त होती है।

---

१. बिहारी कवि ने भी बैंदी (बिन्दी) को शून्य सूचक चिह्न बताया है। यथा :—

कहत सबै बैंदी दिये अंक दसगुनो होत।
तिय लिलार बैंदी दिये अगनित बढ़त उदोत॥

किन्तु यदि ऋण से घन राशि घटाये तो फल ऋण तथा घन से ऋण घटाने पर फल घन प्राप्त होता है।

तच्छेद, खहर :

खोऽतमृणं घन व तच्छेदं खमृणघन विभक्तं ना।
ऋणधनयोर्वर्गः स्वम् खं खस्य पदं कृतिर्यत्तत्॥

अर्थात् शून्य से भाग देने पर ऋण अथवा धन राशि तच्छद अथवा खहर कहलाता है। यदि शून्य को ऋण अथवा धन राशि मे भाग दें तो शून्य ही प्राप्त होता है। ऋण अथवा घनराशियों का वर्ग घन होता है। शून्य का वर्गमूल शून्य तथा वर्ग भी शून्य होता है। किन्तु ब्रह्मगुप्त का यह कथन असत्य है कि खं खभक्तं खम् अर्थात् $\frac{0}{0}=0$। भास्कर द्वितीय ने तच्छेद के स्थान पर खहर शब्द का प्रयोग किया है। यथा :—

खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति।
वधादौ वियत्खस्य खं खेनघाते खहारोभवेत् खेन भक्तस्य राशिः॥

भास्कर में इसकी टीका में लिखा है :—
रू ३ रू ३° रू ० अर्थात् ३—३=०

हिन्दू लोग अंकगणित में शून्य द्वारा किये गये भाग को ठीक नहीं समझते थे। नारायण कहते हैं कि लोक व्यवहार में 'खहर' का प्रयोग नहीं होता। अतः हमने इसको यहाँ प्रयोग नहीं किया है। खहर बीजगणित की वस्तु है। यही कारण है कि महावीर ने शून्य से भाग देने पर संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता यह अशुद्ध कथन किया है। यथा :—

'ताडितः खेन राशिः खं सोऽविकारी हृतो युतः'

प्राकृत में शून्य को सुगुण तथा सुण्ण कहते है जिससे बिगड़कर हिन्दी में सूना, सुन्ना अथवा सुन्न शब्द बने। अथर्ववेद में क्षुद्र शब्द आता है। डा० दत्त के मत में यह शून्य के ही अर्थ में वहां प्रयुक्त है। वैसे क्षुद्र का अर्थ तो तुच्छ है और तुच्छ स्वयं रिक्तार्थ शून्य का पर्याय है। अतएव डा० दत्त की कल्पना सत्य हो सकती है।

शून्य की परिभाषा :

ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में शून्य की परिभाषा इस प्रकार दी है 'समैक्यम् खम्' अर्थात यदि दो समान किन्तु विपरीत चिह्न वाली राशियो को जोड़ा जाय तो उनका योग शून्य होता है अर्थात् क—क=० बाद के ग्रन्थों में भी इसी परिभाषा को दुहराया गया है।

भाग्य की बात यह है कि सून (समुद्र) जैसे महान पिता का पुत्र शून्य निकला किन्तु शून्य होते हुए भी एक महानता उसमें भी है कि जो राशि उसकी

खहर शब्द का प्रयोग किया है। किन्तु खहर का मान क्या होता है इसका उन्होंने भी उल्लेख नहीं किया है। गणिततिलक में उन्होंने भी महावीर की त्रुटि को दोहराया है अर्थात् $\frac{क}{०} = ०$ तथा $\frac{०}{०} = ०$ कहा है यथा :—

योगे शून्यं भवति सदृशं क्षेपकस्याविकारी।
राशिः शून्यापगममिलने शून्यघाते च शून्यम्॥
व्योम्ना भक्ति भवतिगगनं व्योम्नि भक्तेचशून्यम्।
वर्गे व्योम्नो वियदिति भवेदन्तरिक्षं घनश्च॥

भास्कर द्वितीय ने ११५० ई० में सर्वप्रथम यह बताया कि इस खहर राशि का मान अनंत होता है। देखिए :—

'अयमनन्तो राशिः खहर इत्युच्यते'

वे खहर राशि की भगवान से तुलना करते हुए लिखते हैं:—

अस्मिन् विकारः खहरे न राशा
वपि प्रविष्टेष्वपि निस्सृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽ
च्युते भूतगणेषु तद्वत्॥

अर्थात् जिस प्रकार सृष्टि और प्रलयकाल के समय ब्रह्मा में से अनन्त जीव आते जाते रहते हैं किन्तु वह फिर भी अनन्त रहता है उसी प्रकार यह अनन्त संख्या भी है। इसमें कितनी बड़ी संख्या को भी जोड़ने या घटाने से कुछ अन्तर नहीं पड़ता। इसी पर ईशोपनिषद् में लिखा है :—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अनन्त का अर्थ आकाश भी होता है अतएव महावीराचार्य ने इसे शून्य का पर्याय बताया है।[1] कैसी विचित्र बात है कि इसका मान शून्य से बढ़कर अनन्त (असीम) हो गया तथा पूर्ण शब्द जिसका उपरोक्त उद्धरण में अनन्त जैसा अर्थ है ज्योतिषियों की भाषा में शून्य के अर्थ में प्रचलित हो गया।

---

१. देखिये शून्य शब्द।

प्रकरण ५. सख्यावाचक शब्द

व्युत्पत्ति :

सम् उपसर्ग पूर्वक ख्या (प्रकथने) धातु से संख्या शब्द बना है। प्रकथन का अर्थ है नाम निर्देश करना। गिनतियों के भावों के नाम होने के कारण इनको संख्या शब्द से व्यक्त किया गया है। संख्या और अंक में पर्याप्त अन्तर है जैसे २५ सख्या है जो २ और ५ अंकों से मिलकर बनती है किन्तु अंक को भी हम संख्या के अर्थ में कभी-कभी प्रयोग कर लेते है जैसे अंकगणित तथा गुणांक में यह प्रयुक्त हुआ है।

ऐतिहासिकता :

इन संख्याओं का आविष्कार कब हुआ इसका बताना अति कठिन है किन्तु भारतवर्ष में ही इस ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ यह निर्विवाद है। क्योंकि प्राचीनतम वैदिक साहित्य में एक, द्वि, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्युर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त और परार्ध आदि संख्याओं के नाम मिलते है। यथा :—

"शताम स्वाहा सहस्राय स्वाहाऽयुताय स्वाहा नियुताय स्वाहा प्रयुताय स्वाहाऽर्बुदाय स्वाहा न्यर्बुदाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा मध्याय स्वाहान्ताय स्वाहा परार्धाय स्वाहेपसे स्वाहा" (तैत्तिरीय संहिता ७-२-२०-१)

किन्तु संख्या शब्द वेदों में नहीं आता। इसका प्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। यथा :—

'तदाहु: कैतासामसंख्यातानां संख्येति द्वेइति ब्रूयाद्द्वेहि सिकते शुक्ला च कृष्णा चायो सप्तविंशतिशतानीति ब्रूयादेतावन्ति हि संवत्सरस्याहोरात्राण्यथो द्वे द्वापंचाशे शते इत्येतावन्ति ह्येतस्य षड्चस्याक्षराण्यथो पंचवि ऌ शतिरिति पंचविंशं हिरेत :।

प्रथम प्रयोग :

अर्थात् ब्रह्मा से प्रजापति अग्नि की उत्पत्ति हुई तथा उनके रेत से ही समस्त चराचर एवं संवत्सर अहोरात्र आदि बने। ब्रह्मा के उस अनंत रेत की क्या संख्या है। प्रथम तो वह रेत दो प्रकार का है शुक्ल और कृष्ण (पक्ष) और पुन: उन ७२० भेद भी है जो कि संवत्सर के दिन रात (३६० दिन ३६० रात) के रूप है......।

परवर्ती प्रयोग :

प्राचीनतम बौद्ध और जैन साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग मिलता दीर्घनिकाय, मिलिंद, दशवंस, संयुत निकाय आदि बौद्ध ग्रंथों में इस शब्द का प्र हुआ है। वर्तमान अर्थ के अतिरिक्त वहाँ इस शब्द के 'नाम', 'अक्षर' तथा 'परिम

ये अन्य अर्थ भी आये हैं।[1] महाभारत और काव्यसाहित्य में इसके चर्चा, विचारणा, तर्क, बुद्धि ये अतिरिक्त अर्थ मिलते हैं। जैन ग्रंथ अनुयोगद्वार सूत्र में बताया है कि एक संख्या नहीं होती, संख्यायें तो दो आदि हैं। देखिये—

'से किं तं गणणा संख्या ? एको गणणं न उवेइ दुप्पभिइसंखा'

(अनु०सू० १४६)

संख्याओं का ज्ञान :

संख्यासंबंधी ज्ञान भारतवर्ष में प्राचीनकाल से चला आ रहा है। वेदों में ही बड़ी २ संख्याओं का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में परार्ध जो $१०^{१२}$ के बराबर एक संख्या थी, का उल्लेख मिलता है। सांख्यायन श्रौतसूत्रों में वृहत्संख्या अनन्त का उल्लेख है जो $१०^{१३}$ के बराबर थी। इनसे भी बड़ी २ संख्याओं का परवर्ती बौद्ध और जैन ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर (१०० ई०पू०) में गणितज्ञ अर्जुन और राजकुमार बोधिसत्व के संवाद में शतगुणोत्तर संख्याओं में एक तल्लक्षणा नामक संख्या का उल्लेख है जो $१०^{५३}$ के बराबर थी। संवाद इस प्रकार है :

अर्जुन —हे बोधिसत्व क्या तुम शतगुणोत्तर संख्यायें जानते हो ?

बोधिसत्व —हां, सौकोटि का एक अयुत, सौ अयुत का एक नियुत, सौ नियुत का एक कंकर, सौ कंकर का एक विवर······सौ विमूर्तिगमा की एक तल्लक्षणा। इससे भी बड़ी शीर्षप्रहेलिका नाम की एक संख्या जैन साहित्य में आई है जिसका मान ज्योतिषकरण्डक के अनुसार २५० स्थानों तक जाता है। अंकों में लिखने पर यह निम्न संख्या होती है—१८७९५५१७९५५०११२५९५४१९००९६९९८१३४३०७७० ७९७४६५४९४२६१९७७४७६५०२५७३४६७१८६८१९ × $१०^{१३०}$।

विदेशी साहित्य की वृहत्संख्यायें :

यूनानियों के पास सबसे बड़ी संख्या का नाम मिरियड है जिसका मान केवल $१०^{४}$ के बराबर है। रोमनों के पास बड़ी संख्या 'मिले' ही थी जो केवल $१०^{३}$ के बराबर थी। मिस्र में भी करोड़ से ऊपर के स्थान नहीं थे और शून्य के लिये भी कोई चिह्न नहीं था। बेबीलोन में दस लाख से नीचे की ही संख्यायें पाई गई हैं। सीरिया में १००० तक के ही संख्या चिह्न थे। रूसी भाषा में भी १००० तक के ही संख्या चिह्न थे। उनके यहां संख्यायें दस करोड़ से अधिक नहीं हैं। पीटरग्रेट ने अपने समय में भारतीय अंकों का प्रचार किया था।

---

१. देखिये राइस डेविस कृत पालि शब्द कोष।

२. अनेक व्यक्ति वेदों को अनादि मानते हैं अतः संख्या ज्ञान उनके मत में अनादि काल से चला आ रहा है

संख्याओं की दशमिक अंकप्रणाली :

दशमिक अंकप्रणाली से तात्पर्य १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ० की सहायता से क्रम ले दस गुने स्थानं मान का प्रयोग करके लिखी जाने वाली संख्याओं की निर्देशन पद्धति से है। इस पद्धति से बड़ी से बड़ी संख्या को जितने अच्छे ढंग से लिखा जा सकता है उतना संसार की किसी अन्य संख्या-लेखन-प्रणाली से नहीं लिखा जा सकता। अतएव इस पद्धति का संसार में आज सर्वत्र प्रचार है। इस पद्धति की मूलभूत बातें दो हैं, प्रथम शून्य की कल्पना तथा दूसरे संख्याओं के उत्तरोत्तर दस गुणित मान की कल्पना।

शून्य का आविष्कार भारत में ही हुआ यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। शून्य के आविष्कार की महत्ता के सम्बन्ध में प्रोफेसर हाल्सटीड के विचारों का पृष्ठ १२७ पर अवलोकन कीजिए।[1]

संख्या-लेखन का प्रारम्भ :

यों तो अंकलेखन के प्रथम प्रमाण अशोक के शिलालेखों में मिलते हैं किन्तु दशमिक अंकलेखन प्रणाली का संसार का सबसे पुराना पुरातत्व लेख ५९४ ई० का गुर्जर देश का लेख है। विद्वान लोग इसके आविष्कार का समय ईसवी सन् के आस-पास मानते है। वक्षाली-हस्तलिपि (तीसरी शती) में ही दशमिक अंक-प्रणाली पर ही लिखे हुए अंक मिलते हैं।

शब्दांकलेखन प्रणाली :

अंकों में लिखने के अतिरिक्त संख्यायें शब्दों और वर्णों में भी लिखी जाती थीं, जैसे ११०, ८८९। इस संख्या को 'अंकेभकर्माम्बरशंकराणाम्' इस प्रकार कहना यहाँ अंक=९, इभ=८, कर्म=८, अम्बर=०, शंकर=११। संख्याओं के द्योतक शब्दों की सूचियाँ गणिततिलक और गणितसारसंग्रह के अन्त में दी हुई हैं।

वर्णांकलेखन प्रणाली :

वर्णांकलेखन प्रणाली से तात्पर्य वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को संख्या-मान देना है। आर्यभट की वर्णांकलेखन प्रणाली अत्यन्त प्रसिद्ध है जो नीचे दी जा रही है :—

> वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गे वर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः।
> खद्विनवके स्वराः नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा॥
>
> (आर्यभटीय गीतिकापाद)

---

१. जी० बी० हाल्सटीड-आन दी फाउण्डेशन एण्ड टेकनीक आफ अर्थमेटिक शिकागो, १९१२, पृष्ठ २०।

स्वर और व्यंजनों को उन्होंने निम्नलिखित मान प्रदान किये थे :—

<table>
<tr><td>क</td><td>ख</td><td>ग</td><td>घ</td><td>ङ</td><td>च</td><td>छ</td><td>ज</td><td>झ</td><td>ञ</td><td>ट</td><td>ठ</td><td>ड</td><td>ढ</td><td>ण</td><td>त</td><td>थ</td></tr>
<tr><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>५</td><td>६</td><td>७</td><td>८</td><td>९</td><td>१०</td><td>११</td><td>१२</td><td>१३</td><td>१४</td><td>१५</td><td>१६</td><td>१७</td></tr>
<tr><td>द</td><td>ध</td><td>न</td><td>प</td><td>फ</td><td>ब</td><td>भ</td><td>म</td><td>य</td><td>र</td><td>ल</td><td>व</td><td>श</td><td>ष</td><td>स</td><td>ह</td><td></td></tr>
<tr><td>१८</td><td>१९</td><td>२०</td><td>२१</td><td>२२</td><td>२३</td><td>२४</td><td>२५</td><td>३०</td><td>४०</td><td>५०</td><td>६०</td><td>७०</td><td>८०</td><td>९०</td><td>१००</td><td></td></tr>
</table>

<table>
<tr><td>अ</td><td>इ</td><td>उ</td><td>ऋ</td><td>लृ</td><td>ए</td><td>ऐ</td><td>ओ</td><td>औ</td></tr>
<tr><td>$१०^{०}$(१)</td><td>$१०^{२}$</td><td>$१०^{४}$</td><td>$१०^{६}$</td><td>$१०^{८}$</td><td>$१०^{१०}$</td><td>$१०^{१२}$</td><td>$१०^{१४}$</td><td>$१०^{१६}$</td></tr>
</table>

इस प्रणाली से ख्युघृ $=(२+३०)\ १०^{४}+४\times१०^{६}=४३२००००$

चयगियिङुशुछ्लृ $६+३०+३\times१०^{२}+३०\times१०^{२}+५\times१०^{४}$
$+७०\times१०^{४}+७\times१०^{६}+५\times१०^{७}$
$=५७७५३३३६$

अंकानाम् वामतोगति :

संख्याओं के बोलने और लिखने का क्रम एक दूसरे से विपरीत होता है। बोलते हैं पंचदश (१५) किन्तु लिखने में पहले दस फिर पाँच लिखते हैं अर्थात् १५। संस्कृत का यही क्रम अंगरेजी में भी पाया जाता है अर्थात् वहाँ भी बोलने में सिक्सटीन और लिखने में १६ लिखते हैं। यही क्रम प्रायः अन्य भाषाओं में भी है। इसी नियम को लल्ल के व्यक्तगणित की टीका में 'अंकानाम् वामतोगतिः' कहा गया है।

शब्दांक-लेखन-प्रणाली दशमिक अंकलेखन प्रणाली से प्राचीन है। इसका उल्लेख वायुपुराण (४ थीं शती) में मिलता है। शब्दांकलेखन में संख्याओं के लिखने का जो विपरीत क्रम था वही क्रम बाद को अंक-लेखन-प्रणाली में भी आ गया।

नीचे हम संस्कृत, प्राकृत तथा हिंदी के १-१०० तक के शब्द दे रहे हैं जिनके अवलोकन-मात्र से यह पता चलेगा कि किस प्रकार हिंदी के संख्यावाचक शब्द संस्कृत भाषा से प्राकृत के माध्यम से निस्सृत हुए हैं :—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
एक	एक, एग, एक्क, एगो, एओ	एक
द्वि	दु, दोन्नि, दो, दुए, वे दुवे	दो
त्रि	तिण्णि, तिन्नि	तीन
चतुर	चत्तारि, चत्तारो, चउरो	चार
पंच	पंच	पाँच
षट्	छ	छः
सप्त	सत्त	सात

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
अष्ट	अट्ठ	आठ
नव	नअ, णअ, नव, णव	नौ
दश	दस, दह, डह, रह	दस
एकादश	ग्यारस, एआरह	ग्यारह
द्वादश	बारस, बारह	बारह
त्रयोदश	तेरस, तेरह	तेरह
चतुर्दश	चउद्दह, चौद्दस	चौदह
पंचदश	पण्णरस, पण्णरेह, पणरहो, पणारहो	पंद्रह
षोडश	सोलस, सोलह	सोलह
सप्तदश	सत्तरस, सतरह	सत्तरह
अष्टादश	अट्ठारस, अट्ठारह, अट्ठारह	अठारह
एकोनविंशति एकान्नविंशति ऊनविंशति	उनवीसइ, उनवीसा, एक्नवीसा	उन्नीस
विंशति, विंश	वीसत, वीसइ, वीस	बीस
एकविंशति	एकवीसा	इक्कीस
द्वाविंशति	बावीसं, बावीसा	बाईस
त्रयोविंशति	तेवीस, तेवीसा	तेईस
चतुर्विंशति	चउव्वीसं	चौबीस
पंचविंशति	पंचवीसा, पंचवीसं	पच्चीस
षट्विंशति	छव्वीसं	छब्बीस
सप्तविंशति	सत्तावीस, सत्तावीसा, सत्तवीस	सत्ताईस
अष्टविंशति	अट्ठावीस, अट्ठावीसा, अट्ठवीस	अट्ठाईस
ऊनत्रिंशत	ऊणवीसा, एकूणवीसा	उनतीस
त्रिंशत, त्रिंश	तीसा, तीसआ, तीसे	तीस
एकत्रिंशत्	इगितीस	इकतीस
द्वात्रिंशत्	वत्तीसा	बत्तीस
त्रयस्त्रिंशत्	तेत्तीस	तेतीस
चतुस्त्रिंशत्	चउत्तीस	चौंतीस
पंचत्रिंशद्	पन्नतीसं, पणतीसं	पैंतीस
षट्त्रिंशत्	—	छत्तीस
सप्तत्रिंशत्	सत्ततीसं	सैंतीस
अष्टत्रिंशत्	अट्ठतीसा	अड़तीस

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
ऊनचत्वारिंशत् (ऊनचत्वारिंश)		उन्तालीस
चत्वारिंशत् (चत्वारिंश)	चत्तालीसा	चालीस
एकचत्वारिंशत्	एक्चत्तालीसा	इकतालीस
द्विचत्वारिंशत (द्वाचत्वालिंश)	वायालीसं	ब्यालीस
त्रिचत्वारिंशत्	तेग्रालीसा	तेतालीस
चतुश्चत्वारिंशत्	चत्ताले, चोवालीसा	चवालीस
पंचचत्वारिंशत्	पन्नचत्तालीसा	पैंतालीस
षट्चत्वारिंशत्	छच्चत्तालीसा	छयालीस
सप्त चत्वारिंशत्	सतअत्तालीसं	सैंतालीस
अष्टचत्वारिंशत	अड्याले, अट्ठअत्तालीस	अड़तालीस
ऊनपंचाशत (ऊनपंचाश)	ऊणपंचासा, ऊणपंचासा, उनपचासं (गढ़वाल), एकूनपण	उनन्चास
पंचाशत् (पंचाश)	पंचासा, पणासा, पन्ना	पचास
एकपंचाशत	एवपंचाशत, एक्कावन्नम्	इक्कयावन
द्विपंचाशत	वावणं	वावन
त्रिपंचाशत्	त्रिप्पण, तेवण	तिरेपन
चतु:पंचाशत्	चउप्पण	चौअन
पंचपञ्चाशत्	पंचावण	पचपन
षट्पंचाशत	छप्पण, छप्पन्न	छप्पन
सप्तपंचाशत	सत्तावणं	सत्तावन
अष्टपंचाशत	अट्ठवणं	अट्ठावन
ऊनषष्टि	सट्ठी, सठ्ठी	उन्सठ
षष्टि	सट्ठि, सठ्ठी	साठ
·एकषष्टि	इगसट्ठि, इगत्थिं	इकसठ
द्वाषष्टि	वासट्ठि	वासठ
त्रिषष्टि	तेसट्ठि	तिरेसठ
चतु:षष्टि	चउसट्ठि	चौंसठ
पंचषष्टि	पणसट्ठि	पैंसठ
षट्षष्टि	छवट्ठि	छ्यासट
सप्तषष्टि	सतसट्ठी,	सड़सठ

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
अष्टषष्टि	अट्ठसट्ठी, अठ्ठट्ठ	अड़सठ
ऊनसप्ति	एगुणसत्तरिं, अउणत्तरिं	उनत्तर
सप्ति	सत्तरि, सयरि, सत्तरस	सत्तर
एकसप्तति	इक्कसत्तरि	इकत्तर
द्विसप्तति	विहत्तरीय	बहत्तर
त्रिसप्तति	तेवत्तरि	तिहत्तर
चतुःसप्तति	चौहत्तरि	चौहत्तर
पंचसप्तति	पंचहत्तरि	पचत्तर
षट्सप्तति	छवत्तरि	छअत्तर
सप्तसप्तति	सत्तहत्तरि	सतत्तर
अष्टसप्तति	अट्ठहत्तरि	अठत्तर
ऊनाशीति	उनासी	उनासी
अशीति	असीइं	अस्सी
एकाशीति	एकासी	इक्कयासी
द्वयशीति	वासीइं	ब्यासी
त्र्यशीति	तेसीइ	तिरासी
चतुरशीति	चउरसीति, चौरासीए, चउरासीइं	चौरासी
पंचाशीति	पंचासीइं	पचासी
षडशीति	छळसीइं	छ्यासी
सप्ताशीति	सत्तासीइं	सतासी
अष्टाशीति	अट्ठासि	अठासी
नवाशीति, ऊननवति	उनानवे (पं०) एगुणणउति, एगुणणउइं	नवासी
नवति	नव्वए	नव्वे
एकनवति	इक्कारोइम्	इक्यानवे
द्विनवति	वाणउई	बानवे
त्रिनवति	तिणोइं	तिरानवे
चतुर्नवति	उणउदी, चौणउइं	चौरानवे
पंचनवति	पंचणउइं	पचानवे
षण्णवति	छण्णउदि, छण्णाउइं	छ्यानवे
सप्तनवति	सत्तानउए	सतानवे
अष्टनवति	अट्ठाणउइं	अठानवे
नवनवति	नवणउए, णवणउइ (नढ़ेनवे पंजाबी)	निन्यानवे

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
शत	सय, सत, सआ, सअं	सौ
पंचोत्तर शत	पंचोत्तारसउ	एक सौ पाँच
सहस्र	सहस्स	हजार
अयुत (दशसहस्र)		दस हजार
लक्ष (नियुत)	लक्ख	लाख
दशलक्ष (प्रयुत)	—	दस लाख
कोटि	कोडि	करोड़
अर्बुद (दशकोटि)		दस करोड़
खर्व		खरब
निखर्व		दस खरब
नील		नील
दशनील		दसनील
पद्म	पदुम	पदम
दश पद्म (महापद्म)		दसपदम
शंख		संख
दशशंख		दससंख
महाशंख		महासंख
अर्ध	श्रद्ध	आधा
पादोन		पौना
अध्यर्ध		ड्यौढ़ा
शून्य	सुगुण, सुण्य, सुण्ण	शून्य
षड्मास	छम्मास	छमाही

'एक' संस्कृत का तत्सम शब्द है। कितने ग्राश्चर्य की बात है कि सबसे प्राचीन संख्या होने पर भी यह अभी तक अविकृत रूप में है। दो संस्कृत द्वौ से, तीन संस्कृत त्रीणि से तथा चार संस्कृत चत्वार: से बने हैं। संस्कृत के कर्त्ताकारक के रूप ही हिन्दी में प्रचलित हुए। जैसे:—

माता, पिता न कि मातृ, पितृ। इसी प्रकार उपरोक्त शब्द संस्कृत शब्दों के कर्त्ताकारक के रूपों के अपभ्रंश हैं। संस्कृत पंच से पाँच आसानी से समझ में आ जाता है। समासयुक्त हिन्दी शब्दों में पंच का भी प्रयोग होता है जैसे पंचमेल मिठाई। हिन्दी का छ: शब्द संस्कृत षष् से बना है। प्राकृत में "पट्शावक सप्त-

दर्णानां छः" इस सूत्र से प्रथम ष का छ हो गया। षष् से इस प्रकार छष् तथा छष् से छः हो गया। जैसे धनुष् शब्द का कर्ताकारक एकवचन में धनुः हो जाता है। सात संस्कृत सप्त का तद्भव है अर्थात् सप्त से प्राकृत में सत्त तथा सत्त से सात हो गया वैसे सत्तरह और सत्ताईस सतानवे आदि में प्राकृत सत अब भी पाया जाता है। आठ भी संस्कृत अष्ट का तद्भव है। अष्ट से प्राकृत में अट्ठ और अट्ठ से हिन्दी में आठ हो गया। अब भी मेरठ के आसपास के क्षेत्र में अन्त्य अक्षर को द्वित्व करके बोलते हैं जैसे लोटा को लोट्टा किन्तु हिन्दी खड़ी बोली ने देहली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिन शहरी क्षेत्रों में जन्म लिया वहाँ द्वित्व की प्रकृति नहीं थी। नव से नौ बना। अव तथा औ का पारस्परिक परिवर्तन होता ही रहता है जैसे लवण से लौन एवं प्राकृत गवन से गौन।[1] दश का प्राकृत रूप दस हिन्दी में भी यथावत् चल रहा है। दश के अन्य प्राकृत रूप दह, लह तथा रह भी हिन्दी के बारह, सोलह तथा दहाई में अब भी सुरक्षित हैं। एकादश से एगादस पुनः ग्यारस तदनु ग्यारह बन गया। श का ह, र का ल तथा 'संख्यायांच' इस सूत्र से द का र हो गया। तिथियों के नामों में अब भी लखनऊ आदि कई नगरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में ग्यारस, बारस तथा तेरस कहते हैं। शिव त्रयोदशी का शिवतेरस रूप प्रायः अब भी सर्वत्र प्रचलित है। दैनिक बोलचाल में तिथिसूचक एकारान्त तथा गिनती सूचक हकारान्त रहे जिससे दोनों भावों को समझने में कठिनाई न पड़े। द्वादश में "दशादिषु हः" इस सूत्र से श का ह हो गया एवं "कादीनामष्टानां क ग ड त द प यसाम्" सूत्र से संयुक्ताक्षर द्व के व का लोप हो जाता है। इस प्रकार ग्यारह से अठारह तक के सब शब्दों की व्युत्पत्ति सुगम हो जाती है। उन्नीस के विषय में यह मान्यता है कि वैदिक संस्कृत में मूल शब्द एकान्नविंशति था जिसका शब्दार्थ एक से कम बीस था। एकान्नविंशति से सूत्रकाल में एकोनविंशति तथा उससे एक का लोप होकर ऊनविंशति बन गया। इस प्रकार एक नवीन शब्द ऊन की उत्पत्ति हुई जो कम के अर्थ में समझा जाने लगा। विंशति के स्थान पर विंश शब्द भी संस्कृत में प्रचलित था। इस प्रकार ऊनविंश से प्राकृत में ऊनवीसा तथा हिन्दी में उन्नीस हो गया। प्राकृत का अन्य रूप ऊनवीसइ, ऊनविंशति का स्मारक है। प्राकृत में एकोनविंशति से एकूनवीसा रूप भी बना जिसका बिगड़ा रूप एकोनवीस अब भी प्रादेशिक भाषाओं में चल रहा है। उन्नीस की भाँति ही उनतीस, उनतालीस आदि शब्द बने। दस की गुणज संख्याओं बीस, तीस, आदि में बोलना साधारण जनता को सुगम रहता है अतएव ग्रामीण जनता उन्नीस उनतीस आदि के लिए एक कम बीस, एक कम तीस ही बोलती है। अतएव

---

[1]. देखत सुदामै धाय पौरजन गहे पाय कृपा करि कहो विप्र कहाँ कीन्हों गौन है। धीरज अधीर के हरन पर पीर के बताओ बलबीर के धाम यहाँ कौन है।

(सुदामाचरित से)

दशमिक क्रम की नवीं संख्या को बहुधा दशवीं संख्या से ऊन शब्द द्वारा सम्बन्धित कर लिया गया है। इसके अपवाद नवासी और निन्यानवे हैं जो अगली संख्या से सम्बन्धित नहीं है। संस्कृत में ही ८९ के लिए दो शब्द थे—नवाशीति तथा ऊननवति। उन दोनों के अपभ्रंश नवासी और उनानवे (पंजाबी) अब भी चल रहे हैं। वास्तव में अगली संख्या से सम्बन्धित न करके बोलने की भी प्रणाली संस्कृत में प्रचलित थी। उन्नीस को तैत्तिरीय संहिता (१४।२२।३०) तथा वाजसनेयिसंहिता (१४।२३) में नवदश एवं उनतीस के लिए वाजसनेयि संहिता (१४·३१) में नवविंशति शब्द का प्रयोग किया गया है। निन्यानवे संस्कृत नवनवति से बना है। नवति से नव्वे बना। नव का निन हो गया जो एक विचित्र परिवर्तन है। कुछ संख्याओं में संस्कृत से बहुत कम रूपान्तर हुआ है, जैसे पंचाश से पचास। दश से दह तथा उससे दहाई संज्ञा बनी। जिस प्रकार एक से इकाई (एकाई) बना।

सैकड़ा :

सैंकड़े के विषय में कुछ लोगों का मत है कि यह शत्कांड शब्द से बना है। शतकांड एक प्रकार का बांस होता है जिसमें सौ जोड़ होते हैं। स्व० सुधाकर द्विवेदी जी ने भी गणित के इतिहास में लिखा है कि चूंकि सौ के स्थान पर शतपर्वा नामक घास रख देते थे अतएव उस संख्या का नाम सौ पड़ा। मेरे विचार में यह व्युत्पत्ति भाषा-शास्त्र की दृष्टि से ठीक नहीं है। प्रथम तो शत शब्द स्वयं अत्यन्त प्राचीन है। यह ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में ही आया है। अतः शतकांड अथवा शतपर्वा से बाद का यह शब्द है यही सन्दिग्ध हो गया। द्वितीय शत शब्द स्वयं इतना प्राचीन है कि यह एक भारोपीय शब्द है। योरोपीय की अन्य भाषाओं में इससे मिलते-जुलते शब्द कन्त, सैंट आदि पाये जाते हैं। मूल शब्द दकान्त था जिसका अर्थ था दस से सम्बन्धित। द का लोप होकर कान्त अथवा कन्त आदि शब्द बने। दकान्त से मिलता हुआ संस्कृत का दशति शब्द है जो महाभारत तथा पुराणों में आया है। दशति का होना स्वाभाविक भी है क्योंकि जब पङ्क्ति (१०), विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्······सप्तति, अशीति, नवति शब्द हैं तो इस माला की पूर्ति के लिए दशति शब्द अवश्य होगा। इसी दशति से भारोपीय भाषा के समान द का लोप होकर शति, शती तथा शत शब्द भी बने। क का फ्रेंच में स हो जाता है अतः वहाँ कन्त के बजाय सैंट शब्द बना। अंगरेजी में क का ह हो गया अतः हंड तथा हंड से हंड्रेड शब्द भी इसी परिवार का सदस्य है। दशति का द पूर्व वैदिक काल में ही उड़ गया था अतः वैदिक साहित्य में शत एवं शति का अधिक प्रयोग है किन्तु दशति का भी परवर्ती साहित्य में यदा-कदा प्रयोग मिलता है। सामवेद में दशति दस मन्त्रों के समूह के अर्थ में आया है। इस प्रकार शतक से सैक तथा सैक से स्वार्थ में हिन्दी का ड़ा प्रत्यय लगकर सैकड़ा बना।

सहस्र :

सहस्र शब्द की व्युत्पत्ति सह धातु से करते हैं। सह धातु का अर्थ है शक्तिमान् होना। सह से सहस् संज्ञा बनी, ऋग्वेद में जिसका अर्थ शक्ति था। सहस् शब्द से स्वार्थ में र प्रत्यय लगकर सहस्र शब्द बना जैसे कम्र और नम्र। अतएव सहस्र का शब्दार्थ 'शक्तिमान' है। आधुनिक भाषावैज्ञानिक अंगरेजी शब्द थाउजेंड की व्युत्पत्ति "सहे-स्लो-कन्तो" से करते हैं जिसका अर्थ है शक्तिमान्। वास्तव में सौ से सहस्र अधिक शक्तिमान् है। गणितीय भाषा में सौ दस की द्वितीय शक्ति है तथा सहस्र तृतीय शक्ति है अतएव यों भी सहस्र सौ से अधिक शक्तिमान् है। लौकिक दृष्टि से भी १००० रुपये अथवा जन वाला १०० रुपये अथवा जन वाले से अधिक शक्तिमान् होता है। परम हर्ष का विषय है यास्क ने भी "सहस्रं सहस्वत्" कहकर इस व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में उपरोक्त मत ही प्रतिपादित किया है। सहस्र का समतुल्य फारसी का हजार शब्द है जिसको हिन्दी ने अपना लिया।

लक्ष तथा लाख :

हिन्दी लाख शब्द संस्कृत लक्ष से बना है। किन्तु संस्कृत में भी संख्यावाचक अर्थ में यह पाली से आया है। वैदिक संस्कृत में लाख के लिये नियुत शब्द आया है। अमरकोष में लक्ष अर्थात् लक्ष को नियुत का पर्याय माना है। देखिए :—'कोट्या: शतादि: संख्यान्या वा लक्षा नियुत च तत्।' जान पड़ता है कि जनसाधारण को वैदिक शब्द अयुत, नियुत, प्रयुत कुछ एक जैसे लगने के कारण कठिन जान पड़े और इसी लिये उन्होंने बौद्धों द्वारा प्रयुक्त दस सहस्स, लक्ख और दसलक्ख शब्द अपना लिये। वास्तव में किसी को भी यह स्मरण रखना कठिन है कि नियुत बड़ा है अथवा प्रयुत। तांड्यब्राह्मण (१७।१४।२) में ही नियुत के लिए प्रयुत और प्रयुत के लिए नियुत शब्द प्रयुक्त कर दिये।

आजकल के संख्यावाचक मूलशब्द हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब, नील, पद्म और शंख हैं जो क्रम से एक-दूसरे के सौ गुने हैं। दस हजार दस लाख आदि शब्द उन्हीं से विनिर्गत है। हिन्दी की यह मूल संख्यावाचक शब्दावली बौद्धों की शतगुणोत्तर संख्यानामावली की स्मारक है। ललित-विस्तर नामक बौद्ध ग्रन्थ (१०० ई० पू०) में गणितज्ञ अर्जुन और बोधिसत्व के संवाद में निम्न संख्याएँ आई हैं :—

१०० सहस्र	=	१ लक्ष
१०० लक्ष	=	१ कोटि
१०० कोटि	=	१ अयुत
१०० अयुत	=	१ नियुत

एक तो अयुत तथा नियुत शब्द वैसे ही उच्चारण साम्य के कारण कठिन थे, उपरोक्त सूची ने तो उनके मान भी कहीं से कहीं कर दिये इन कारणों से अयुत, नियुत आदि शब्द एकदम अप्रचलित हो गये।

लाख की व्युत्पत्ति :

लाख शब्द लक्ष का अपभ्रंश है। जैसे रक्ष से राख, कक्ष से काँख एवं पक्ष से पाख, उसी प्रकार लक्ष से लाख बना। सम्भव है लक्ष संख्या कभी गिनती क्रम में अन्तिम रही हो। अतएव कोटि की भाँति उसे लक्ष (लक्ष्य) शब्द से बांधित किया गया हो।

प्रथम प्रयोग :

लाख (लख) शब्द का प्रथम प्रयोग चर्यापिटक में १०० कोटि वर्ष के अर्थ में हुआ, पुन: दाथावंस में वर्तमान अर्थ में प्रयुक्त हुआ।

परवर्ती प्रयोग :

संस्कृत साहित्य में याज्ञवल्क्य स्मृति, हरिवंश पुराण तथा ब्रह्मांड पुराण में लक्ष शब्द आया है। गणितीय पुस्तकों में इसका प्रयोग सर्वप्रथम महावीर एवं श्रीधर ने किया। सम्भव है आर्यभट्ट तथा ब्रह्मगुप्त ने वैदिक शब्द होने के नाते नियुत, प्रयुत शब्दों का ही प्रयोग करना उचित समझा तथा लक्ष को अवैदिक एवं असंस्कृत साहित्य का होने के नाते ग्रहण न किया। इसी कारण जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ने ही सम्भवतः इसका प्रचार किया। वैदिक साहित्य में लक्ष का अर्थ था जुए में लगाया हुआ धन।

कोटि अथवा करोड़ :

कोटि शब्द कुट कौटिल्ये धातु से इ प्रत्यय लगा कर बना है। इसका शब्दार्थ है जो कुछ कुटिल किया जाय। धनुष के अग्र भाग को अतएव कोटि कहते हैं। जिस प्रकार कोटि धनुष का सिरा है उसी प्रकार करोड़ भी कभी संख्याओं में अन्तिम सिरे की संख्या समझी जाती थी अत: उसे भी कोटि शब्द से व्यक्त किया गया। इसी कोटि से प्राकृत में कोडि बना। तदुपरान्त इसमें निरर्थक र प्रत्यय घुस गया और उसने इसे क्रोडि बना दिया। शाप का भी इसी प्रकार श्राप शब्द बना। क्रोडि से पुन: कोडि, करोड़ि, करोरि, करोर एवं करोड़ शब्द बने। अब भी करोड़ीमल नाम को क्रोड़ीमल बोल देते हैं। बिहारी ने "खाये खर्चे जो बचे तो जोरिए करोरि" इस पंक्ति में करोरि शब्द का प्रयोग किया है।

वैदिक साहित्य में कोटि के लिए अर्बुद कहते थे। करोड़ के अर्थ में कोटि शब्द सम्भवत: बौद्ध साहित्य से आया। जातक और कुल्लनिद्देस में कोटि शब्द

प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि रामायण, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में इसका प्रयोग हुआ है। वानरों की संख्या बताते हुए लिखा है :—

शतैः शतसहस्रैश्च वर्तन्ते कोटिभिस्तथा
अयुतैश्चावृता वीर शङ्कुभिश्च परंतप।

इसमें कोटि शब्द का प्रयोग है किन्तु लक्ष का नहीं। इसी प्रकार आर्यभटीय में भी लक्ष का प्रयोग नहीं है देखिए :—

एकं दश च शतं सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम्।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात्स्थानं, दशगुणंस्यात्॥

उपरोक्त अवतरणों से यह प्रतीत होता है कि लक्ष शब्द कोटि के बहुत बाद संस्कृत में आया।

अरब :

यह शब्द वैदिक अर्बुद शब्द का अपभ्रंश है। अर्बुद से अर्ब तथा अर्ब से अरब बना। अर्बुद का अर्थ था बादल। उस समय यह करोड़ का वाचक था किन्तु जब करोड़ के लिए बौद्ध काल में कोटि शब्द प्रचलित हो गया तब अर्बुद अरब के लिये चलने लगा। आर्यभट्ट ने दश करोड़ के अर्थ में तथा महावीर ने दस अरब के अर्थ में अर्बुद शब्द प्रयुक्त किया था। बौद्ध काल से सरलता की दृष्टि से पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हुए हजार, लाख आदि के पहले दश शब्द लगाकर दस हजार, दस लाख आदि शब्द प्रचलित हो गये। अर्बुद जो दस करोड़ का वाचक था एक अरब का वाचक बन गया।

खरब, नील, पदम तथा शंख :

अमर कोष में कुबेर की नवनिधियों के निम्नलिखित नाम दिये हैं :—

महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकर कच्छपौ
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव।

इसमें खर्व, नील, पद्म और शंख शब्द आये हैं। सम्भव है कि कुबेर की निधि समझकर किसी बौद्ध विद्वान ने इनको संख्या स्थानों के लिए प्रयुक्त कर दिया हो। अभिधानप्प दीपिका नामक पाली व्याकरण में कुमुद पुंडरीक तथा पद्म का उल्लेख है। खर्व का अर्थ छोटा कमल तथा नील का अर्थ नील कमल है। कमलार्थवाची शब्दों का संख्यावाचक शब्दों के लिये जैन साहित्य में बाहुल्य रूप से प्रयोग हुआ है। सूर्य-प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (सूत्र १८) अनुयोगद्वार (सूत्र १३७) स्थानांग सूत्र (२।४, ९५) तथा जीव समास (५।११३-११५) में उप्पल (उत्पल), पउम (पद्म) नलिन आदि शब्दों का उल्लेख है।

वाल्मीकि रामायण के निम्न श्लोक में भी उक्त संज्ञाओं का प्रयोग है। देखिये :—

ततः पद्मसहस्रेण वृतः शंखशतेन च ।
युवाराजोऽगदः प्राप्तः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।

यदि उपरोक्त श्लोक वाल्मीकि रामायण का मूल काल का श्लोक है तब तो पद्म शब्द संस्कृत का अपना निजी शब्द है अन्यथा पदम तथा खर्व और नील यह सब जैन साहित्य से संस्कृत में आये हैं।

शंख :

यह वाल्मीकि रामायण, ब्रह्मांड-पुराण तथा महाभारत में प्रयुक्त हुआ है। श्रीधर तथा भास्कर ने संख्यावाचक शंकु शब्द का भी प्रयोग किया है। गणितज्ञों में सर्वप्रथम महावीराचार्य ने शंख तथा महाशंख शब्दों का प्रयोग किया। यदि देखा जाये तो वर्तमान उच्च संख्याओं के शब्द महावीराचार्य (८२० ई०) की शब्दावली पर आधारित प्रतीत होते हैं, यद्यपि उनमें कुछ अर्थ-परिवर्तन अवश्य हुआ है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत सदैव संगठित रहा है तथा उत्तर-दक्षिण एवं धर्मगत उसमें कभी भेदभाव नहीं रहा। इस तथ्य का यह एक ज्वलन्त प्रमाण है। नीचे हम महावीराचार्य[1] की गणितसारसंग्रह से कुछ उद्धरण दे रहे हैं :—

एकं तु प्रथमं स्थानं द्वितीयं दशसंज्ञिकम् ।
तृतीयं शतमित्याहुः चतुर्थं तु सहस्रकम् ।।
पंचमं दशसहस्रं पष्ठं स्याल्लक्षमेव च ।
सप्तमं दशलक्षं तु अष्टमं कोटिरुच्यते ।।
नवमं दशकोट्यस्तु दशमे शतकोटयः ।
अर्बुदं रुद्रसंयुक्तं न्यर्बुदं द्वादशं भवेत् ।।
खर्वं त्रयोदशस्थानं महाखर्वं चतुर्दशम् ।
पद्मं पंचदशं चैव महापद्मं तु षोडशम् ।।
क्षोणी सप्तदशं चैव महाक्षोणी दशाष्टकम् ।
शंखं नवदशस्थानं महाशंखं तु विंशकम् ।।

उच्च संख्यावाचक वैदिक शब्द समुद्र, मध्य, अन्त तथा परार्ध भास्कर द्वितीय (१३वीं शती) तथा कुछ परवर्ती काल तक हिन्दू-गणित के लेखकों तक प्रचलित रहे, किन्तु अन्त में वे समुद्र अथवा पानी की ही अन्य वस्तुओं खर्व (छोटा कमल) नील (नीलकमल) पद्म और शंख द्वारा प्रतिस्थापित कर दिये गए।

---

१. महावीराचार्य दक्षिण भारत के एक जै

प्रकरण ६. योग, संकलन, जोड़

योग :

योग शब्द युजिर् धातु से घञ् प्रत्यय लगा कर बना है। युजिर् का अर्थ है योग करना। योग शब्द ऋग्वेद में सबसे पहिले घोड़े आदि के जुवा लगाने के अर्थ आता था, वैदिक 'युग' को आजकल जुआ कहते हैं, जो बैलों को हल में जोतने के समय लगाया जाता है। गाड़ी के युग को अब जुअर कहते हैं। जुअर में बैलों को युक्त (जोड़ा) किया जाता है। कात्यायन शुल्व-सूत्र की निम्न पंक्ति में योग शब्द आया है।

"नारत्निवितस्तीना ४ समासोविद्यते संख्यायोगादिति श्रुतिः" अर्थात् अरत्नियों (मान विशेष) और वितस्तियों का यों ही समास अर्थात् (पुरुष मान विशेष में) योग नहीं हो सकता जब तक अरत्नि और वितस्ति शब्द के पहिले वे कितनी हैं इसको सूचित करने वाला कोई चतुर्दश आदि शब्द न जुड़ा हो। यहाँ भी योग का अर्थ जुड़ना ही है। किन्तु समास[1] शब्द जोड़ के अर्थ में आया है। समास के अतिरिक्त अभ्यास शब्द भी पुनःकरण अथवा दोहराने के अर्थ में प्रयुक्त होते २ योग और गुणा के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। अभ्यास का मौलिक अर्थ दोहराना (Reduplication, Repetition) ही है। एक बार दोहराने से चीज दुगुनी तथा दो बार दोहराने से तिगुनी एवं तीन बार से चौगुनी होती है। जैसे ५ का अभ्यास करने से १०, दो बार अभ्यास करने से १५ तथा तीन बार से २० आता है। उपरोक्त अर्थ में अभ्यस्त शब्द आपस्तंब के निम्न सूत्र में प्रयुक्त हुआ है।

"त्रिकचतुष्कयोः पंचिकाऽक्ष्णयारज्जुः। ताभिस्त्रिरभ्यस्ताभिरंसौ। चतुरभ्यस्ताभिश्श्रोणी॥ (आपस्तंब, पृ० ७६)।

अर्थात् कोटि और भुजा क्रमशः ३ एवं ४ हों तो कर्ण ५ होता है। इनको तीन बार अभ्यास करने से १२, १६, २० प्राप्त होते हैं। इनसे अंश मापन करें तथा ४ बार अभ्यास करके १५, २०, २५ प्राप्त होते हैं, इनसे श्रोणी मापन करें। यदि उपरोक्त भाषा में किंचिन्मात्र परिवर्तन कर दें तो अभ्यास शब्द दोहराने अर्थ के बजाय गुणा का अर्थ दे निकलेगा, अर्थात् केवल ३ अभ्यास ३=१२ इसके स्थान पर ३ अभ्यास ४=१२ यह कहा जाये। कात्यायन के निम्न सूत्र में अभ्यास शब्द 'दोहराने' अर्थात् द्विगुणित करने के अर्थ में आया है।

---

१. समास शब्द त्रिशतिका में भी इसी अर्थ में आया है। यथा :—"रूपादि-चयपदसमासो वा" महावीर ने भी ग०सा०सं० के पृ० १४ में इसका प्रयोग किया था।

अभ्यास:

"प्रमाणमभ्यस्याभ्यासचतुर्थे लक्षणं करोति तन्निरंछनम् ।।

(का०, पृष्ठ ५)

अर्थात् रज्जुमान को द्विगुणित करके चतुर्थ भाग में चिह्न करे।

आपस्तंब के निम्न सूत्र में अभ्यास शब्द जोड़ने के अर्थ में आया है :—

"पृष्ठ्यान्तयोर्मध्ये च शंकुं निहत्यार्धेऽर्धे तद्विशेषमभ्यस्य लक्षणं कृत्वार्धभाग-मर्येत् ।"

अर्थात् पृष्ठ्या (वेदी) के दोनों छोरों पर शंकु गाड़कर रज्जु के अर्ध भाग में रज्जु के विशेष को जोड़कर चिह्नित करे और पुनः अर्धभाग को आगमित करे। वेदांग-ज्योतिष के निम्न श्लोक में अभ्यस्त शब्द गुणित के अर्थ में आया है।

निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम् ।

षष्ठ्या षष्ठ्या युतं द्वाभ्याम् पर्वणां राशिरुच्यते ।।

अर्थात् सौर वर्ष संख्या में से १ घटा कर १२ से गुणा करे। फिर गत सौर मासों की संख्या उसमें जोड़े। योगफल को २ से गुणा करे, इस प्रकार सौर पर्व प्राप्त होते हैं। सौर ६० पर्व ६२ चान्द्रपर्वों के बराबर होते हैं।

$$(४\text{-}१)\times१२\times२+१\div(२\times६२)=\frac{३\times२४+१}{१२४}=\frac{७३}{१२४}$$

वज्राभ्यास शब्द में अभ्यास अब भी गुणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। उपरोक्त श्लोक से प्रतीत होगा कि अभ्यास शब्द अब योग से आगे बढ़कर 'गुणा' के अर्थ में पहुँच गया और योग के अर्थ में युति और संयुति शब्द आ गये। वेदांग-ज्योतिष में योग के अर्थ में 'आवाप' शब्द भी आया है। देखिए :—

"आवापस्त्वयुजि" अर्थात् यदि विषम हो तो योग करे।

प्रथम प्रयोग :

योग शब्द का जोड़ के अर्थ में प्रथम प्रयोग महाभारत तथा बक्षाली-पाण्डु-लिपि (भाग ३, पृ० १६१) में आया है। बक्षाली-पांडुलिपि में युति शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। आर्यभट्ट ने योग, युति, संयुति शब्द प्रयुक्त किये हैं। बक्षाली-पाण्डुलिपि में अभ्यास, योग के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ। किन्तु वहाँ उस का परवर्ती अर्थ गुणा ही है। एक दूसरा संकलित शब्द बक्षाली-पाण्डुलिपि में प्रयुक्त होने लगा जो १०वीं शताब्दी तक इस अर्थ में सबसे अधिक प्रचलित रहा।

संकलित अथवा संकलन :

संकलित शब्द भारत तक ही सीमित न रहा वरन् यह अरब तक भी पहुँच

गया। अलबरूनी ने 'फी संकलित-इल-अदद-जैनिस्फ' पुस्तक लिखी। जिसमें संकलित शब्द का प्रयोग किया। ब्रह्मगुप्त ने गणित की २० क्रियाओं को संकलितादि परिकर्म शब्द से व्यक्त किया। यथा :—

परिकर्म-विंशति य: संकलिताद्यां पृथग्विजानाति।
अष्टौ व व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणक: स:॥

संकलित या संकलन शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कल संख्याने धातु से बना है। इसका अर्थ है सम् अर्थात् एक-साथ कलन अर्थात् गणन, अर्थात् संख्याओं को एक साथ करना अथवा जोड़ना।

संकलित शब्द का अर्थ श्रेणीयोग भी है। महावीर तथा श्रीधर ने गणितसार-संग्रह एवं पाटीगणित में इसी अर्थ में इसको अधिक प्रयुक्त किया है। देखिये पाटीगणित में श्रीधर का प्रयोग :—

"सैकपदाहतपददलमेकादिचयेन भवतिसंकलितं।"

अर्थात् $१+२+३+ \cdots \frac{प(प+१)}{२}$

संकलितैक्य अथवा संकलित शब्द से कई एक जोड़ों के जोड़ का अर्थ समझा जाता था जैसे १ से ५ तक का संकलितैक्य $१+(१+२)+(१+२+३)+(१+२+३+४)+(१+२+३+४+५)$।

योग शब्द भी संकलित के साथ-साथ चलता रहा। देखिए ब्रह्मगुप्त का योग शब्द का प्रयोग :—

"योगोऽन्तरयुतहीनो द्विहृत: संक्रमणमंतरविभक्तं वा"

अर्थात् $क+ख=५$ यहाँ $क=\frac{(क+ख)+(क-ख)}{२}$
$क-ख=१$

$$ख=\frac{(क+ख)-(क-ख)}{२}$$

जोड़ना :

जोड़ना शब्द जुड धातु से बना है जिसका अर्थ है बांधना। प्राकृत भाषा में संभवत: 'युज' का 'जुड' रूप हो गया। अत: योजन का जोडन बन गया। योजन का भी अर्थ था जोड़ना। युग को जुआ तथा गाड़ी में बैलों के योजन को जोड़ना या जोरना अब भी कहते हैं। जोड़ने से जोड़ संज्ञा बनी।

पर्याय :

जोड़ने के निम्नलिखित पर्याय हैं :—

अभ्यास, एकीकरण, संकलन, संकलित, मिश्रण, सम्मेलन, सम्मिलन,

सम्मीलन, मिलन, प्रक्षेपण, संयोजन, युक्ति, योजन, योजना, युति, समास। इनमें से मीलन, सम्मीलन गणिततिलक के पृष्ठ ३ पर; संयोजन, योजन पृष्ठ १५ पर; योजना पृष्ठ ८ पर आये हैं। संकलन शब्द भास्कर ने प्रयुक्त किया है, यथा :—
घनर्णसंकलने करणसूत्रं वृत्तार्धम्।

परिभाषा :

आर्यभट्ट द्वितीय ने संकलित की निम्नलिखित परिभाषा की है। 'संख्यावतां बहूनामेकीकरणं तदेव संकलितम्' अर्थात् अनेक संख्याओं का एकीकरण ही जोड़ है। जोड़ में अनेक संख्याओं को मिलाकर एक ही संख्या बन जाती है। श्रीधरकृत पाटीगणित की टीका में कहा है 'घनं योगः चय एकीकरणमिति संकलितम' अर्थात् घन करना, योग करना, चय करना तथा एकीकरण का नाम संकलित है। भास्कर द्वितीय ने भी कहा है :—

"कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथवांकयोगो यथास्थानकमन्तरं वा"

अर्थात् स्थानों के अंकों को इकाई की ओर से जोड़ने से अथवा सर्वोच्च स्थान के अंक की ओर से जोड़ने को क्रम से क्रमांकयोग तथा उत्क्रमांकयोग कहते हैं। इसी प्रकार अंतर भी समझिए।

प्रकरण ७. घटाना, व्यवकलन

घटाना :

घटाना घट् धातु के णिजन्त रूप घाटयति से बना है। घाटयति का अर्थ हानि पहुँचाना है। इसी से हिन्दी शब्द 'घाटा' बना जिसका अर्थ है 'हानि'। हानि का अर्थ कमी है इसी घाटे शब्द से हिंदी शब्द घटाना बना है। संस्कृत में णिजत में 'आ' पहिले तथा हिन्दी में बाद के किसी अक्षर में लगता है जैसे पातन (सं०), गिराना (हिन्दी)। अतएव घाटन का अर्थ कम होना हो गया। शुल्व काल में घटाने के लिए निर्ह्रास शब्द चलता था। वेदांग-ज्योतिष में इसके लिए शोधन शब्द प्रचलित हुआ। देखिए :—

"प्रमाणे भाव्यं प्रमाणं निर्ह्रासविवृद्ध्योः" (का०शु०सू०)

निर्ह्रास का अर्थ यहां ह्रास तथा विवृद्धि का अर्थ वृद्धि है।

शोधन :

अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेत् द्विगुणांतिथिम्।
तेषुमण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः॥

यहाँ शोधयेत् का अर्थ 'घटाये' है। वक्षाली-पाण्डुलिपि में घटाने को वियोग शब्द भी मिलता है। आर्यभट ने इस अर्थ में शोधन, क्षय, हानि, अपचय शब्दों का प्रयोग किया है। ब्रह्मगुप्त ने व्यवकलित और शोधन शब्दों का मुख्यरूप से प्रयोग किया। यथा :—

अव्यक्तवर्गघनवर्गवर्गपंचगत षड्गतादीनाम्।
तुल्यानां संकलितव्यवकलिते पृथगतुल्यानाम्॥

(ब्रा० स्फु० सि० १८।४१)

अर्थात् वर्ग, धन, वर्गवर्ग, पंचगत, षड्गत् आदि तुल्यघात वाली अव्यक्त राशियों का संकलित एवं व्यवकलित करते हैं तथा विषमघात राशियों को पृथक् रखते हैं।

व्यवकलित, व्यवकलन :

व्यवकलित शब्द वि+अव्+कल (संख्याने) धातु से कर्त्ताकारक के अर्थ में 'नपुसकेभावेक्त:' सूत्र से 'क्त' प्रत्यय लगकर बना है। जिस प्रकार गान और गीत दोनों भावार्थक शब्द हैं वैसे ही व्यवकलन और व्यवकलित भावार्थक शब्द हैं। अर्थात् दोनों का अर्थ है 'घटाना'। घटाना जोड़ने से ठीक विपरीत क्रिया है, उसी प्रकार सम् उपसर्ग के विपरीत उपसर्ग 'वि' और 'अव' हैं जैसे संस्थापन, विस्थापन, सम्मान, अवमान, संश्लेषण, विश्लेषण; संकलन, विकलन; संघटन, विघटन। व्यव (वि+अव) उपसर्गो के लगने से पृथक् करना अर्थ हो जाता जैसे संगमन का अर्थ है साथ-साथ जाना तथा व्यवगमन का अर्थ है 'पृथक् होना' एवं व्यवच्छिन का अर्थ है पृथक्-पृथक् किया हुआ। वैसे अकेला वि उपसर्ग घटाने के भाव को व्यक्त करने के लिए लगाया जा सकता था किंतु तब इससे विकल शब्द बन जाता जिसका अर्थ पहिले से ही बेचैन आदि प्रसिद्ध है तथा अवकलित का अर्थ 'देखा हुआ', 'अनुभव किया हुआ' अतएव दो उपसर्ग लगाने पड़े।

पर्याय :

घटाने के अन्य पर्यायवाची शब्द व्यवकलन, पातन, विशोधन, वियोजन, अपगम, व्युत्कलन तथा व्युत्कलित हैं। इनमें से पातन गणिततिलक के पृष्ठ ४ पर, विशोधन, वियोजन भी पृष्ठ ४ पर, सिंहतिलक सूरि की व्याख्यामें देखे जा सकते हैं। अन्य टीकाओं तथा ग्रंथों में भी ये शब्द प्रयुक्त हुये हैं। महावीर ने व्युत्कलित शब्द का प्रयोग किया है। यथा:—

"तत्संकलितमप्युक्तं व्युत्कलितमतोऽष्टमम्"

व्यवकलन तथा अपगम शब्द इन आगे लिखे उद्धरणों में प्रयुक्त हुए हैं :—

"यदि व्यक्ते युक्तिर्व्यवकलन मार्गेऽसि कुशला" (लीलावती, पृ० ६)
"खयोजनापगमे" (श्रीधर पाटीगणित, पृ० १४)।

पात्य, सर्वधन तथा वियोज्य शब्द जिस राशि में से घटाया जाय उस राशि के लिए तथा वियोजक घटाई जाने वाली राशि के लिए आता है। घटा के जो बचे उसे अन्तर, अवशेष तथा शेष कहते हैं। इन शब्दों के प्रयोग गणिततिलक के पृष्ठ ४ में हुए हैं।

व्यवकलन की परिभाषा :

आर्यभट द्वितीय ने व्यवकलित की निम्न परिभाषा की है :—

सर्वधन में से कुछ घटाने को व्यवकलित कहते हैं जो बचता है उसे शेष कहते हैं।[1] श्रीधरकृत पाटीगणित के टीकाकार ने कहा है। 'ऋणं वियोगोऽपचयोऽन्तरमूनीकरणमिति व्यवकलितम्' अर्थात् ऋण करना, वियोग करना, अपचय करना, अंतर करना तथा ऊनीकरण का नाम व्यवकलित है। व्यवकलन की भी संकलन के समान क्रमविधि और उत्क्रमविधि दो विधियां हैं। जो इकाई से प्रारंभ हो वह क्रमविधि तथा जो बाईं ओर के अधिकतम स्थान से प्रारंभ हो वह उत्क्रमविधि कहलाती है। भास्कर ने कहा है। "कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथवांकयोगो यथास्थानकमन्तरं वा।" इस प्रकरण के विवरण के लिए हिंदूगणितशास्त्र के इतिहास के पृष्ठ १२५-१२६ का अवलोकन कीजिए।

प्रकरण ८. धन, ऋण

जोड़ने और घटाने में जिस संख्या को जोड़ा जाता है उसके पहिले धन शब्द लगाया जाता है और जिसको घटाते हैं उसके पहिले ऋण शब्द लगाते हैं। एक प्रकार से जोड़ने और घटाने के धन और ऋण शब्द संकेत हो गये हैं। धन का अर्थ होता है 'मैं जोड़ा' तथा ऋण का अर्थ होता है 'मैं घटाया'। धन और ऋण तो द्रव्य और कर्जे के लिए सुविदित शब्द हैं। आइये देखें उनका अंकगणित में क्यों कर प्रयोग होने लगा।

धन और ऋण शब्द बहुत प्राचीन हैं। इनका प्रयोग ऋग्वेद में एक जुआरी की हीन दशा का चित्रण करते हुए निम्नलिखित मंत्र में हुआ है :—

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुपनक्तमेति ॥[2]

ऋग्वेद में पहिले धन शब्द किसी दौड़ तथा अन्य खेलों में विजेता को पारि-

---

१. देखिए महासिद्धांत, अध्याय १५, श्लोक २।
२. इसका अर्थ पृ० ७१ पर दिया हुआ है।

तोपिक के रूप में मिलने वाली वस्तु के लिए आता था। "हितंधनं" का अर्थ प्रस्तावित पारितोषिक था। शत्रु से जीते हुए सामान के अर्थ में भी यह शब्द आता था। अतएव धनंजित और धनंजय शब्द भी वेदों में मिलते हैं। पुनः इस शब्द का सामान्य धन अर्थ हो गया। मोनियरविलियम्स संस्कृत कोष के अनुसार धन शब्द धन धातु से बना है जिसका अर्थ है दौड़ना। डा० सिद्धेश्वर वर्मा का विचार है कि यह धा धातु से बना है जिसका अर्थ है रखना। पारितोषिक के रूप में रखे जाने से यह धन कहलाया। निरुक्तकार यास्क ने इसको धि संतोषार्थक धातु से बना बताया है। धन शब्द इतना छोटा है तथा इसका प्रयोग इतना प्राचीन है कि इस प्रसंग में इसकी इससे अधिक छानबीन करना बेकार है। जिस प्रकार धन शब्द के दो अर्थ हैं:—(१) पारितोषिक अथवा भेंट, (२) स्त्री (संस्कृत धनिका, हिंदी धनि 'कहियो धनि ने जाइ के अब धन धरी सकेलि'—सुदामाचरित्र) उसी प्रकार अंगरेजी में भी 'डान' के दो अर्थ हैं। एक 'गिफ्ट' जिससे 'डोनेशन' शब्द बना है तथा दूसरा स्त्री (Dona, Italiane Donna, medonna-my lady)

धन के पर्यायवाची स्व तथा आय एवं ऋण के पर्यायवाची व्यय तथा क्षय हैं। यथा:—

"योगेयुतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा धनर्णयोरन्तरमेवयोगः (भा० बी० ग०)

अर्थात् दो ऋण राशियों अथवा धनराशियों के योग करने में राशियाँ जोड़ी जाती हैं यथा एक धन और दूसरी ऋण हो तो दोनों का अंतर ही योग होता है। धन को जोड़ा ही जाता है तथा ऋण का शोधन (चुकाना) ही किया जाता है, अतएव धन का जोड़ने के साथ तथा ऋण का शोधन के साथ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। धन का जोड़ना अथवा संख्याओं का जोड़ना मिलती-जुलती संकल्पनायें हैं। इसी प्रकार ऋण का शोधन और संख्याओं का शोधन भी सजातीय संकल्पनायें हैं। हमारी अंकगणित अत्यन्त व्यावहारिक रही है। धन सम्बन्धी व्यवहारों में ही जोड़ने, घटाने की अधिक आवश्यकता पड़ी होगी, अतएव उसी क्षेत्र के शब्द भी अंकगणित में आ गये। अंग्रेजी का 'सम' शब्द भी द्रव्य तथा योग दोनों का वाचक है। उर्दू में जमा करना भी जोड़ने के अर्थ का है। अरबी अनुवादों में धन के लिये माल शब्द का प्रयोग किया है।[1] श्रीधर ने धन शब्द का प्रयोग संख्याओं के गुणनफल के अर्थ में भी किया है। देखिये :—

अष्टघनेनाभ्यस्तं सार्धद्वितयं त्रिभागयुक्ता च।
षष्टिः पंचार्धगुणा किं भवति धनं पृथक्कथय॥

(पाटीगणित, पृ० २६)।

१. दे० रोहनस्ट्रेची कृत बीजगणित का अनुवाद।

अर्थात् $\frac{३}{२}$ को $\frac{५}{२}$ से गुणा करने पर तथा ६०$\frac{१}{३}$ को $\frac{५}{३}$ से गुणा करने पर धन आएगा। धन का अर्थ लक्षणा से संख्या अथवा गुणनफल ही है। साधारण संख्यात्मक स्थल पर भी धन का प्रयोग किया है।

पर्याय :

धन और ऋण के लिये युत और वियुत शब्द भी प्रयुक्त होते थे। युत और उसका संक्षिप्त रूप यु० तथा क्षय और उसका संक्षिप्त रूप क्ष० धन एवं ऋण के लिये वक्षाली-गणित में प्रयुक्त हुये हैं। धन और ऋण के लिये आय तथा व्यय शब्द भी प्रयुक्त हुये हैं। देखिए श्रीधर का प्रयोग :—

तुल्यच्छेदायव्ययराश्योरंशान्तरं कुर्यात्। (पाटीगणित, पृ० २५)

न्यास $\frac{९}{१२}$ $\frac{१२}{१२}$ । अंशान्तरे जातं $\frac{३}{१२}$ । त्रिभिरपवर्त्य

जातं धनं शेष: —$\frac{१}{४}$

अर्थात् तुल्य हर वाली आय (धन) व्यय (ऋण) राशियों के अंशों का अंतर करे जैसे $\frac{९}{१२}$ तथा $\frac{१२}{१२}$ के अंशांतर करने पर शेष $\frac{३}{१२}$ आया। इसको तीन से काटकर $\frac{१}{४}$ आया। इस प्रकार उत्तर +$\frac{१}{४}$ हुआ।

धन, ऋण के संकेत-चिह्न :

श्रीधर ने ऋणात्मक के लिये क्षयात्मक शब्द का भी प्रयोग किया है। देखिए:—

अभ्यधिकपदस्यैवं विजये संख्या प्रजायते पुंस:।
संख्या क्षयात्मिका चेद् भवति जयो हीनगच्छस्य॥

(पाटीगणित, पृ० १४५)

यहाँ क्षयात्मिका का अर्थ ऋणात्मक ही है। इसकी टीका में जो स्वयं प्राचीन है धनात्मक और ऋणात्मक शब्द भी वर्तमान अर्थ में प्रयुक्त हुये हैं। डा० दत्त के मत में क्षय के प्रथम अक्षर क्ष का ही विकृत रूप + है जो आजकल योग के अर्थ में चलता है, किन्तु पहिले वह ऋण चिह्न के रूप में प्रयुक्त होता था। जैसे ७ + का अर्थ —७ है। वक्षाली पाण्डुलिपि में इस का प्रयोग मिलता है। श्रीधरकृत पाटीगणित से उद्धृत पूर्व श्लोक की टीका में भी + चिह्न ऋण के लिये प्रयुक्त हुआ है। किन्तु भास्कर तथा अन्य परवर्ती लेखकों ने ऋण के लिये बिन्दु का प्रयोग किया है। भास्कर ने कहा भी है :—

'यानि ऋणगतानि तान्यूर्ध्वबिन्दूनि' अर्थात् जो राशियां ऋण हों, उनके ऊपर बिन्दु होता है।

'तत्र परस्परकृतं गुणितं तत्रगुणा अभ्यासम्'। वक्षाली-पांडुलिपि में (पृ० १८७) गुणाकार शब्द भी आया है जो वाद में 'गुणकार' के रूप में मिलता है। देखिये :—

"यत्तस्य भवत्यर्ध विद्याद् गुणकार संवर्गम्" (आर्यभटीय ग० पा० २३)

गुणाकार शब्द में गुणा शब्द का स्पष्ट प्रयोग है क्योंकि गुणाकार का अर्थ है गुणा करने वाला अर्थात् गुणक।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि अकारांत गुण शब्द अच्छाई आदि के अर्थ में प्रसिद्ध हो जाने से स्त्रीलिंग गुणा शब्द का ही हिंदी गणितीय शब्दावली में प्रचलन हुआ। गुण और गुणा में लिंगभेद था ही, अव आवश्कता पड़ने पर उनमें अर्थभेद भी कर दिया।

जैसा योग के प्रकरण में वताया है कि शुल्वसूत्रों में इसे अभ्यास शब्द से व्यक्त किया गया है। अभ्यास शब्द का अर्थ वहाँ जोड़ना भी है। वास्तव में वहाँ अभ्यास आवृत्ति के अर्थ में है। जब अभ्यास्त के पहिले कोई संख्यावाचक शब्द न हो तो एक आवृत्ति का अर्थ होता था अर्थात् तीन की एक आवृत्ति होकर ६ हो जाता है। तीन के दो वार अभ्यस्त होने से ९, तीन वार अभ्यस्त होने से १२ हो जाते हैं। इस से स्पष्ट है कि गुणा की मूल भावना में जोड़ की ही प्रक्रिया है जिसमें गुणा को गुणक संख्या के तुल्य वार लिख कर जोड़ा जाता है। यह परिभाषा भास्कर प्रथम के आर्यभटीय भाष्य में मिलती है। लीलावती के टीकाकारों ने भी यही परिभाषा दी है। वक्षाली-गणित में गुणा और अभ्यास के अतिरिक्त 'परस्परकृत' शब्द भी इस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है जो उक्त परिभाषा पर भी आधारित है। परस्परकृत का अर्थ है एकत्र करना।

पर्याय :

इसके उपरांत आर्यभट के समय से गुणन का एक अन्य पर्याय-समूह हनन, वध, अभिहित, आहति, कुट्टन, समाहति, प्रहति, घात, क्षय, संताडन प्रयुक्त होना प्रारम्भ हुआ। दशमिक अंक प्रणाली के प्रचलन के बाद गुणन की नवीन प्रणाली में गुणकराशि के अंक एक-एक करके मिटा दिये जाते थे और उनके स्थान में गुणनफल के अंक आ जाते थे। गुण्य के सकल अंकों का इस प्रकार हनन होकर उसके स्थान पर एक राशि उत्पन्न हो जाती थी अतएव गुणन के लिये हनन आदि शब्द तथा फल के आधार पर गुणफल के लिये प्रत्युत्पन्न शब्द प्रयुक्त होते थे। फल के आधार पर

---

१. ब्रह्मगुप्त ने गुणक शब्द कोफीशेंट के अर्थ में प्रयुक्त किया है जिसे आजकल गुणांक कहते हैं। पृथूदक् स्वामी ने इसको अंक शब्द से व्यक्त किया था।

योगफल को संकलित, वियोगफल को व्यवकलित कहा गया है।[1] गुणन की यह पद्धति अरब में गई, वहाँ इस विधि का प्रयोग अलख्वारिज्मी (८२५ ई०) अलहस्सार आदि अनेक लेखकों ने किया और इस विधि को अल-अमल-अल-हिन्दी तथा तरीक़ा-अल-हिन्दी (हिंदुओं की विधि) कहा। अतएव उनका शब्द भी हमारे घात, आहति (चोट पहुँचाना) आदि शब्दों का अनुवादमात्र है क्योंकि अरब का मूल अर्थ भी चोट पहुंचाना है। उनके यहाँ भी गुणन के अंक मिटाये जाते थे।[2] अंकों के मिटाने का एक छोटा सा उदाहरण नीचे दिया जाता है।

उदाहरण—

१४६ को १५ से गुणा करना है :— १५
१४६

६ से १५ को गुणा किया आया ९०, ० को ५ के नीचे और ६ को मिटा कर उसके स्थान में ९ लिखा। अब नई स्थिति यह है :— १५
१४९०

गुणक को एक स्थान बाईं ओर हटाया :— १५
१४९०

अब ४ से १५ को गुणा किया और आया ६०, इसको ९ में जोड़ने से आया ६९; ४ को मिटा दिया और नई स्थिति यह हुई :— १५
१६९०

गुणक को एक स्थान बाईं ओर हटाया और इस प्रकार नई स्थिति यह है। १५
१६९०

१ से १५ को गुणा किया आया १५, उसमें ६ जोड़ दिये, आये २१।

१ को मिटा दिया और उसके तथा ६ के स्थान पर २१ लिख दिया।

इस प्रकार निम्न संख्या प्राप्त हुई :— २१९०

प्रयोग :

हमने देखा कि क्रम से गुणक के एक-एक करके सारे अंक मिट गये और एक

---

१. संकलित व्यवकलिते प्रत्युत्पन्नो थ भागहारश्च। श्रीधर आदिमं गुणकारो न प्रत्युत्पन्नो पि तद्भवेत। महावीर

२. दे० हिंदू गणितशास्त्र का इतिहास, पृ० १३०-३६।

नई संख्या उत्पन्न हुई। इसीलिये गुणन को हनन और गुणनफल को प्रत्युत्पन्न कहा था। हनन परिवार के शब्दों के प्रयोग नीचे दिये जाते हैं :—

इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्तं पदार्धहतम् (आर्य०, ग० पा० १९)

त्रैराशिक फलराशि तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा (,, ,, २६)

बक्षाली-पाण्डुलिपि में भी इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।[1]

वराहमिहर ने बृहत्संहिता में गुणन को वर्गणा शब्द भी प्रयुक्त किया है। वर्ग करने में भी गुणा करनी पड़ती है और वर्गण में भी कुछ न कुछ गुणन का साहचर्य है अतएव इसे वर्गण शब्द से व्यक्त किया। गुणन की गैलोसिया विधि में गुण्य के जितने स्थान होते हैं उतने वर्गाकार कोष्ठ खींचे जाते हैं और उनके नीचे पुनः उतने वर्गाकार कोष्ठ खींचते हैं जितने कि गुणक में स्थान होते हैं। अंत में तिरछा जोड़ करते हैं। देखिये समीपस्थ चित्र। संभव है वराहमिहिर को यह विधि ज्ञात हो। गणेशदैवज्ञ ने इसको भी कपाटसंधि विधि कहा है जो कि डा० सिंह एवं डा० दत्त के मत में अशुद्ध है।[2] गैलोसियाविधि को यदि वर्गणाविधि कहा जाता तो अधिक उपयुक्त होता। यही गैलोसियाविधि वर्तमान गुणनविधि की जन्मदात्री है। प्राचीन गणित साहित्य में निम्न ७ प्रकार की गुणन-विधियों का वर्णन है :—
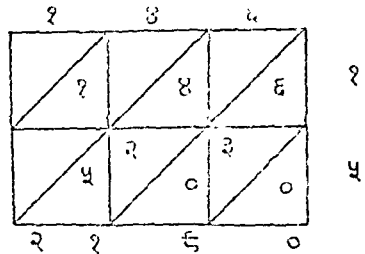
गुणन-विधियां :

१. कपाट-संधि विधि, २. वर्गणाविधि, ३. तत्स्थविधि (तिर्यक्गुणन-विधि), ४. स्थानविभाग (स्थानखण्ड-गुणन), ५. गोमूत्रिका विधि, ६. रूप-विभाग (रूपाखण्ड गुणन), ७. इष्टगुणन (बीजीय विधि)। इनका विवरण हिन्दू गणितशास्त्र के इतिहास के पृष्ठ १२८ से १४१ में दिया है। अंक मिटने वाली गुणन रीति के समाप्त होते ही गुणन के पर्यायवाची हनन, वध आदि शब्द भी समाप्त हो गये, अब बचे मौलिक शब्द 'अभ्यास' और 'गुणन' जो अब भी प्रयुक्त हो रहे हैं और उनमें भी अभ्यास केवल वज्राभ्यास (Cross multiplication) में ही प्रयुक्त होता है। हमने जिन शब्दों को भुला दिया उन्हीं के अनुवाद जरब आदि शब्द अरबी, फारसी आदि भाषाओं में अब तक प्रयुक्त होते हैं।

वज्राभ्यास :

वज्र इन्द्र के शस्त्र अथवा बादलों की विद्युत को कहते हैं, जो कड़क के साथ चमकती है। इन्द्र के आयुध वज्र को × आकार का माना जाता है। इसी आकार

१. बक्षाली-पाण्डुलिपि, पत्र ६५ (वो०)।
२. हिन्दू गणितशास्त्र, पृष्ठ १३७।

की वह वस्तु थी जिससे ईसामसीह को फांसी दी गई थी। उसको अंगरेजा में 'क्रास' कहते हैं जो बाद में ईसाई धर्म का चिह्न बन गया। वज्राभ्यास तिर्यग्गुणन को कहते हैं जैसे यदि

$$\frac{\text{क}}{\text{ग}} = \frac{\text{ख}}{\text{घ}} \text{ तो क घ} = \text{ग ख}$$

अतएव यह संस्कृत में वज्राभ्यास तथा अंगरेजी में 'क्रास मल्टीप्लेकेशन' के नाम से प्रसिद्ध है। वैसे भी बिजली तिरछे पथ में ही चमकती दिखाई देती है अतएव वज्र का प्रतीक × ठीक ही है और जैसा ऊपर बताया है आकार साम्य से वज्राभ्यास शब्द भी सार्थक है। महावीराचार्य ने क्षेत्रों के भेदों में एक वज्राकृति भी बतायी है। देखिये :—

वज्राकृतेस्तथास्य क्षेत्रस्य षडग्रनवतिरायाम: ।
मध्ये सूचिर्मुखयोस्त्रयोदश त्र्यंशसंयुता दण्डा: ।।

(ग० सार० सं०, पृ० ११४)

इसको शक्रायुध भी कहा है। यथा:

यवमुरजपणवशक्रायुधसंस्थान प्रतिष्ठितानांतु ।
मुखमध्यसमासार्धत्वायामगुणं फलं भवति ।।

(ग० सार० सं, पृ० ११४)

टीकाकार रंगाचार्य ने इसका चित्र ऐसा दिया है।
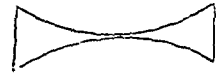
उन्होंने $\frac{2}{3} \times \frac{9}{8} = \frac{3}{4}$ इस प्रकार तिरछे काटने को वज्रापवर्तन शब्द भी प्रयुक्त किया है। श्रीधर ने भी वज्रवत् शब्द का पाटीगणित में पृ० १०८ पर प्रयोग किया है। यथा:—

'सूत्रप्रभृतिर्वज्रवदृणगतभूमौ भवेदित्थम्' डा० कृपाशंकर शुक्ल ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है।

When the base is negative, these threads should be shortened out crosswise in the following form :—

ब्रह्मगुप्त ने वज्रवध शब्द वज्राभ्यास के अर्थ में प्रयुक्त किया है। वध अभ्यास का पर्यायवाची है। देखिए:—
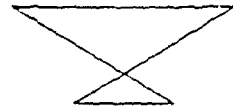
वज्रवधैक्यं प्रथमं प्रक्षेप:क्षेपवधतुल्य: ।
प्रक्षेपशोधकहृते मूले प्रक्षेपके रूपे ।।

(ब्रा० स्फु० सि० १८।६५,६६)

तिर्यग्गुणन भी तिरछा होता था। जैसे :—

भास्कर ने वज्रवध के लिये वर्तमान 'वज्राभ्यास' शब्द ही प्रयुक्त किया है। देखिये :—
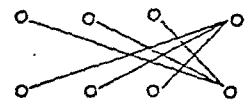
वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यम्
ह्रस्वं लघ्वोराहतिश्चप्रकृत्या।
क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग् ज्येष्ठमूलं
तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकःस्यात् ॥ (बी० पृ०, १६०)

यहां ज्येष्ठ और लघु मूलों की निम्न प्रकार से गुणा के अर्थ में वज्राभ्यास शब्द प्रयुक्त किया गया है :—
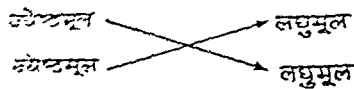
प्रकरण १०. भाग

भाग शब्द भज् (विश्राणने) धातु से घञ् प्रत्यय लग कर बना है। विश्राणन का अर्थ है बांटना। जो वितरित हो वह भाग हुआ, जैसे ४० रुपये ४ आदमियों में बराबर-बराबर बांटने पर प्रत्येक को १० रुपये वितरित हुए। अतएव १० रुपये प्रत्येक का भाग कहलाया। वैदिक काल में ही भाग का अर्थ हिस्सा था। देखिये:—

'अधारयन्त वह्नयो भजन्त सुकृत्यया। भागं देवेषु यज्ञम्' अर्थात् (ऋ० १।२०।८) देवों के मध्य स्थित वह्नियों (ऋभुओं) ने अपने सुकृत से यज्ञीय भाग को ग्रहण किया।

मनुस्मृति की निम्न पंक्ति में भज् धातु का अर्थ विभाजन है :—

'भजेरन् पैतृकं रिक्थम्' अर्थात् पैतृक संपत्ति को बांटे।

गणितीय अर्थ में भज् धातु का प्रयोग शुल्व सूत्रों में ही आता है। वहां भाग का अर्थ भिन्न (हिस्सा) है अर्थात् दशम भाग $\frac{१}{१०}$, पंचदश भाग $\frac{१}{१५}$, त्रिभाग $\frac{१}{३}$। वर्ग आदि के रेखात्मक भाग करने में भी भज् धातु का प्रयोग है। यथा :—

'शेषमक्ष्णया विभज्य विपर्यस्येतरत्रोपदध्यात्' (बौ०शु०सू०)

वेदांग-ज्योतिष काल में भाग की क्रिया ज्ञात थी। देखिए :—

तिथिमेकादशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत् ॥

अर्थात् तिथि को ११ से गुणा करे, पर्व नक्षत्रांशों को जोड़े तथा नक्षत्र संख्या से भाग देकर तिथि के नक्षत्र को बताये।

इसमें विभज्य शब्द से संख्यात्मक भाग ही अभिप्रेत है। वक्षाली-पाण्डुलिपि के तृतीय भाग के १६६ वें पृष्ठ पर भाग शब्द आया है। भाग का संक्षिप्त रूप भा, भाग का द्योतक था। भाग का पर्यायवाची छेद और उसका संक्षिप्त रूप छे० भी वक्षाली-पाण्डुलिपि में प्रयुक्त हुआ है।

पर्याय :

भाग के पर्याय भागहर, भाजन, विभाजन, विभाग, छेद, हरण आदि शब्द हैं। विपरीत त्रैराशिक नियम बताते हुये आर्यभट ने लिखा है :—

प्रयोग :

गुणकारा भागहरा भागहरा ये भवन्ति गुणकाराः।
यः क्षेपः सोऽपचयोऽपचयःक्षेपश्च विपरीते ॥ (ग०पा०,पृ० २७)

अर्थात् विपरीत त्रैराशिक नियम में गुणाकार, भागहार; भागहार; गुणाकार; योग, वियोग तथा वियोग योग में परिणत हो जाता है। गुणाकार, भागहार इन बड़े शब्दों के स्थान पर गुणा, भाग शब्द भी हिन्दी में प्रचलित हुए वैसे भी उनका शब्दार्थ भाजक है न कि भाग। भाग के समान छेद का भी अर्थ टुकड़ा है अतएव यह भी इसी अर्थ में प्रचलित हुआ। हरण का सम्बन्ध घटाने से है। भाग घटाने की ही क्रिया है। अंगरेजी का 'डिवीजन और उर्दू के तक़सीम शब्द का भी भाजन के समान मौलिक अर्थ बांटना ही है।

जिसको भाग दें वह भाज्य, विभाज्य, छेद्य, हार्य तथा जिससे भाग दें उसे भाजक, छेदक, भागहार, हार अथवा हर कहते है। भाग देने में जो बार जांय उन्हें लब्ध या लब्धि कहते हैं। भाज्य का भाजक से छोटा जो अंश बच रहता है उसे शेष कहते हैं। बोलचाल का बार शब्द आवृति संख्या के अर्थ में प्राचीन है। देखिए ब्रह्मगुप्त का प्रयोग :—

एकोनगुणाभ्यस्तं प्रभवहृतं रूपसंयुतं वित्तम्।
यावत्कृत्वो भक्तं गुणेन तद्वारसम्मितिर्गच्छः॥ (ब्रा०स्फु०सि०)

वार :

यहां वार का वर्तमान अर्थ ही है। ब्रह्मगुप्त ने इस श्लोक में गुणोत्तर श्रेणी की पद-संख्या निकालने का नियम बताया है। गुण शब्द सामान्य अनुपात के लिए आया है। वित्त शब्द श्रेणी के योग के लिए आया है। प्रभव आदि पद के लिए तथा रूप एक के लिए प्रयुक्त हुआ हैं अर्थात् $a\frac{(r^n-1)}{r-1}\times\frac{r-1}{a}+1=r^n$ यहां r^n, r से जितनी बार बट सके वही n है अर्थात् $\frac{१२५}{५}$ में वार ३ है न कि २५। क्योंकि

१२५ पांच से ३ बार ही विभाजित हो सकता है। बाद को बोलचाल में बार शब्द लब्धि के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा।

जो भाग-विधि वेदांग-ज्योतिष काल में ही हमारे यहाँ ज्ञात थी वह योरुप में १५वीं १६वीं, शताब्दी तक बड़ी कठिन मानी जाती थी। यद्यपि भारतवर्ष में भागविधि बहुत पहिले से ही प्रयुक्त होती थी किन्तु उस विधि का वर्णन महावीर-कृत गणितसारसंग्रह तथा श्रीधर कृत पाटीगणित में ही सर्वप्रथम मिलता है। यथा—

तुल्येन सम्भवेसति हरं विभाज्यं च राशिना छित्वा।
भागोहार्यः क्रमशः प्रतिलोमं भागहारविधिः॥ (पा० २२०)

अर्थात् भाज्य तथा भाजक को समान संख्या से विभाजित करके फिर विलोमविधि द्वारा भाग देवे इसको भागहारविधि कहते हैं।

विन्यस्य भाज्यमानं तस्याधस्स्थेन भागहारेण।
सदृशापवर्तन-विधिना भागं कृत्वा फलं प्रवदेत्॥ १८॥
प्रतिलोमपथेन भजेद्भाज्यमधःस्थेन भागहारेण।
सदृशापवर्तनविधिर्यद्यस्ति विधाय तमपि तयोः॥१९॥ (ग०सा०सं०, पृ०११)
अर्थ लगभग ऊपर के ही समान है।

प्रकरण ११. भिन्न

भिन्न शब्द भिदि (अवयवे-टुकड़ा करना) अथवा भिदिर् (विदारणे=टूटना, मुकना, चीरना) धातु से क्त प्रत्यय लग कर बना है। यह शब्द वैदिक भाषा में टूटा हुआ, भोंका हुआ, नष्ट किया हुआ, इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होता था। उदाहरणतः ऋग्वेद में (१।३२।८) में यह शब्द उपरोक्त अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। अंगरेजी का फ्रैक्शन तथा अन्य योरोपीय भाषाओं के शब्द फ्रैक्टिओ, राउण्ट, रोटो, और रोक्ट्रो भिन्न शब्द के अनुवाद हैं जो लैटिन शब्द फ्रैक्टस (फ्रैन्जिएर) अथवा रुण्टस (टूटा हुआ) से व्युत्पन्न किए गए हैं।

पर्याय :

कला—

वैदिक साहित्य में भिन्न के लिये सर्वप्रथम कला शब्द था। वहाँ इसका अर्थ था कुल का भाग विशेषतः सोलहवाँ भाग। कला शब्द ऋग्वेद में प्रयुक्त हुआ है। देखिए :—

'कलां यथा शफं यथाऋणं सनंयामसि' (ऋग्वेद ८।४७।१७)

यहाँ कला का अर्थ सायणभाष्य में हृदयादि अवयव बताया है। शुल्व सूत्रों में कला शब्द सामान्य भिन्न के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। देखिये :—

'तृतीयेन नवमी कला' आपस्तंब शुल्ब सूत्र ।
'चतुर्थेन षोडशी कला' कात्यायन शुल्ब सूत्र ।

अर्थात् $\left(\frac{१}{३}\right)^{२} = \frac{१}{९}$ भिन्न

$\left(\frac{१}{४}\right)^{२} = \frac{१}{१६}$ भिन्न

ऋग्वेद मे निम्नलिखित भिन्नें आई हैं :—

अर्ध $= \frac{१}{२}$

पाद $= \frac{१}{४}$

त्रिपाद $= \frac{३}{४}$

शफ $= \frac{१}{८}$ (देखिये ऋग्वेद १०।२७।१८,२।३०।५)

कुष्ठ $= \frac{१}{१२}$

एक से अतिरिक्त अंशवाली भिन्नों में त्रिपाद ($\frac{३}{४}$) सर्व प्राचीन है। शुल्ब सूत्रों में भी अनेक भिन्नों का वर्णन आया है। भिन्न के लिये अंश, भाग और कला शब्दों का प्रयोग मिलता है। यथा :—

अर्धप्रमाणेन पादप्रमाणं विधीयते। (का०शु०सू०)
तृतीयेन नवमांशः (,, ,, ३।९)
चतुर्थेन षोडशीकला (,, ,, ३।१०)

यहां अर्ध $= \frac{१}{२}$, पाद $= \frac{१}{४}$, षोडशी $= \frac{१}{१६}$, नवमांश $= \frac{१}{९}$ अन्य शब्द नीचे दिये जा रहे हैं।

पंचदश भाग $= \frac{१}{१५}$ (समस्तं पंचदश भागानुकृत्वा द्वावेकसमासेन समस्येत् स पुरुषः का०शु० ५।५ आप १०।३)

त्रिभाग $= \frac{१}{३}$ (का०शु०सू०)

पंचम भाग $= \frac{१}{५}$

छंद की सुविधा के लिए भाग शब्द लुप्त भी कर दिया गया है जैसे,

$$चतुर्थ = \frac{१}{४}$$

$$पंचम = \frac{१}{५}$$

$$षष्ठ = \frac{१}{६}$$

अर्थात् एक अंश वाली भिन्नों में केवल हर का ही कथन किया गया है। मानव शुल्व सूत्र (५।५) में द्विगुण, त्रिगुण और चतुर्गुण $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$ और $\frac{१}{४}$ के लिए तथा दुगुने, तिगुने और चौगुने के लिए भी प्रयुक्त हुए हैं।

शुल्व-सूत्रकारों ने एकांशक भिन्नें ही प्रयुक्त नहीं की जैसा कि आदि मिश्र-वासियों तथा बाबुल निवासियों ने किया था किन्तु उन्होंने यौगिक भिन्नें भी प्रयुक्त की थीं। देखिये :—

$$त्र्यष्टम् = \frac{३}{८}$$

$$द्विसप्तम् = \frac{२}{७}$$ (आप० शु० १६।२,७)

कात्यायन ने $१४\frac{२}{७}$ प्रक्रमों को चतुर्दश प्रक्रमान् द्वौचप्रक्रमसप्तभागान् कहा है। देखिये :—

या करणी चतुर्दश प्रक्रमान् संक्षिपति द्वौच प्रक्रमसप्तभागान् स एकशतविधेः प्रक्रमः ॥

$$अध्यर्ध = १\frac{१}{२}$$ (अध्यर्धपुरुषा रज्जुर्द्वौ सपादीकरोति का० शु० सू०)

$$सपादौ द्वौ = २\frac{१}{४}$$

$$चतुर्भागोन = \frac{३}{४}$$ (आ० शु० १५।५)

एक विचित्र प्रयोग भिन्न वाचक शब्दों में देखने को मिलता है। यथा:—

अर्धनवम $= ८\frac{१}{२}$ (आप० शु० ३।८)

अर्धदशम $= ९\frac{१}{२}$

भिन्नों की भिन्नों के प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे,

पंचमस्य चतुर्विंशेन $\frac{१}{२}\times\frac{१}{२४}$ आप० शु० १८।३

चतुर्थभविशेषार्ध $\frac{१}{२}\left(\frac{१}{२}\sqrt{३}\right)$

चतुर्थभविशेष सप्तम $\frac{१}{७}\left(\frac{१}{२}\sqrt{३}\right)$

भिन्न शब्द का प्रथम प्रयोग :

गणितीय अर्थ में भिन्न शब्द का प्रथम प्रयोग वेदांग ज्योतिष के निम्न श्लोक में मिलता है :—

> त्र्यंशो भशेषो दिवसांशभागश्चतुर्दशस्यापनीय भिन्नम् ।
> भार्धेऽधिके चाऽधिगते परेंऽशे द्वूनमेकं नवकैरवेत्य ॥ २७

अर्थात् पर्व नक्षत्र के लिए आवश्यक भादनिका कला $=\frac{१३}{१२४}$ भांश $-\frac{१}{३}$ भांश—पर्व के चौदह दिनों के दिवसांश भाग $+\frac{१}{३}$ दिवसांश भाग। इसमें भिन्न छोड़ दी जाती है अथवा उसको पूर्णांक कर लेते हैं। यदि पर्व के भांश, पूर्व पर्व के भांश से आधे या आधे से अधिक नक्षत्र से अधिक हों तो भांश जिसके अंश में ९ या ९ के गुणज हों, एक दिवस से बढ़ जाता है। इसमें भिन्न तथा त्र्यंश ($\frac{१}{३}$) तथा उत्तम (अंश) शब्द प्रयुक्त हुये हैं। वेदांग-ज्योतिष का एक और श्लोक नीचे उद्धृत किया जाता है जिससे प्रतीत होगा कि उस समय भिन्न तथा गणित की अन्य सामान्य क्रियाओं का भी ज्ञान था :—

> भांशाः स्युरष्टकाः कार्याः पक्षद्वादशकोद्गताः ।
> एकादशगुणश्चोनं शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि ॥

अर्थात् १२ या १२ के गुणजों के बराबर पूर्वों के भांश आठ या आठ के गुणज होते हैं जो १२ या १२ के गुणज न हों तो उनकी संख्या को ११ से गुणा करिये और इस प्रकार उनके भांश प्राप्त कीजिये। शुक्ल पक्ष में नक्षत्र में चन्द्रस्थिति जानने के लिये ६२ (युग के चान्द्र पर्वों की संख्या १२४ के आधे) जोड़े जाते हैं।

व्याख्या:— सूर्य वर्ष में २७ नक्षत्रों की परिक्रमा करता है। ५ वर्षों में वह १३५ नक्षत्रों में होकर जाता है। ५ वर्षों में चान्द्र पर्व १२४ होते हैं।

∴ १२४ चान्द्र पर्वों में सूर्य १३५ नक्षत्र चलता है

∴ १ ,, ,, ,, ,, $\frac{१३५}{१२४}=१+\frac{११}{१२४}$

∴ प पर्वों में ,, ,, ,, $प+\frac{११}{१२४}$ प नक्षत्र चलेगा

माना $\frac{११ प}{१२४}=१+\frac{क}{१२४}$

यदि प १२ या १२ की गुणज संख्या है तो

$$\text{क} = १२४\left(\frac{११\text{प}}{१२४} - १\right)$$

$$= १२४\left(\frac{१३२}{१२४} - १\right)$$

$$= १२४ \times \frac{८}{१२४}$$

$$= ८$$

यहाँ यदि प २४ होता तो $\frac{११\text{प}}{१२४} = २ + \frac{\text{क}}{१२४}$

$$\text{क} = १२४\left(\frac{११\text{प}}{१२४} - २\right)$$

$$= \frac{१२४}{१२४}(२६४ - २४८) = १६$$

अतएव श्लोक की प्रथम पंक्ति कितनी सार्थक है। विना इतनी क्रिया के जाने जब उपरोक्त पंक्ति समझी नहीं जा सकती तो लेखक को उक्त क्रिया का अवश्य ज्ञान रहा होगा। अत: वेदांग-ज्योतिष काल में भिन्न परिकर्म का पूर्ण ज्ञान था। वेदांग-ज्योतिष के निम्न श्लोक में $१०\frac{१}{२०}$ (दश सविंश) का उल्लेख मिलता है। श्लोक यह है :—

कला दश सविंशास्याद्द्वे मुहूर्तस्यनाडिके।
द्विस्त्रिंशस्तत्कलानांतु षट्शती त्र्यधिकं भवेत्॥

अर्थात् एक नाडिका $= १०\frac{१}{२०}$ कला, २ नाडिका $=$ १ मुहूर्त, ६० नाडिका $=$ ६०३ कला $=$ १ दिन।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में पादोन ($\frac{३}{४}$), अर्ध ($\frac{१}{२}$), त्रिभाग ($\frac{१}{३}$) शब्द आये हैं।

जैन साहित्य में भिन्न गणित को कलासवर्ण या प्राकृत शब्द कलासवन्न से व्यक्त किया गया है। देखिये :—

परिकम्मं ववहारो रज्जुरासी कलासवन्नो य।
जावन्तावति वग्गो घनो ततह वग्गवग्गो विकप्पोत॥

(स्थानांग-सूत्र ७४७)

कला-सवर्ण :

कलाओं अर्थात् भिन्नों को जोड़ने से पहले उनका सवर्णन अर्थात् उनको समच्छेद (समहर) कर लेते थे। इसी समच्छेद को सवर्णन शब्द से व्यक्त करते थे।

यह क्रिया इतनी महत्वपूर्ण थी कि पूरे भिन्न-परिकर्म को कलासवर्ण शब्द से व्यक्त करते थे अथवा भिन्न का भी दूसरा नाम कलासवर्ण हो गया। कलासवर्ण शब्द का प्रयोग बक्षाली-पांडुलिपि (३०० ई०) में तथा महावीर (८५० ई०) एवं श्रीधर ने भी किया है। महावीर ने कलासवर्ण भिन्न-परिकर्म के अर्थ में प्रयुक्त किया है। क्योंकि यह अध्याय का नाम है तथा इसके अन्तर्गत पृथक्-पृथक् नियमों के सूत्रों में भिन्न शब्द का ही प्रयोग किया है। कलासवर्ण अब अपने जीवन के अन्तिम क्षण बिता रहा था। बाद को भिन्न के लिये जाति शब्द भी चला। महावीर ने भिन्न के प्रकार भागजाति, प्रभागजाति, भागभागजाति, भागानुबन्धजाति, भागापवाहजाति तथा भागमातृजाति, इतने प्रकार की भिन्नों को लिखा है। आधुनिक चिह्न प्रणाली ज्ञात न होने से आजकल के भिन्नों के विशिष्ट प्रश्नों को इन पृथक्-पृथक् नामों से व्यक्त किया गया है।[1]

महाभास्करीय में (पृ० १०) $\frac{1}{10}$ के लिए दशलव शब्द का प्रयोग किया है। लव भी अंश और भाग का पर्यायवाची है। श्रीपति ने गणिततिलक में भिन्न के लिये विभिन्न शब्द का भी प्रयोग किया है। यथा:—

'हरगणितवर्गविहृतांशकृतिः क्रियते विभिन्नकृतये कृतिभिः' अर्थात् विभिन्न का वर्ग=अंश वर्ग/हरवर्ग।

नीचे हिन्दी के कुछ भिन्नवाची शब्द तथा वे संस्कृत शब्द भी जिनसे कि ये व्युत्पन्न हैं दिये गये हैं :—

पाव, पउआ=पाद (पाद चतुष्पाद का चौथाई होता है)
अद्धा =अर्ध
पौना (पौन)=पादोन (किन्तु औना पौना दे दिया यहाँ पौना शब्द पूर्ण के लिये आया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में ऊनं पूर्णं वा अर्थात् यह दौलत आई है ऊन का औना और पूर्ण का पौना हो गया)

पौना अर्थात् पादोन का अर्थ है 'चौथाई कम' अतः जब अकेला होता है तभी उसका $\frac{3}{4}$ अर्थ होता है अन्यथा अन्य संख्याओं के साथ जैसे पौने आठ, पौने का 'चौथाई कम', अर्थ है अर्थात् पौने आठ=आठ-चौथाई।

सवैया,
सवाया=सपाद (मूल्य-सूत्रों में प्रयुक्त।)
तिहाई=त्रिभागिक
चौथाई=चतुर्थिक
डेढ़=द्वयर्ध

---

1. देखिये गणित-सार-संग्रह, पृष्ठ ३३-४५।

पीछे बताया गया है कि शुल्व सूत्रों में अर्ध नवम्=८½, अर्धदशम=९½ याजु-ज्योतिष श्लोक १४ में भी अर्धपंचम=४½, अर्धचतुर्थ=३½ आदि प्रयोग मिले हैं। इसी प्रकार अर्धद्वय=१½ का भी हो सकता है। अर्धद्वय का द्वयर्ध रूप सूर्यप्रज्ञप्ति में मिलता है। इसका अर्थ भी डेढ़ है। सूर्यप्रज्ञप्ति पर शुल्व सूत्रों का प्रभाव बताया ही जा चुका है।

ढाई, अढैया, अढाई=आढक (वेदांग-ज्योतिष में प्रयुक्त यथा :—

पलानि पंचाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्
त्रिभिर्विहीनं कुडुवैस्तु कार्यम् तन्नाडिकायास्तु भवेत्प्रमाणम्।)

हूंठा, अहुठ } =अर्धचतुर्थ=३½ साढ़े=सार्ध

भिन्नों की प्राचीन लेखन-प्रणाली

बटा :

भिन्नों के लेखन में पहले बिना रेखा खींचे अंश और हर ऊपर नीचे लिख दिये जाते थे जैसे $\left(\begin{matrix}१ & । & ३\\ २ & । & ४\end{matrix}\right)$। १½ को भी $\left(\begin{matrix}१\\ १\\ २\end{matrix}\right)$ लिख देते थे। यही प्रथा अरब के अलनसवी ने भी ग्रहण की। बाद को अरब निवासी बीच में रेखा खीच निकले। पढ़ने में ⅔ दो बटा तीन या दो भागे तीन पढ़ते हैं। बटा शब्द बांटना (विभाजित करना) से बना है। दो बटे तीन का अर्थ है दो को तीन से बांटा अर्थात् भाग दिया।

अंश, हर :

रेखा के ऊपर की संख्या को अंश तथा नीचे की संख्या को हर कहते हैं। ⁵⁄₇ का अर्थ होता है कि एक को सात से हृत किया, भाजित किया और उसमें से पांच भाग ले लिये। अतएव ५ को भाग या अंश कहना ठीक ही है और सात को हृत करने के कारण हार, हर, छेद, भाजक कहना भी ठीक है। क्योंकि नीचे की संख्या से भाग ही तो दिया जाता है। हार और हर दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है। यथा :—कृत्वा परीवर्तनमंशहारयोर्हरस्य तद्वत् कुलिशापवर्तने। (ग० ति०, पृ०१)

हर साम्ये कृते युतम् (बक्षाली-पांडुलिपि)

वेदांग-ज्योतिष में अंश को उत्तम और हर को अधम कहा है क्योंकि यह ऊपर और नीचे लिखे जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि वेदांग-ज्योतिष काल में भिन्न-लेखन-प्रणाली का ज्ञान था।

यह क्रिया इतनी महत्वपूर्ण थी कि पूरे भिन्न-परिकर्म को कलासवर्ण शब्द से व्यक्त करते थे अथवा भिन्न का भी दूसरा नाम कलासवर्ण हो गया। कलासवर्ण शब्द का प्रयोग वक्षाली-पांडुलिपि (३०० ई०) में तथा महावीर (८५० ई०) एवं श्रीधर ने भी किया है। महावीर ने कलासवर्ण भिन्न-परिकर्म के अर्थ में प्रयुक्त किया है। क्योंकि यह अध्याय का नाम है तथा इसके अन्तर्गत पृथक्-पृथक् नियमों के सूत्रों में भिन्न शब्द का ही प्रयोग किया है। कलासवर्ण अब अपने जीवन के अन्तिम क्षण बिता रहा था। बाद को भिन्न के लिये जाति शब्द भी चला। महावीर ने भिन्न के प्रकार भागजाति, प्रभागजाति, भागभागजाति, भागानुबन्धजाति, भागापवाहजाति तथा भागमातृजाति, इतने प्रकार की भिन्नों को लिखा है। आधुनिक चिह्न प्रणाली ज्ञात न होने से आजकल के भिन्नों के विशिष्ट प्रश्नों को इन पृथक्-पृथक् नामों से व्यक्त किया गया है।[1]

महाभास्करीय में (पृ० १०) $\frac{१}{१०}$ के लिए दशलव शब्द का प्रयोग किया है। लव भी अंश और भाग का पर्यायवाची है। श्रीपति ने गणिततिलक में भिन्न के लिये विभिन्न शब्द का भी प्रयोग किया है। यथा:—

'हरराशिवर्गविहृतांशकृतिः क्रियते विभिन्नकृतये कृतिभिः' अर्थात् विभिन्न का वर्ग = अंश वर्ग/हरवर्ग।

नीचे हिन्दी के कुछ भिन्नवाची शब्द तथा वे संस्कृत शब्द भी जिनसे कि ये व्युत्पन्न हैं दिये गये हैं :—

पाव, पउआ = पाद (पाद चतुष्पाद का चौथाई होता है)
अद्धा = अर्ध
पौना (पौन) = पादोन (किन्तु ओना पौना दे दिया यहाँ पौना शब्द पूर्ण के लिये आया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में ऊनं पूर्णं वा दद्यात् यह पंक्ति आई है ऊन का ओना और पूर्ण का पौना हो गया)

पौना अर्थात् पादोन का अर्थ है 'चौथाई कम' अतः जब अकेला होता है तभी इसका $\frac{३}{४}$ अर्थ होता है अन्यथा अन्य संख्याओं के साथ जैसे पौने आठ, पौने का 'चौथाई कम', अर्थ है अर्थात् पौने आठ = आठ-चौथाई।

सवैया,
सवाया = सपाद (शुल्व-सूत्रों में प्रयुक्त।)
तिहाई = त्रिभागिक
चौथाई = चतुर्थिक
डेढ़ = द्व्यर्ध

---

१. देखिये गणित-सार-संग्रह, पृष्ठ ३३-४५।

श्लोकों में इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। ५, २५ को इस प्रकार काटता है कि शेष आगे कुछ नहीं बचता। तो २५, ५ की निरग्रक राशि कहलाती थी (देखिए सि० शे० कुट्टक २३)।

ऐतिहासिकता :

योरुप में १५ वीं शताब्दी में लघुतम समापवर्त्य निकालने की विधि ज्ञात हुई। किन्तु उसका भलीभांति प्रयोग १७वीं शताब्दी में हुआ। हिन्दी का वितत भिन्न शब्द अंगरेजी के कन्टीन्यूड फ्रैक्शन का शब्दानुवाद है। वर्तमान रूप में वितत भिन्न को लार्ड ब्रोकर (१६२०-१६८९) ने निकाला था।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऋग्वेद काल से ही भिन्न का ज्ञान प्रारम्भ हो गया था और वेदांग-ज्योतिष अथवा शुल्व काल तक इसका ज्ञान परिपक्व हो गया था। अतः यह निश्चित है कि विश्व को भिन्न का ज्ञान भारतवर्ष ने ही दिया। चीन में छठी शताब्दी तक भिन्न-परिकर्म बड़ा कठिन समझा जाता था। चैंच चिव चेन ने अपनी पुस्तक अरिथमैटिकल क्लैसिक में लिखा है :—In learning arithmetic we are not troubled with the difficulties in multiplication and division but we are troubled with the hardships of considering fractions. अर्थात् अंकगणित के सीखने में हम को गुणा भाग करने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। हमें तो केवल भिन्नों की कठिनता सताती है। (मिकामी चाइना, पृ० ३९)।

प्रकरण १२. दशमलव

सन् १९०० के लगभग पं० मोहनलाल, पं० वंशीधर, पं० कुंजबिहारीलाल ने अंगरेजी शब्द डेसीमल का 'दशमलव' अनुवाद किया[1] जो सर्वश्रेष्ठ अनुवादों में से एक है क्योंकि लव का अर्थ भाग तथा अंश होने से दशमलव का अर्थ दशमांश हुआ। वास्तव में दशमिक अंकप्रणाली का ही दशमलव अंकप्रणाली एक विस्तार मात्र है जिसमें प्रथम स्थान में इकाई के १० भाग किये जाते हैं इस प्रकार क्रमशः दस २ भाग होते जाते हैं। अतएव यह नाम सार्थक, सरल तथा अंगरेजी शब्द का समध्वनिक भी है। वैसे दसवें भाग के लिए दशलव शब्द भास्कर प्रथम (६२९ ई०) ने भी प्रयुक्त किया है। देखिये :—

अचलहृतनयांशा लिप्तिका पञ्चनिघ्ने

गगनरसविभक्ते लिप्तिकास्तापि पूर्वाः ।

प्रहतगुणयमांशास्तत्पराः शोधनीयाः

दशलव सहितेन्द्रचन्द्रभुक्तेः न भानोः ॥ (म० भा०, पृ० १०)

---

[1]हिन्दी भाषा का इतिहास, रचयिता द्विवेदी, पृष्ठ ९५।

पंक्तियाँ हैं। तावन्तस्तावन्तः का अर्थ ऐसा ही है जैसा अंगरेजी में हम बोलते हैं कि यह थ्री बाई थ्री है। तीन क्षैतिज और तीन ऊर्ध्वाधर पंक्तियों के मिलाने से कुल क्षेत्रफल के बराबर का वर्ग तथा ९ क्षेत्रफल के एकक वर्ग मिलते हैं। इन दोनों वस्तुओं का नाम वर्ग हो गया। यहाँ पर वर्ग का प्रारंभिक अर्थ पंक्ति या समूह ही है। क्षेत्रफल तथा उसके एककों के भावों के आधार पर संख्यात्मक वर्ग शब्द
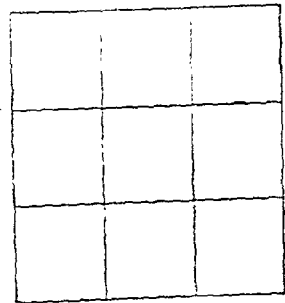
की सृष्टि हुई क्योंकि वर्ग-क्षेत्रफल में भुजा की लम्बाई को उसी से गुणा करना पड़ता है बोलने में यही बोलते हैं कि ३ फुट लम्बी रेखा, ९ वर्ग फुट क्षेत्रफल बनाती है। इसी प्रकार अंकगणित में भी यही कहते कि ३ का वर्ग ९ होता है। क्षेत्रफल वाली भाषा में फुट शब्द निकाल दें तो अंकगणितीय वर्ग की भाषा से मिलान हो जाता है। दोनों ही प्रक्रियाओं में उस संख्या को उसी संख्या से गुणा करना पड़ता है अतः समान प्रक्रिया होने से शब्दावली भी समान हुई। परवर्ती संख्यात्मक वर्ग शब्द अतः ज्यामितीय वर्ग से उत्पन्न हुआ है। आर्यभट तथा श्रीपति ने दोनों का वर्णन भी एक साथ दिया है। यथा :—

> वर्गः समचतुरश्रः फलं च सदृशद्वयस्य संवर्गः।
> सदृशत्रयसंवर्गो घनस्तथा द्वादशाश्रिः स्यात्॥ (आर्य० ग० पा०)
> वर्गोऽभिघातः सदृश द्विराश्योः घनः समानत्रितयस्य घातः।
> चतुर्भुजं क्षेत्रमुशन्ति वर्गं स्याद्द्वादशाश्रिस्तु घनः स वृन्दः॥
> (श्रीपति कृत सि० शे०)

आर्यभट कहते हैं कि वर्ग का अर्थ समचतुर्भुज है और उसका क्षेत्रफल समान दो राशियों के गुणनफल के बराबर होना है। सदृश तीन राशियों के घात को घन कहते हैं तथा उस द्वादशाश्रि को भी घन कहते हैं। श्रीपति कहते हैं कि वर्ग समान दो राशियों के गुणा के बराबर होता है और समचतुर्भुज क्षेत्र को भी वर्ग कहते है, इसी प्रकार घन समान तीन राशियों के गुणनफल के बराबर होता है और समद्वादश कोरों वाले क्षेत्र को भी घन कहते हैं जिसका दूसरा नाम वृंद भी है।[1]

अन्य अर्थ :

आर्यभट ने वर्ग शब्द अयुग्म स्थान तथा अवर्ग 'युग्मस्थान' के लिए भी प्रयुक्त किया है। यथा :—

> वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः।
> खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा॥ (आ० गी० पा०

---

१. वृंद शब्द, घन के अर्थ में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

इस प्रकार वर्ग शब्द जो प्रारंभ में समूह के अर्थ में था, बाद में पंक्ति के अर्थ में आया। पंक्तियों से तात्पर्य या कतारें जैसे बागों में पेड़ों की कतारें। वर्ग का क्षेत्रफल निकालते समय वर्ग ऐसी ही पंक्तियों में विभाजित किया जाता है अतएव समचतुरश्र के स्थान में छोटा-सा वर्ग शब्द चलने लगा। वर्ग के क्षेत्रफल निकालने में उसी संख्या को उसी से गुणा करना पड़ता है अतएव अंकगणितीय द्विघात के अर्थ में भी वर्ग शब्द प्रयुक्त होने लगा। इस प्रकार जो शब्द कभी वस्तुवाचक था वह आगे चलकर भाववाचक बन गया।

प्रकरण १४. घन

घन शब्द निम्नलिखित तीन गणितीय अर्थों में अति प्राचीन काल से प्रयुक्त होता चला आ रहा है :—

१. ठोस (Solid)।   २. समान तीन राशियों का गुणनफल।
३. घनक्षेत्र।

प्रथम अर्थ में भगवती सूत्र (३०० ई०पू०, सूत्र ७२४-७२६) तथा अनुयोग-द्वार सूत्र (सूत्र १२३-१४८) में प्रयोग मिलते हैं। वहाँ घनत्र्यस्र, घनचतुरस्र, घन आयत, घनवृत्त तथा घनपरिमंडल शब्दों में घन प्रथम अर्थ में ही आया है। द्वितीय अर्थ में उत्तराध्ययन सूत्र (३०।१०,११) में घन वर्ग शब्द आया है जिसका अर्थ है $(क^3)^2 = क^6$। यहाँ घन का अर्थ सदृश तीन राशियों का गुणनफल ही हुआ। आर्यभट के द्वितीय तथा तृतीय अर्थों में प्रयोग वर्ग शब्द के अन्तर्गत दिखाये जा चुके हैं। बक्षाली-पांडुलिपि में भी घन शब्द क्यूब के अर्थ में आया है।

घनफल, वर्गफल :

वर्गफल तथा घनफल शब्द अंकगणितीय तथा रेखागणितीय दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। वर्गफल का अर्थ है वर्ग का क्षेत्रफल एवं समान दो राशियों का गुणफल अर्थात् २^2 वर्ग है तथा ४ वर्गफल है इसी प्रकार २^3 घन तथा ८ घनफल है। वर्गफल शब्द आर्यभट के 'फलं च सदृशद्वयस्य संवर्गः' वाले श्लोक में आया है। इसी प्रकार घनफल शब्द ब्रह्मगुप्त के निम्न श्लोक में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ घनफल का अर्थ आयतन है :—

> आकृति-फलमौच्याहृतमग्रतलैक्यार्धमौच्चयदैर्घ्यगुणं।
> घनगणितमिष्टका-घनफलेन हृतमिष्टका-गणितम्॥ (ब्रा०स्फु०सि०१२।४७।)

आयतन :

घनफल के अर्थ में आयतन शब्द का प्रयोग आपस्तंब शुल्ब सूत्र में मिलता है:—

> "गार्हपत्याहवनीययो रन्तो नियम्य लक्षणेन दक्षिणापार्श्व
> निमित्तं करोति तद्दक्षिणाग्ने रायतनम्" (पृ० ६६)

प्रकरण १५. मूल

वर्ग और वर्गमूल दोनों ही संकल्पनाओं की नींव शुल्व सूत्रों में पड़ गई थी। देखिये कात्यायन शुल्व सूत्र की निम्न पंक्तियां :—

'द्विःप्रमाणा चतुःकरणी, त्रिःप्रमाणा नवकरणी, चतुःप्रमाणा षोडशकरणी'। 'यावत्प्रमाणा रज्जुर्भवति तावन्तस्तावन्तो वर्गाभवन्ति'।

अर्थात् दो एकक लंबी रज्जु चार एकक क्षेत्रफल वाला वर्ग तथा तीन एकक लम्बी रज्जु नौ एकक क्षेत्रफल वाला वर्ग एवं चार एकक लम्बी रज्जु सोलह एकक क्षेत्रफल वाला वर्ग बनाती है। जितने एकक लम्बी रज्जु होती है वह उतने गुणित उतने ही वर्ग बनाती है।

इस स्थल में करणी शब्द का वास्तविक तथा मौलिक अर्थ करने वाली ही है किन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि इस सम्बन्ध में बहुत सी संख्यायें और उनके वर्गफलों की संख्यायें सामने उपस्थित हो जाती हैं तथा दोनों ओर पंक्तियों और स्तंभों में विभाजित करने से छोटे-छोटे वर्ग स्वयं उपस्थित हो जाते हैं, अतएव भविष्य में आने वाले वर्गमूल शब्द की नींव में करणी शब्द ही है। यद्यपि करणी तथा रज्जु वर्ग की एक भुजा को कहते थे किन्तु ये ही ज्यामितीय संकल्पनायें अंकगणितीय 'वर्ग' और 'वर्गमूल' इन दोनों संकल्पनाओं की जननी है। करणीगत शब्द एक ऐसे वर्गमूल चिह्न के अन्तर्गत इस अर्थ में आता है तथा करणी शब्द एक ऐसे वर्गमूल के अर्थ में आता है जिसका मान संख्यात्मक रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता है किन्तु यह वर्ग की एक भुजा के द्वारा अवश्य निरूपित किया जा सकता है।

प्रथम प्रयोग :

मूल शब्द का प्रथम प्रयोग अनुयोगाद्वार-सूत्र (लगभग १०० ई०) में तथा समस्त परवर्ती गणितीय ग्रंथों में मिलता है। बक्षाली-पांडुलिपि में इसका सांकेतिक शब्द 'मू' भी है। देखिये:—

को राशिः पंचयुत : मूलदः

०	५यु	मू	०
१	१		१

मूलद राशि से तात्पर्य उस संख्या से है जिसका पूरा-पूरा वर्गमूल निकल सके।

वर्गमूल का दूसरा पर्यायवाची शब्द 'पद' (आधार) भी है। देखिये आर्यभट और ब्रह्मगुप्त के प्रयोग :—

भागं हरेदवर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन।
वर्गाद्वर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम् ॥ (आर्य० ग० पा० ४)

संवर्गितांश वर्गच्छेदकृति-विभाजितो भवति वर्गः ।
संवर्गितांश-मूलं छेदपदेनोद्धृतं मूलम् ॥ (ब्रा०स्फु०सि० १२।५)

इसमें छेदमूल तथा पद शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

मूल का शाब्दिक अर्थ पेड़ या पौधे की जड़ है । इसके लाक्षणिक अर्थ आदि कारण, आधार आदि हैं शुल्ब सूत्रों में मूल को करणी शब्द से द्योतित किया है क्योंकि करणी अर्थात् रज्जु से जो वर्ग की एक भुजा के माप के बराबर होती थी पूरा-पूरा वर्ग बन जाता था, अतएव करणी वास्तव में वर्ग का मूल ही थी । यदि भुजा नहीं तो वर्ग कैसा । अतएव भुजा को करणी (कारण) तथा वर्ग को कृति कहा गया । अतः करणी वर्गमूल का द्योतक हो गई । बाद में जब करणी शब्द उन राशियों के लिये प्रयुक्त होने लगा जिनका पूरा-पूरा वर्गमूल न निकाला जा सके तो मूल शब्द करणी के स्थान पर आ गया । बक्षाली-पांडुलिपि में यह अर्थ-परिवर्तन देखने को मिलता है और उससे भी पूर्व जैन-ग्रंथों में ।

मूल शब्द को अरबी में 'जज्र', लैटिन में 'रैडिक्स' एवं अंगरेजी में 'रूट' शब्द से अनूदित किया गया क्योंकि इन सबका शाब्दिक अर्थ जड़ ही है तथा मूल शब्द का भारतीय प्रयोग विदेशी प्रयोगों से अधिक प्राचीन है ।

घनमूल शब्द भी आर्यभटीय तथा परवर्ती गणित के ग्रंथों में मिलता है । यथा :—

अघनाद् भजेद् द्वितीयात् त्रिगुणेन घनस्य मूलवर्गेण ।
वर्गस्त्रिपूर्वगुणितः शोध्यः प्रथमाद् घनश्च घनात् ॥

(आर्यभटीय गणित पाद)

प्रकरण १६. त्रैराशिक नियम

व्युत्पत्ति :

त्रिराशि अर्थात् प्रमाणराशि, फलराशि तथा इच्छाराशि से संबंधित होने के कारण इसको त्रैराशिक नियम कहते हैं । भास्कर प्रथम (६२९ ई०) ने इसके लिए अनुपात शब्द भी प्रयुक्त किया है । बक्षाली-पांडुलिपि (भाग ३, १७९, १८८) में इसके लिये त्रैराशिक विधान शब्द भी प्रयुक्त हुआ है अतः इसका ज्ञान तृतीय शताब्दी में भारत में अवश्य था । इस नियम में तीन राशियाँ अर्थात् (१) प्रमाण राशि, (२) फलराशि, (३) इच्छाराशि दी हुई होती हैं और चतुर्थ राशि अज्ञात होती है जिसका मान $\frac{\text{इच्छाराशि} \times \text{फलराशि}}{\text{प्रमाणराशि}}$, इस नियम से निकाल लेते हैं जैसे १००

पुस्तकों का मूल्य ५०० रुपये है तो ४०० पुस्तकों का कितना मूल्य होगा। यहाँ प्रमाणराशि १००, फलराशि ५०० एवं इच्छाराशि ४०० है। अतएव अभीष्ट राशि का मान $= \frac{४०० \times ५००}{१००} = २०००$ रु०। आर्यभट द्वितीय ने प्रमाण तथा फल के स्थान पर मान तथा विनिमय शब्द प्रयुक्त किए हैं। श्रीपति ने गणिततिलक में इच्छा के स्थान पर अभीप्सा शब्द भी प्रयुक्त किया है जो इच्छा का पर्यायमात्र है। आर्यभट प्रथम ने इस नियम की व्याख्या करते हुए लिखा है :—

व्यस्त त्रैराशिक :

त्रैराशिक फलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा।
लब्धं प्रमाणभाजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात्॥

अर्थात् त्रैराशिक विधान में फलराशि को इच्छाराशि से गुणित करे और प्रमाणराशि से विभाजित करे तब अभीष्ट फल प्राप्त होता है। यहाँ प्रमाणराशि (प्रथमराशि) से इच्छाराशि यदि बड़ी होती थी तो अभीष्ट फल (चतुर्थराशि) भी दत्तफल से बड़ा होता था किन्तु यदि इच्छाराशि के बढ़ने पर अभीष्ट फल कम होता जाय तो इस त्रैराशिक को व्यस्त-त्रैराशिक कहते हैं और तब इसमें प्रमाण और फल राशियों को गुणा करके इच्छाराशि से भाग देकर अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं जैसा भास्कर द्वितीय ने कहा है :—

इच्छावृद्धौ फले ह्रासो ह्रासे वृद्धिः फलस्य तु।
व्यस्तंत्रैराशिकं तत्र ज्ञेयं गणितकोविदैः॥ (लीलावती)

आदि और अंतराशि समान जाति की हों तो यह सम त्रैराशिक तथा विषय जाति की हों तो व्यस्त त्रैराशिक कहलाता है। व्यस्त का अर्थ है उल्टा। अर्थात् गुणा के स्थान पर भाग तथा भाग के स्थान में गुणा की जाय, देखिये श्रीधर के टीकाकार की एतद्विषयक उक्ति :—

"विपरीतमस्तं व्यस्तं गणित व्यस्तत्वं च गुणाभाग हार विपर्यासात्"
(पाटीगणित, पृ० ४३)

त्रैराशिक नियम में तीनों राशियों को एक पंक्ति में लिखते थे जैसे, १ रु० की पांच नारंगी मिलती हों तो २० रु० में कितनी मिलेंगी ? इस प्रश्न के हल करने में तीनों राशियों को निम्न प्रकार लिखते थे :—

१	५	२०

इसी क्रम से मध्यकाल में अरब वाले तथा लैटिन लेखक भी तीनों संख्याओं को लिखते थे। आज भी अनुपात लगाते समय इन तीन संख्याओं को १ : ५ : २० : क इसी तरह लिखते हैं। उन्होंने (अरब निवासियों ने) त्रैराशिक शब्द भी अपनाया

था किन्तु प्रमाणफल, इच्छा ये शब्द नहीं लिये थे। अलबरूनी ने एक ग्रंथ इस विषय पर बनाया उसका नाम 'फीराशिकात-अल-हिन्दी' (हिंदुओं का राशिक) रखा। ऐसा प्रतीत होता है कि त्रैराशिक, पंचराशिक आदि शब्दों में त्रि, पंच आदि शब्द संख्यावाचक समझ कर निकाल दिये और शेष राशिक शब्द का बहुवचन राशिकात कर लिया। जैसे किताब का बहुवचन किताबात।

अरब में यह नियम ८ वीं शताब्दी में पहुँचा। वहाँ से यह योरुप पहुँचा और इसको गोल्डन रूल शब्द से वहाँ पुकारा गया। देखिये १७वीं शताब्दी के अंगरेज गणितज्ञ हाडर के विचार :-- The 'Rule of Three' is commonly called the 'Golden Rule' and indeed it might be so termed for as Gold transcends all other metals, so doth this rule all others in arithmetic.

अर्थात् त्रैराशिक नियम को प्रायः गोल्डन रूल कहते थे और इसका यह नाम अन्वर्थक है क्योंकि जिस प्रकार स्वर्ण सब धातुओं में श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार यह नियम भी समस्त अंकगणितीय नियमों में श्रेष्ठ है। रूल आफ थ्री, शब्द भी त्रैराशिक के लिये अंगरेजी में व्यवहृत होता है जो त्रैराशिक शब्द का अनुवाद है। भारतीय गणितकारों ने भी इस नियम की बड़ी प्रशंसा की है :—

त्रैराशिक की प्रशंसा :

अस्तित्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मति :।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते ॥ (लीला०, पृ० ४७)

अर्थात् त्रैराशिक नियम ही समस्त अंकगणित है और विमलबुद्धि ही बीजगणित है। अर्थात् समस्त अंकगणित त्रैराशिक से ओतप्रोत है। एक दूसरे स्थान पर उन्होंने त्रैराशिक नियम को भगवान के समान सर्वव्यापक बताया है। बीजगणित में भी इस नियम की व्याप्ति बताई है। यथा :—

यत्किञ्चिद् गुणभागहारविधिना बीजेऽत्र वा गण्यते।
तत्त्रैराशिकमेव निर्मलधियामेवावगम्यं विदाम् ॥
एतद्बहुधाऽस्मदादि जडधीधीवृद्धिबुद्ध्या बुधैः।
तद्भेदान सुगमान् विधाय रचितं प्राज्ञैः प्रकीर्णादिकम् ॥ (लीला०, पृ० १८७)

पंचराशिक, सप्तराशिक आदि :

पंचसप्त नवराशिकादिकेऽन्योऽन्यपक्षनयनं फलच्छिदाम् ।
संविधाय बहुराशिजे बधे स्वल्पराशिवध भाजिते फलम् ।। (लीला०, पृ० ५८)

वक्षाली के त्रैराशिक विधान शब्द के सजातीय शब्द पंचराशिक विधान को श्रीपति ने भी प्रयुक्त किया था । यथा :—

मासेन पंचकशतेन हि वत्सरेण
षट्सप्ततेर्भवति हन्ति कलान्तरं किम् ।
कालं फलं च वद मूलधनं च ताभ्याम्
चेत्पंचराशिकविधानमवैहि विद्वन् ।। (ग० ति० ९८)

टीकाकार सिंहतिलकसूरि ने गणिततिलक के पृष्ठ ७५ पर बहुराशिक शब्द भी प्रयुक्त किया है ।

ऐतिहासिकता :

त्रैराशिक, सप्तराशिक, शब्द अरब पहुँच कर फिर भारत में अरबासत्ता होकर लौटे ।

त्रैराशिक अनुपातमात्र ही है । भारत में ब्रह्मगुप्त ने त्रैराशिक के प्रश्न को जिस प्रकार लिखा, वही प्रकार अरब वालों ने अनुकरण किया । ब्रह्मगुप्त ने ५/४ पल वस्तु के दाम ३७/४ पण हैं तो २१/२ के क्या दाम होंगे । इस प्रश्न को उन्होंने निम्न रीति से लिखा है :—

५	३७
४	४
२१	०
२	

यहाँ ० अज्ञात राशि है जिसे आजकल य (x) से द्योतित करते हैं ।

रब्बीबेन एजरा ने भी आधुनिक ४७:९=६३ : य को ४७ ६३ इस
७ ०
प्रकार लिखा । भारतवर्ष में समीकरण के दोनों पक्षों को भी ऊपर नीचे लिखा जाता था । जिसको ब्रह्मगुप्त ने अव्यक्तान्तर-भक्त......वाले श्लोक[1] में तदधस्तात् कह के प्रगट किया । अरब वाले गणितीय ज्ञान के लिये ब्रह्मगुप्त के विशेष ऋणी हैं । उन्होंने ब्रह्मगुप्त के दोनों ग्रंथ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त तथा खंडखाद्यक को 'सिंदहिंद तथा अलअर्कंद' नाम से अनुवाद कराये ।

ऐकिक नियम :

ऊपर यदि बीच में १ का मान निकालने के लिए एक पंक्ति और बढ़ा दी जाये तो यही ऐकिक नियम कहलायेगा अर्थात् एक वस्तु का मान निकाल कर फिर वस्तुओं का मान निकालना ।

---

१. देखिये बीजगणित ग्रन्थ, अध्याय ३ ।

प्रकरण १७. अनुपात

यह शब्द अनु+पत् धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है पीछे २ गिरना अर्थात् अनुसरण करना, पीछा करना। कालिदास ने शकुन्तला नाटक में लिखा है :—

ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दे दत्तदृष्टि:।
पश्चार्द्धेन प्रविष्ट: शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकार्यम्॥

यहाँ अनुपतति का अर्थ पीछा करते हुये ही कहा है। अनु का अर्थ अनुरूप अथवा अनुसार भी होता है जैसे अनुनाद, अनुगुण। अनुपात शब्द का भी अर्थ है 'अनुरूप: त्रैराशिकेन पात:' अथवा 'त्रैराशिकमनुसृत्य पात:' अर्थात् त्रैराशिक के अनुरूप अथवा अनुसार राशियों का पात अर्थात् क्रमिक स्थिति है जिसमें। त्रैराशिक नियम में राशियों का क्रम इस प्रकार —

५ ४	३७ ४
२१ २	०

अथवा इस प्रकार । १ । ५ । २० । था।[1]

राशियों का लगभग वही क्रम है जो कि अनुपात में होता है, अतएव अनुपात शब्द अन्वर्थक है।

प्रथम प्रयोग :

अनुपात शब्द का प्रथम प्रयोग वराहमिहिर का मिलता है। देखिये :—

लिप्ताद्वयेन हरिजे ग्रपूर्णेण मेरगोऽगुलं भवति।
अनुपातोऽन्तरसंस्थे कर्त्तव्यो दृष्टियुक्तार्थम्॥ (पं०सि०, पृ० ३०)

अर्थात् क्षितिज पर किसी खगोलीय पिंड के व्यास की दो लिप्ताओं से एक अंगुल आयाम होता है जबकि नभोमध्य में होने से ३ लिप्ताओं से १ अंगुल आयाम होता है यदि वह पिंड क्षितिज और नभोमध्य के बीच स्थित हो तो अनुपातिक गणना-विधि से दृक्संगति करे।

इसके उपरान्त भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के पृष्ठ ४४ तथा लघु-भास्करीय के पृ० ४२ में अनुपात शब्द का प्रयोग त्रैराशिक के अर्थ में किया है।[2] आर्यभटीय के गणितपाद श्लोक २६-२६½ की टीका में उन्होंने कहा है 'आचार्य आर्यभट ने तो यहाँ पर केवल त्रैराशिक का वर्णन किया है, पंचराशिक इत्यादि अनुपात

१. देखिये हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास, पृ० १६६, २०५।
२. अंग्रेजी के प्रोपोरशन शब्द के भी दोनों अर्थ हैं।

विशेषों का ज्ञान कैसे किया जाय ? उत्तर भी स्वयं देते हैं । 'आचार्य ने अनुपात के मूलभूत सिद्धांत का वर्णन किया है । इसी सिद्धांत से पंचराशिक आदि सब सिद्ध हो जाते हैं । इससे प्रतीत होगा कि अनुपात और त्रैराशिक नियम एक जाति के नियम ही समझे जाते थे । महावीर ने तो व्यस्त त्रैराशिक के स्थान पर व्यस्तानुपात शब्द तक प्रयुक्त किया है ।' ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०) ने 'अनुपात' शब्द निम्न श्लोक में वर्तमान अर्थ में ही प्रयुक्त किया है :—

कर्णावलम्बयुती खण्डे कर्णावलंबयोरधरे ।
अनुपातेन तदूने ऊर्ध्वे सूच्यां सपाटायाम् ।। (ब्रा०स्फु०सि० १२।३२)

निष्पत्ति ।

अरबी शब्द निस्बत (Ratio) को सम्राट् जगन्नाथ ने अपने ग्रंथ रेखागणित में 'निष्पत्ति' के रूप में अपना लिया । देखिये—

'एकोराशिर्द्वितीयराशेरंशो भवति वा गुणगुणिततुल्यो भवति एतादृशं यत्रराशिद्वयं भवति तत्र निष्पत्तिरित्युच्यते' अर्थात् जब एक राशि द्वितीय राशि का अंश हो अथवा उसकी गुणगुणित हो तो इन दोनों में निष्पत्ति होती है ।

प्रयोग कबीरदास का है अर्थात् १६ वीं शताब्दी के प्रारंभ का। संस्कृत में सूद के अर्थ में वृद्धि, कलान्तर तथा कुसीद[1] शब्द आए हैं यथा :—

'अर्थप्रयोगस्तु कुसीदं वृद्धिर्जीविका।' (अमर कोष)

'प्रेतस्य पुत्राः कुसीदं दद्युः।' (कौटिल्य अर्थशास्त्र)

वृद्धि (ब्याज) दो प्रकार की होती थी, सरलवृद्धि तथा चक्रवृद्धि। ये शब्द गौतमधर्मसूत्र, नारदसंहिता, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों में प्रयुक्त हुये हैं। चक्रवृद्धि में ब्याज पर ब्याज और फिर ब्याज पर ब्याज लगता है। ब्याज का एक चक्र सा चल जाता है अतएव उसे चक्रवृद्धि कहते हैं। बक्षाली-पांडुलिपि में ब्याज नियमों को 'हुण्डिका समानयन-सूत्र' से उद्बोधित किया गया है। हिंदी के हुण्डी शब्द का इस प्रकार इतना प्राचीन प्रयोग लगता है। किश्त के लिये वहाँ चान्त तथा मूलधन के लिए प्रवृत्ति तथा पूंजी को नीवी शब्द प्रयुक्त हुये हैं।

प्रयोग :

अन्वेषण करने पर संस्कृत में ब्याज शब्द सूद के अर्थ में गणिततिलक की टीका में सिंहतिलक सूरि ने (लगभग १२७५ ई०) अनेक बार प्रयुक्त किया है।[2] उन्होंने इस परिच्छेद का नाम भी 'व्याजोपजीवि वृत्ति' रखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिंहतिलक सूरि के समय उनके प्रांत में (संभवतः गुजरात) यह शब्द प्रचलित रहा होगा। आज भी हमारे यहाँ व्यवहार शब्द भी व्योहार बनकर सूद के अर्थ में बोला जाता है और व्योहार पर पैसा देने वाले को बोहरे कहते हैं। उत्तर भारत में ब्याज तथा दक्षिण भारत में वड्डी (वृद्धि) शब्द इस अर्थ में चलता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी कहा है :—

'सपादपणा धर्म्या मासवृद्धिः पणशतस्य। पंचपणा व्यावहारिकी' अर्थात् १¼ प्रतिशत मासिक ब्याज कानूनी है। वाणिज्य में ५ प्रतिशत ब्याज चलता था। इस प्रयोग से ज्ञात होता है कि व्यवहार शब्द में सूद के अर्थ का कुछ आभास आ निकला था। कौटिल्य अर्थशास्त्र में व्याजी नाम का एक क्षतिपूरक

(दस्तावेज) ऐसा करना जिसकी धनराशि पर ब्याज ऐसी प्रतिशत से ऐसे समय को निश्चित किया जाता था जिससे कि ब्याज पूर्ववत् ही मिले। एकपत्रीकरण के स्थान पर महावीर ने एकीकरण शब्द प्रयुक्त किया था जिसका रंगाचार्य ने औसतीकरण (averaging) अनुवाद किया था किंतु यह अनुवाद उचित प्रतीत नहीं होता। एकपत्रीकरण अथवा एकीकरण का अर्थ तो केवल कई दस्तावेजों को एक दस्तावेज करना है।

परिभाषा :

बीजगणित की आधुनिक परिभाषा यह है—"अंकगणितीय नियमों का व्यापकीकरण अथवा संख्याओं के गुणधर्मों का संकेताक्षरों क, ख, ग आदि द्वारा अमूर्त्त अनुसंधान।"

पर्याय :

बीजगणित शब्द के निम्नलिखित पर्याय हैं। १. कुट्टकगणित, २. अव्यक्त-गणित।

प्रयोग :

बीज शब्द सर्वप्रथम आर्यभटी की भास्कर प्रथम (६२९ ई०) द्वारा रचित टीका में देखने को मिलता है। ब्रह्मगुप्त रचित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में इसके लिये कुट्टक शब्द अध्याय नाम के रूप में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उसमें अव्यक्त शब्द भी अज्ञातराशि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा :—

अव्यक्तान्तरभक्तं व्यस्त रूपान्तरं समेऽव्यक्तः।
वर्गाव्यक्ताः शोध्या यस्माद्रूपाणि तदधस्तात् ॥

पृथूदक् स्वामी (८६० ई०) ने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त की टीका में बीजचतुष्टय का उल्लेख किया है। श्रीपति (१०३९ ई०) ने सिद्धांत शेखर में बीजगणित के अध्याय का नाम अव्यक्तगणित रखा है। बीजगणित पर श्रीधर, पद्मनाभ, मस्करी पूरण, और मुद्गल के ग्रंथ अब अप्राप्य हैं, केवल भास्कर द्वितीय (१११४ ई०) का बीज-गणित नामक ग्रंथ मिलता है। यह प्रारंभ में सिद्धांत-शिरोमणि का एक अध्याय मात्र था। भास्कर द्वितीय ने निम्नलिखित श्लोक में बीजगणित शब्द का प्रयोग किया है।

जनसंसदि दैवविदां तेजो नाशयति भानुरिव भानाम् ।
कुट्टाकार-प्रश्नैः पठितैः किं पुनः शतशः ॥

अर्थात् जैसे सूर्य नक्षत्रों के तेज को नष्ट कर देता है उसी प्रकार कुट्टक के प्रश्न कहने मात्र से ज्योतिषियों के मुख की कान्ति को नष्ट कर देते हैं और जो कुट्टक के शतशः प्रश्नों को निकालना जानता हो उसकी तो बात ही क्या ।

कहा जाता है कि यूनानी गणितज्ञ डायोफैंटस को भी कुट्टक सावन में बड़ा आनन्द आता था और उसको द्विघात अनिर्धारित समीकरणों का जन्मदाता भी कहा जाता है किन्तु वह उनका मान संख्यात्मक तथा अकरणीगत ही निकाल सका । भारतवासियों ने कुट्टक विधि का वैज्ञानिक उपचार किया । प्रो० कजोरी कहते हैं :—

> Indeterminate analysis was a subject to which Hindu mind showed a happy adaptation. We have seen that this very subject was a favourite with Diophantus and that his ingenuity was almost inexhaustible in devising solutions for particular cases. But the glory of having invented general methods in this most subtle branch belongs to the Indians. The Hindu indeterminate analysis differs from Greek not only in methods but also in aim. The object of the former was to find all possible integral solutions. Greek analysis on the other hand demanded not necessarily integral but simple rational answers. Diophantus was content with a single solution, the Hindus endeavoured to find all (Cajore's History, page 94-95).

अव्यक्तगणित :

अव्यक्तगणित से तात्पर्य अव्यक्त राशियों (अज्ञात राशियों) द्वारा प्रतिपादित गणित से है । बीजगणित के प्रादुर्भाव से राशियाँ दो प्रकार की हो गईं । एक व्यक्तराशियां जैसे १, २, ३, ४,·······आदि अंकगणितीय संख्यायें, दूसरी क, ख, ग आदि अव्यक्तराशियां । चूंकि इनका मान निकालने से आता है स्वयं स्पष्ट नहीं होता अतः वह अव्यक्त कहलाईं । अव्यक्त शब्द का इस अर्थ में प्रथम प्रयोग ब्रह्मगुप्त का ही प्रतीत होता है । यथा :—

अव्यक्त :

अव्यक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं समेऽव्यक्तः ।
वर्गाव्यक्ताः शोध्या यस्माद्रूपाणि तदधस्तात् ॥

अर्थात् अचरों के अन्तर को गुणांकों के अन्तर से भाग देने पर अव्यक्त का

विविध वर्ण की गोलियाँ प्रयुक्त की जाती हों। कुछ पाश्चात्य विद्वान गुलिका शब्द के प्रयोग के कारण आर्यभटीय गणित पर यूनानी डायफैण्ट्स का प्रभाव मानते हैं किन्तु उनको यह ज्ञात नहीं कि भारत में अज्ञात राशि के लिए यावत्तावत् शब्द स्थानांग-सूत्र (३२५ ई० पू०) में ही प्रयुक्त हो गया था।

अव्यक्त राशि शब्द के विदेशी भाषाओं में अनुवाद :

अव्यक्तराशि, अज्ञातांक तथा बीज शब्दों का प्रभाव सुदूर देशों तक गया। मिस्र में इसको हो (Hau) कहते थे जिसका अर्थ है राशि (Heap, mass)। एतदर्थक यूनानी शब्द 'प्लीदो मोनेडोन अलोगोन' (Plethos monadon alogon) है। इसका भी अर्थ है अव्यक्त (Undefined number of units) चीन का भी एतदर्थ शब्द 'यूएन' (yuen) है जिसका अर्थ है 'बीज'।

ऐतिहासिकता :

बीजगणित के इतिहास को गणित के इतिहासवेत्ता, ब्राह्मण (२००० ई० पू०) तथा शुल्व साहित्य (८०० ई० पू०) से ही प्रारम्भ करते हैं। वर्गाकार वेदियों को आयताकार करना निम्नलिखित समीकरण साधन के समान था :—

$$क\,य = ग^2$$

आयताकार को वर्गाकार करने में निम्नलिखित समीकरण अन्तर्निहित है :—

$$य^2 + र^2 + = ल^2$$

उन्होंने ऐसी अनेक सांख्यिक सारणियाँ भी दी हैं, जैसे :—

$$३^2 + ४^2 = ५^2$$
$$१२^2 + ५^2 = १३^2$$

किन्तु इनका यह बीजगणित ज्यामितीय बीजगणित था।

स्थानांगसूत्र में डा० दत्त के मतानुसार बीजगणित के निम्नलिखित विषयों का उल्लेख है :—

यावत्तावत (Simple equations), वर्ग (Quadratic equations), घन (Cubic equations), वर्गवर्ग (Biquadratic equations), विकल्प (Permutations and Combinations)।

बख्शालीपाण्डुलिपि में इष्टकर्म सम्बन्धी कुछ ऐसे प्रश्न मिलते हैं जिनका हल बिना सरल समीकरणों के साधन के हो ही नहीं सकता।[1]

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिए डा० दत्त का हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ३०-४०।

आर्यभट का निम्न श्लोक उपलब्ध हिन्दू गणित साहित्य में बीजगणित सम्बन्धी प्रथम श्लोक माना जाता है :—

गुलिकान्तरेण विभजेद्द्वयोः पुरुषयोस्तु रूपकविशेषम् ।
लब्धं गुलिकामूल्यं यद्यर्थकृतं भवति तुल्यम् ।

अर्थात् दो पुरुषों की ज्ञातधन की राशियों के अन्तर को वस्तुओं की अज्ञात संख्याओं के अन्तर से भाग देते हैं। इस प्रकार प्राप्त लब्धि अज्ञातराशि के मूल्य के बराबर होती है। परमेश्वर (१४३० ई०) ने आर्यभटीय की टीका में इस श्लोक पर लिखा है :—

"अव्यक्तमूल्यानां मूल्यप्रदर्शनमित्याह। गवादिद्रव्यं गुलिकाशब्देनोच्यते रूपकशब्देन नगादि-संज्ञितं स्वर्णादि द्रव्यम्।" परमेश्वर ने इस श्लोक में वर्णित नियम को समझाने के लिए निम्न उदाहरण भी दिया है :—

समस्वयो रूपकाणां शतंषष्टिः क्रमाद्धनम् ।
गावष्षड्वणिजश्चाष्टौ तत्र गोमूल्यकं कियत् ॥

अर्थात् दो बनियों के पास कुछ गायें तथा कुछ नकद रुपया है। पहले के पास १०० रु० तथा ६ गायें दूसरे के पास ६० रु० तथा ८ गायें हैं। यदि दोनों की धनराशियां जिसमें गायों का मूल्य सम्मिलित है बराबर हों तो दोनों पर कुल कितनी सम्पत्ति है अर्थात् १०० + ६य = ६० + ८ य, २य = ४०, य = २०, उत्तर २२० ।

इस उल्लेख से तीन बातों का पता चलता है : (१) आर्यभट को संभवत: बीजगणित का ज्ञान था, (२) भास्कर प्रथम के समय (६२६ ई०) बीजगणित का अवश्य ज्ञान था, (३) ६२६ ई० से पूर्व भी बीजगणित के ग्रन्थ वर्तमान थे जिनमें से कुछ आर्यभट (४६६ ई०) से पहले अवश्य रहे होंगे। ब्रह्मगुप्त और भास्कर द्वितीय के समयों में लगभग ५०० वर्षों का अन्तर है। ५०० वर्षो के बीजगणित के विकास की दर को ध्यान में रखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसवी की द्वितीय अथवा तृतीय शती में भारत में अवश्य बीजगणित की सत्ता थी। डा०दत्त के मत में उमास्वाति (१५० ई० पू०) को व्यापक द्विघात समीकरण का अवश्य ज्ञान था। स्थानांगसूत्र (३२५ ई० पू०) में भी बीजगणित के विषयों का उल्लेख है। यह सब उपर्युक्त निष्कर्ष के समर्थक हैं।

अल्जेब्रा :

बीजगणित का ज्ञान भारत से अरब होकर योरुप पहुँचा, इस तथ्य का परि-नायक स्वयं "अल्जेब्रा" शब्द है। अल्जेब्रा शब्द अलख्वारिज्मीकृत 'अलजब्रुल मुकाबला' का संक्षिप्त रूप है। लीओनार्डो नामक इटली का एक व्यापारी उसे इटली ले गया। इस ग्रन्थ का तदुपरान्त लेटिन भाषा में अनुवाद हुआ। योरुप में सर्वप्रथम बीजगणित की पुस्तक लूकस पेसिओलस की है। यह १४६४ ई० में छपी। यह पुस्तक लेओनार्डो की पुस्तक के आधार पर लिखी गई थी। अलख्वारिज्मी के अल्जब्रुल मुकाबला नामक पुस्तक का योरुप में इतना प्रचार हुआ कि बीजगणित का नाम ही वहां "अल्जेब्रा" पड़ गया। सुधाकर द्विवेदी कृत समीकरण-मीमांसा की भूमिका में उनके सुपुत्र पद्माकर जी द्विवेदी लिखते हैं :—

"ऐसा कहा जाता है कि खलीफा अलमामून (८१३-८३३) के राज्यकाल में मुहम्मद बिन अलख्वारिज्मी राजशाही दूतों के साथ अफगानिस्तान गए और लौटते समय भारतवर्ष होते हुए आए। आने के थोड़े ही समय बाद उन्होंने बीजगणित की एक पोथी लिखी। इस पोथी के विषय इन्हीं के आविष्कार किए नहीं मालूम पड़ते परन्तु भारतवर्ष ही के ब्रह्मगुप्त, भट्ट बलभद्र या और किसी विद्वान के बीजगणित से अनुवाद किए गए हैं या उनके आधार पर लिखे गए हैं।" एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के ९वें संस्करण के पृष्ठ ५१२ के लेख से भी यही सिद्ध होता है। देखिये :—The circumstances of this treatise professing to be only a compilation and moreover, the first Arabian work of the kind, has led to an opinion that it was collected from books in some other language. As the author was intimately acquainted with the astronomy and computations of the Hindus, he may have derived his knowledge of algebra from the same quarter. The Hindus, as we

shall presently see had a Science of algebra and we may conclude with some probability that the Arabian algebra was originally derived from India.

अल्जब्रुल मुकाबला का शाब्दिक अर्थ समीकरण की दो क्रियाओं को लक्षित करना है, जब्र का अर्थ था राशियों को पूरा करना। ऋण को घन बनाना, यह वज्राभ्यास से तथा समान राशिओं को दोनों ओर जोड़ने से प्राप्त होता है। पुनः समीकरण के दो पक्षों की तुलना करना जिसमें समराशियों को दोनों ओर से निकाल दिया जाता है। इस प्रकार अल्जेब्रा का अर्थ समीकरण सावन से संबन्धित है और बीज भी विभिन्न समीकरणों के साधन को कहते हैं। यथा :—

उक्तं बीजोपयोगीदं संक्षिप्तं गणितं किल
अतो बीजं प्रवक्ष्यामि गणकानन्दकारकम् ॥

प्रथम मेकवर्णसमीकरणं बीजं द्वितीयमनेकवर्णसमीकरणं बीजं। (भा०बी०ग०)

अर्थात् संकलनादि मुख्य बीजगणित नहीं था यह तो बीजगणित की उपयोगी क्रियाएँ हैं, बीज तो चार प्रकार के होते है। (१) एकवर्ण समीकरण, (२) अनेक वर्ण समीकरण, (३) मध्यमाहरण, (४) भावित समीकरण।

बीजगणित शब्द का अर्थ इस प्रकार अल्जेब्रा के अर्थ से मिलता है। बीज शब्द भास्कर प्रथम (६२६ ई०) ने प्रयुक्त किया है तथा अल्जेब्रा ६वीं शताब्दी का शब्द है अत: अल्जेब्रा भारतीय बीजगणित के आधार पर ही नाम पड़ा। अल्जेब्रा को अंगरेजी में अनेलिसिज भी कहते हैं। इसका अर्थ भी समीकरण से संबन्धित है। यथा :—Analysis is a method of resolving mathematical problems by reducing them to equations :—D' Alembert.

जापानी भाषा का 'किगेनसीहो' शब्द जिसका अर्थ है अव्यक्त को व्यक्त करना भी समीकरण से संबन्धित है। अतः न केवल अंगरेजी तथा अरबी का अल्जेब्रा शब्द, अपितु अन्य अनेक देशों के शब्द भी बीजगणित अथवा अव्यक्तगणित के आधार पर बने। सचमुच बीजगणित का भारत में ही आविष्कार हुआ। अनेक अरबी के बीजगणित सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द भी इसी मत का समर्थन करते हैं। यथा :—

धन=माल	जीवा=जेब	प्रत्यानयन=फियालतारीक-(क्रियाकांटा) अलहिन्दसा गुणा की एक
ऋण=देन	शर=सुहम (तीर)	
मूल=जज्र (जड़)	चाप=कोस	विधि=अल-अमल-अलहिद
घात=जरब (चोट)	करणी=असम	शून्य=सिफ (खाली)
अंश=हिस्सा	समीकरण=समामात	भाग=तकसीम

श्री काये आदि पाश्चात्य विद्वानों ने हिन्दू गणित की मौलिकता पर जो सन्देह प्रकट किए हैं तथा उन पर यूनानी गणित के प्रभाव का जो उल्लेख किया है एवं अरबों पर हिन्दू गणित के प्रभाव का अभाव बताया है उस पर जोहन स्ट्रेची की निम्न पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं :—

"इसकी खोज करना मेरा उद्देश्य नहीं है कि भारतीय विज्ञान के कौन से अंश मौलिक बताये जा चुके हैं, मैं केवल इतना ही बताना चाहता हूँ कि हिन्दुओं के ज्ञान-विज्ञान की मौलिकता के विषय में जो सन्देह प्रगट किए हैं वह अपेक्षाकृत बहुत नवीन हैं और ये सन्देह उन आदमियों ने प्रगट नहीं किए हैं जो हमसे कहीं अधिक अच्छे प्रकार से इस विषय पर निर्णय दे सकते थे। अरब के लोग भारतीय गणित तथा फलित ज्योतिष दोनों को अरब तथा यूनानियों की ज्योतिष से पृथक् मानते थे। आबिन असरा ने हिन्दू तथा यूनानी एवं पारसी गणित विषयों की परस्पर तुलना की है। हम जानते हैं अरब निवासी अपने अंकों को भारतीय बताते हैं। मसूदी ने टालेमी की ज्योतिष को भी उन्हीं से सम्बन्धित किया है। फैजी जो यूनानी तथा अरब की विद्याओं से परिचित था और जिसको हिन्दुओं के विज्ञान का भी भली भाँति ज्ञान था उसने उसकी मौलिकता पर कभी संदेह नहीं प्रकट किया। जीज मुहम्मदशाही अर्थात् ज्योतिषीय सारणियाँ जो कि भारत में सन् १७२८ ई० में छपी थीं उसकी भूमिका में यूरोपीय, यूनानी तथा अरबी एवं भारतीय पद्धतियों को एक दूसरे से पृथक् बताया है।" (जोहन स्ट्रैचीकृत बीजगणित की भूमिका)

प्रकरण २. करणी

व्युत्पत्ति :

करणी शब्द कृ धातु से स्त्रीलिंग में करण कारक के अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगा कर बना है। अतः इसका शब्दार्थ है जिससे किया जाय।

प्राचीन अर्थ :

शुल्व-काल में करणी का अर्थ रज्जु था क्योंकि उस काल में इसके द्वारा यज्ञवेदियों की रचना की जाती थी। आजकल जो काम हम मापनी तथा परकार से करते हैं वही काम उस प्राचीन काल में रस्सी से कर लेते थे। इस प्रसंग में कात्यायन का निम्न सूत्र अवलोकनीय है :—

"करणी तत्करणी तिर्यङ्मानी पार्श्वमान्यक्ष्णयेति रज्जवः (कात्या० शु० सूत्र)। रज्जु पाँच प्रकार की होती थी करणी, तत्करणी, तिर्यङ्मानी, पार्श्वमानी तथा अक्ष्णया।

अर्थ का क्रमिक विकास :

करण कारक के अतिरिक्त कर्त्ता कारक के अर्थ में भी करणी शब्द का प्रयोग मिलता है :—

"पदं तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुर्दशकरणी" (कात्या० शु० सू०) अर्थात् जिस आयत की एक भुजा १ हो दूसरी ३ हो तो उसका कर्ण मूल आयत से १० गुना क्षेत्रफल वाला आयत बनाता है। यहाँ दशकरणी का अर्थ है १० गुना बनाने वाली।

तदुपरान्त वर्गाकार वेदियों की भुजाओं को बनाते-बनाते करणी स्वयं वर्ग की भुजा बन गई। देखिये :—

"नाना प्रमाण समासे ह्रसीयस: करण्यावर्षीयसोऽपच्छिन्द्यातस्याक्ष्णयारज्जुरुभे समस्यतीति समास:।" (का० शु० सू०)

अर्थात् यदि दो भिन्न प्रमाण वाले वर्गों के बराबर एक वर्ग बनाना हो तो बड़े की एक भुजा में छोटे वर्ग की एक भुजा के बराबर काट लीजिये फिर इस प्रकार बने हुए आयत के कर्ण पर बना हुआ वर्ग दोनों मूल वर्गों के योग के बराबर होता है।

शुल्व सूत्रों की कतिपय पंक्तियों का अंकगणितीय भाषा में निर्वचन करने से "करणी शब्द का वह वर्गमूल जो निकाला न जा सके किन्तु वर्ग की एक भुजा द्वारा निरूपित किया जा सके" यह अर्थ भी निकलता है। देखिये :—

"द्विपदा तिर्यङ्मानी षट्पदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुश्चत्वारिंशत्करणी" (का० शु० सू०) अर्थात् जिस आयत की एक भुजा२ है दूसरी ६ उसका कर्ण चालीस का करणी है अर्थात् करणी चालीस (=√४०) है। यहाँ करणी का अर्थ वर्गमूल हो गया किन्तु इस वर्गमूल को आयत के कर्ण द्वारा ही निरूपित करना बताया गया है।

बक्षाली[1]-पांडुलिपि (तीसरी शती) में भी करणी शब्द अकलनीय वर्गमूल वाली करणी गत संख्या (Surd) के अर्थ में आया है। सूर्यसिद्धान्त में भी करणी का प्रयोग इस अर्थ में हुआ है। देखिये :—

शंकुवर्गार्धसंयुक्तं विषुवद्वर्गमाजितात्।
तदेव करणीनाम तां पृथक्स्थापयेद्बुध:॥ (सू० सि० ३०।१६)

सर्ड के अर्थ में करणी शब्द की चर्चा ब्रह्मगुप्त[2] और उनके परवर्ती सभी गणितज्ञों ने की है। महावीराचार्य (८५० ई०) ने करणी का अर्थ उस राशि से लिया है जिसका वर्गमूल निकालना अपेक्षित हो। यथा :—

षोडशषट् त्रिंशत करणीनां वर्गमूल पिण्डं मे।
अथचैतत्पदशेषं कथय सखे गणिततत्त्वज्ञ॥

१. बक्षाली-पाण्डुलिपि, पृ० १७८।
२. ब्रा० स्फु० सि० १८।३,३६,४३।

रंगाचार्य जी इस स्थल पर करणी शब्द की व्याख्या करते हुए लिखते हैं :—
The word Karani occuring here denotes any quantity the surd root of which is to be found out the root itself being rational or irrational as the case may be.

आपस्तंब[1] शुल्ब सूत्र में भी चतुष्करणी शब्द आया है यद्यपि ४ का वर्गमूल पूरा २ निकल आता है। इसके विरुद्ध श्रीपति (१०३९ ई०) ने करणी शब्द से केवल उसी राशि का बोध होना बताया है जिसका कि वर्गमूल पूरा २ न निकल सके। किन्तु जिसका वर्गमूल निकालना अभीष्ट अवश्य हो। देखिये :—

ग्राह्यं न मूलं खलु यस्य राशे स्तस्यप्रदिष्टं करणीति नाम ।। (सि० शे०,पृ० ९५)

करणीमूल :

करणी के मूल को करणी-मूल अथवा करणीपद कहते हैं। यथा :—

रूपोनैः करणीरहिताया मूलयुतोनितरूपगुणार्धे।
रूपगुणः प्रथमं हि तदन्यत् स्यात् करणीपदमित्यसकृच्च ।।
(सिद्धान्तशेखर, पृ० १००)

रूपाणि पंचवर्गे यत्र चतुर्विंशतिः करण्यश्च ।
मूलं तत्र भवेत्किं वद करणीमूलविद्विज्ञ ।। (सि० शे० टीका, पृ० १११)

करणी का सांकेतिक चिह्न :

करणी का वर्तमान सांकेतिक चिह्न $\sqrt{\ }$ को जो r (=radix) का संक्षिप्त रूप है जर्मनी के स्टिफेल ने अपनी पुस्तक इन्टीगरा (१५४४ ई०) में प्रयुक्त किया था।[2] यहां पहले करणी का संक्षिप्त रूप क ही उस राशि से पूर्व लिख देते थे जैसे क २ (= $\sqrt{२}$)। अंगरेजी के सर्ड क्वान्टिटी को करणीगत राशि तथा सर्ड रूट को करणीपद अथवा करणीमूल कहते हैं।

करणी के अन्य अर्थ :

वर्ग शब्द के पर्याय के रूप में भी करणी एवं कृति शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। कृति एवं कृतिपद वर्ग और वर्गमूल के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। करणी तथा कृति जिस प्रकार साहित्यिक भाषा में पर्यायवाची शब्द हैं उसी प्रकार गणितीय भाषा में भी ये पर्यायवाची हैं। देखिए भास्कर प्रथम की उक्ति :—

"वर्गः करणी कृतिः वर्गणा सामकरणमिति पर्यायाः।" इस सम्बन्ध में वराहमिहिर की आगे लिखी पंक्ति अवलोकनीय है :—

---

१. आपस्तम्ब शुल्ब सूत्र २।६।

२. म० सुधाकर द्विवेदी कृत गणित का इतिहास।

ध्रुवकरणी मेपोना द्वयोस्तुराश्योः पदं ज्याः स्युः । (पं० सि
ध्रुव स्थिरांक के लिए और 'करणी' वर्ग के लिए आया है । गणित
ने भी करणी को वर्ग के अर्थ में प्रयुक्त किया है। देखिए :—

भागोनरूपविहृते खलु दृश्यमूले दृश्यात् पदार्धं करणीसहितात्
मूलद्विभागसहिते गमिते कृतित्वं राशिर्भवेदभिमतो हृदि यस्त्व

अर्थात् भिन्न को एक में से घटाकर जो प्राप्त हो उससे दृश्य
देवे । पुनः दृश्य से पूर्व के पद को आधा करे पुनः उसका वर्ग करे,
संख्या में जोड़े और फिर वर्गमूल निकाले, उस वर्गमूल में दृश्य की
अर्धभाग को जोड़े और फिर इसका वर्ग करे । इस प्रकार हमको इ
हो जावेगी । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रश्न निकाला गया है । प्र
हल दोनों मनोरंजक हैं अतः पाठकों के मनोरंजन के लिए दिये जा

प्रश्न :—

त्र्यंशः सारंगयूथात् त्रिलवकसहितो व्याघ्रभीत्या प्रणाशे
गीतेलुब्धं स्वमूलं विगलितकवलं मीलिताक्षि स्थितं च
यूथाद्भ्रष्टे कुरंग्यौ तरलितनयने हंत दृष्टे भ्रमन्त्यौ
कान्तारे ब्रूहि तूर्णं यदि गणितविधिं वेत्सि यूथप्रमाणम्

अर्थात् हिरणों के एक झुण्ड में से एक तिहाई हिरण, अपनों
अन्य हिरणों के साथ सिंह के डर से भाग गये । मूल मृगसंख्या के एव
संगीत में लुब्ध हो गए, इस प्रकार केवल अब दो हिरण शेष बचे
कितने हिरण थे ।

प्रश्न का हल[१] :—

$$\frac{१}{३}+\frac{१}{३}\times\frac{१}{३}=\frac{४}{९}$$

$$१-\frac{४}{९}=\frac{५}{९}$$

$$२\div\frac{५}{९}=२\times\frac{९}{५}=\frac{१८}{५}$$ (यहाँ $\frac{९}{५}$ एक महत्वपूर

$$\frac{९}{५}\times\frac{१}{२}=\frac{९}{१०}$$

$$\left(\frac{९}{१०}\right)^२=\frac{८१}{१००},\quad \frac{१८}{५}+\frac{८१}{१००}=\frac{४४१}{१००}$$

$$\sqrt{\frac{४४१}{१००}}=\frac{२१}{१०},\quad \frac{२१}{१०}+\frac{९}{५}\times\frac{१}{२}=\frac{३०}{१०}=३,$$

१. आज भी अंकगणित के द्वारा इस प्रश्न को हल करना क

वर्ग के अर्थ में करणी की व्युत्पत्ति :

वर्ग के अर्थ में करणी शब्द कृ धातु से कर्मकारक के अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगी समझनी चाहिए। अतएव जो कुछ किया जाये अथवा बनाया जावे वह करणी है। ४ रस्सियों से वर्गाकार वेदी बनती थी अतः वर्गाकार वेदी को बनाते-बनाते करणी (रज्जु) स्वयं वर्ग बन गई।

करणी का क्या कर्ण भी अर्थ था :

कुछ लोगों ने करणी का एक अर्थ कर्ण भी बताया है जो सन्देहास्पद है। डा० दत्त के हिन्दूगणित शास्त्र के इतिहास में (पृ० १६१) लिखा है कि ज्यामिति में करणी का अर्थ समकोण त्रिभुज का कर्ण है। किन्तु यह हिन्दी अनुवाद में ही है, मूल में तो 'In Geometry it means a side' यह था। अतः मूल से तो यह अर्थ नहीं निकलता। स्ट्रैची कृत बीजगणित के अनुवाद में भी डेविस द्वारा की हुई शब्द व्याख्याओं में करणी का अर्थ कर्ण दिया है। जब तक कोई प्रयोग नहीं मिलता तब तक हम इस अर्थ को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। उन्होंने करणी का शाब्दिक अनुवाद 'कान' बताया है। सम्भवतः वे करणी और कर्ण को भ्रमवश एक ही समझ गये हों।

करणी का अंगरेजी और अरबी में अनुवाद :

यह भ्रम यहीं तक सीमित नहीं किन्तु अरबी में करणी के लिए 'असम' कहते हैं जिसका शब्दार्थ बहिरा है। एक प्रकार से उन्होंने भी करणी का अनुवाद करते समय उसे कर्ण से सम्बन्धित कर लिया। अकर्णी तथा अकर्ण बहिरे को कहते हैं अतएव उन्होंने भी सम्भवतः देशगत उच्चारण भेद के कारण अथवा अपने देशज रूपों में करणी को अकर्णी कर लिया। हमारी ग्रामीण जनता भी 'ग्वालियर' को गिवालियर कर देती है। अंगरेजी भाषा में करणी शब्द अरबी के माध्यम से गया। अरबी के असम शब्द का वहाँ 'सर्ड' अनुवाद किया गया। सर्ड का अर्थ भी बहिरा है।

सारांश :

गया 'किन्तु जिसका वर्गमूल पूरा-पूरा न निकल सके।' यह वर्ग की एक भुजा द्वारा फिर भी निरूपित किया जा सकता है।

भारतीय गणित की प्राचीनता और क्रमिक विकास :

करणी शब्द ३००० वर्ष प्राचीन शुल्व सूत्रों में प्रथम बार प्रयुक्त हुआ और वहीं से इसका पारिभाषिक अर्थ विकसित होते-होते मूल अर्थ से सम्बन्धित एक विशिष्ट अर्थ में आज भी प्रचलित हो रहा है। यह भारतीय गणित की प्राचीनता और उसके क्रमिक विकास का एक ज्वलंत प्रमाण है।

इन श्लोकों में सम तथा समकोण शब्दों का प्रयोग है। ईसवी प्रथम शताब्दी से छठी शताब्दी तक की गणित की पुस्तकें प्रायः अप्राप्य हैं। केवल बक्षाली के कुछ पन्ने तथा आर्यभटी का केवल ३३ श्लोक वाला गणितपाद मिला है। आर्यभट के प्रमुख टीकाकार भास्कर प्रथम (६२९ ई०) ने आर्यभटी की टीका में आर्यभट के समय में बीजगणित के ज्ञात होने का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि उस समय लोग बीजचतुष्टय अर्थात् यावत्तावत् (Theory of Simple equations), वर्गावर्ग (Theory of Quadratic equations), घनाघन (Theory of Cubic equations), तथा विषम (Theory of equations with several unknowns) इन चार प्रकार के समीकरणों को जानते थे। यदि देखा जाये तो द्विघात समीकरणों तथा त्रिघात समीकरण से वर्गावर्ग समीकरण एवं घनाघन समीकरण शब्द अच्छे थे क्योंकि द्विघात समीकरण का मानक रूप $क य^2 + ख य + ग = ०$ है। इसमें एक घात तथा शून्य घात वाले पद भी हो सकते हैं। इसी प्रकार त्रिघात समीकरण में दो घात, एक घात तथा शून्य घात वाले सभी पद हो सकते हैं। केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है कि ब्रह्मगुप्त, आर्यभट से पहले भी समीकरण का कोई पर्याय अवश्य प्रचलित रहा होगा। ब्रह्मगुप्त के परवर्ती काल में पृथूदक् स्वामी (८६० ई०) के 'साम्य' शब्द का प्रयोग मिलता है।[1] तदुपरान्त श्रीपति (१०३९ ई०) कृत सिद्धान्तशेखर में 'सदृशीकरण' शब्द का प्रयोग मिलता है। यथा :—

> एकवर्ण-कुट्टक-कृति-प्रकृति प्रभेदानव्यक्तवर्ण-सदृशीकरणे च बीजे।
> ते मध्यमाहरण-भावितके च बुद्ध्वा निस्संशयं भवति दैवविदां गुरुत्वम् ॥

समीकरण शब्द का प्रथम प्रयोग अब भास्कर द्वितीय का ही मिलता है। यथा :—

अलजबूल मुक़ाबला का संक्षिप्त रूप अलजेब्रा बाद को योरुप में बीजगणित का बोधक बन गया। वास्तव में बीजगणित का भी समीकरण गणित ही अर्थ है।

समीकरण, साम्य तथा समकरण शब्दों का अरबी में 'मसामात' तथा अंगरेजी में 'इक्वेशन' शब्द से अनुवाद किया गया है क्योंकि हमारे शब्दों के प्रयोग उनके प्रयोगों से अत्यधिक प्राचीन हैं तथा अरबों ने भारतवर्ष से गणित के प्रथम पाठ सीखे। इसको उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है।

प्रकरण ४. क्रमचय तथा संचय

क्रमचय तथा संचय ये यद्यपि संस्कृत शब्द हैं किन्तु गणित के पारिभाषिक शब्द नहीं थे। क्रमचय तथा संचय को जैनधर्मग्रन्थ स्थानांगसूत्र (३५० ई० पू०) के ७१६ वें सूत्र में 'भंग' कहा गया तथा शीलांकसूरि ने इसे विकल्प-गणित कहा था। पिंगल छंदःशास्त्र में (२०० ई० पू०) इसे प्रस्तारविधि अथवा मेरु कहते थे। यथा :—

"दससुहुमा पण्णत्ता, तंजहा-पाण सुहुमे पणगसुहुमे जाव सिणेह सुहुमे गणिय सुहुमे भंग सुहुमे" (स्था०सू० ७१६)

इसमें भंग को सूक्ष्मबुद्धि गम्य बताया है।

एकाद्या गच्छपर्यन्ताः परस्परसमाहताः।
राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणिते फलम्॥

शीलांक सूरि द्वारा उद्धृत करणगाथा (समयाध्ययन अनु० द्वा० ५।२८) अर्थात् १ से लेकर अभीष्ट संख्या तक की संख्याओं को गुणा करने से किसी वस्तु संख्या का क्रमचय प्राप्त हो जाता है।

पिंगलछन्दःशास्त्र में भी संचय निकालने की विधि दी हुई है। इसको मेरु कहते हैं, जैसे ६ के संचय निम्न मेरु में दिये हुये हैं :—
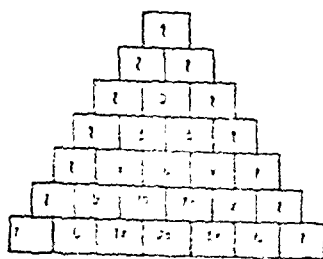
अंतिम पंक्ति में ६ सं$_0$, ६ सं$_1$, ६ सं$_2$, ६ सं$_3$, ६ सं$_4$, ६ सं$_5$, ६ सं$_6$ के

फल ही हैं। वृत्तरत्नाकर की टीका में नारायण भट्ट ने इस मेरुविधि पर निम्न प्राचीन कारिकायें उद्धृत की हैं—

आदावेकं लिखेत्कोष्ठं तदधोद्वेच संलिखेत्
तदधस्त्रीणिकोष्ठानि एवं रूपेणवर्धयेत्।
आदावेकं लिखेत्कोष्ठमेकं मध्यं च पूरयेत्
लेख कोष्ठोपरिप्राप्तैरग्रिमांकेन संयुतैः॥

प्रस्तार विधि में जैसे पीछे पहाड़ बनाकर दिखाया है उसी प्रकार पहाड़ों के भी पहाड़ बन सकते हैं। इसी पहाड़ में यदि सर्वत्र २ लिख दिये जायें तो २ का पहाड़ा हो जायेगा। संभव है हिंदी का पहाड़ा शब्द इसी प्रकार पहाड़ (पाषाण) अथवा प्रस्तर (प्रस्तार) (पत्थर) से संबंधित हो।

भगवती सूत्र (३०० ई० पू०) में संचय के लिये संयोग शब्द आया है। एकक संयोग, एक-एक के संयोगों को, द्विकसंयोग दो-दो के संयोगों को और इसी प्रकार त्रिकसंयोग तीन-तीन के संयोगों को कहा गया है। यथा—

"एवम् एतेन क्रमेण पंच षट् सप्त यावत् दशसंख्येयानि असंख्येयानि, अनंतानि च द्रव्याणि भणितव्यानि। एकक संयोगेन द्विक संयोगेन, त्रिकसंयोगेन यावत् दश-संयोगेन उपयुज्य यथा यथा संयोगा उत्तिष्ठन्ति ते सर्वे भणितव्याः।"

(भगवती सूत्र ८।१)

लीलावती में संचय तथा क्रमचय विधि को अंकपाश शब्द से द्योतित किया गया है। अंकपाश को उसमें बहुत कठिन बताया गया है और कहा है कि इससे बड़े-बड़ों का गर्वपात हो जाता है :—

न गुणो न हरो न कृतिर्नघनः पृष्टस्तथापि दुष्टानाम्।
गर्वित गणकवटूनां स्यात्पातोऽवश्यमंक-पाशेऽस्मिन्॥ (लीला०, पृ० २१५)

व्युत्पत्ति :

संचय शब्द चयन से संबंधित है जिसका अर्थ है छाँटना। छाँट २ के बनाई हुई ढेरियों को चय (समूह) कहते हैं। अकेले चय का प्राचीन अर्थ श्रेणी के क्रमिक दो पदों का सामान्य अंतर (Common difference) था अतएव उससे बचाने के लिये सम् उपसर्ग लगाकर संचय कर दिया। क्रमचय में क्रम भी किया जाता है तथा चयन भी अतः यह अन्वर्थक शब्द है। 'क्रम'[1] लगने से ही चय से पृथक् हो गया अतः सम् उपसर्ग लगाने की आवश्यकता न रही।

---

१. बख्शाली-पाण्डुलिपि में क्रम शब्द अंगरेजी के सीक्वेंस शब्द के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आजकल इसके लिए अनुक्रम शब्द प्रयुक्त किया जाता है।

उदाहरणतः ४, ८, १२......, १, ३, ५ ७.....पंचविंशब्राह्मण में १२, २४, ४८, ९६......१९५६०८, ३९१२१६ आदि। गुणोत्तर श्रेणियाँ भी आई हैं। वृहद्देवता में (५००-४०० ई०पू०) २+३+४+......१००=५००४९९ का भी उल्लेख है।

वक्षाली-हस्तलिपि में इसके लिए वर्ग तथा पार्थ शब्दों का प्रयोग हुआ है। वर्ग का भी अर्थ प्रारंभ में श्रेणी के समान 'पंक्ति' ही था। यथा :—

"यावत्प्रमाणा रज्जुर्भवति तावन्तस्तावन्तो वर्गा भवन्ति"

श्रेणी व्यवहार के अन्य शब्द चय और उत्तर भी वक्षाली-पांडुलिपि में आये हैं।

जैन साहित्य के शब्द :

श्रेणी व्यवहार के पारिभाषिक शब्द जैन धर्म ग्रन्थों में मिलते हैं। श्रेढ़ी तथा गच्छ (पदसंख्या) शब्दों के दिखने मात्र से प्रतीत होता है कि यह प्रारंभ में प्राकृत के ही शब्द रहे होंगे जो बाद में संस्कृत में समाविष्ट हो गये। गच्छ संस्कृत व्याकरण के अनुसार कोई शब्द नहीं है। श्रेणी व्यवहार के अन्य शब्द आदि (प्रथम पद) उत्तर (सामान्य अंतर) गणित (श्रेणी योग) आदि शब्द भी जैन साहित्य में आये हैं।

संस्कृत के प्रयोग :

संस्कृत में भी इन समस्त शब्दों का प्रचार हुआ। उदाहरणतः आर्यभट और ब्रह्मगुप्त के निम्न प्रयोग द्रष्टव्य हैं:—

इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखमध्यम्।
इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्तं पदार्धहतम् ॥ (आर्य० ग०पा० १९।)

इस श्लोक में आदि (प्रथम पद), (इष्ट, न-पद) उत्तर (सामान्य अंतर), इष्ट धन (न पदों का योग) शब्द आये हैं। इस श्लोक में अंगरेजी का निम्न सूत्र दिया हुआ है :-

श्रेणी या श्रेणीव्यवहार शब्द आर्यभटी तथा ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में नहीं आये हैं क्यों कि आर्यभटी का गणितपाद तथा ब्राह्मस्फुट का गणिताध्याय इतने विस्तृत नहीं हैं जिनमें गणित के प्रत्येक व्यवहार पर पृथक् परिच्छेद दिये हों। यदि श्रेढी व्यवहार का पृथक् परिच्छेद होता तो श्रेणी व्यवहार शब्द कम से कम शीर्षक के रूप में अवश्य आ जाता।

श्रेणी और श्रेढी :

प्राचीन गणितीय ग्रन्थों में श्रेणी के स्थान पर श्रेढी शब्द का अधिक व्यवहार हुआ क्योंकि श्रेणी-व्यवहार जैन साहित्य से संस्कृत में आया जो प्राकृत में लिखा हुआ था। आजकल श्रेणी अंगरेजी शब्द सीरीज़ के लिए तथा श्रेढी प्रोग्रेशन के लिए आते हैं।

प्रयोग :

संस्कृत में श्रेढी का प्रयोग सर्वप्रथम भास्कर (६२९) ने आर्यभटी की टीका में किया। उन्होंने आर्यभट के समय प्रचलित गणित के आठ व्यवहारों में श्रेढी-व्यवहार भी बताया है। गणित-सार-संग्रह नामक जैन ग्रन्थ में श्रेढी-व्यवहार का विशाल उपचार किया है। इस व्यवहार पर उसमें ७४ श्लोक दिये हैं। इन श्लोकों में संकलित-संकलित शब्द भी आया है जो कई श्रेणियों के योग के अर्थ में है। ब्रह्मगुप्त के उपरोक्त श्लोक में भी यह शब्द आया है जिससे हिन्दू गणित के अनवरत प्रवाह का पता चलता है। गणित-सार-संग्रह में केवल संकलित शब्द से समांतर श्रेढी के योग का ही बोध होता था तथा गुण-संकलित आधुनिक गुणोत्तर श्रेढी के योग के अर्थ में समझा जाता था। अन्य गणितीय ग्रन्थों में संकलित तथा संकलन शब्द योग के अर्थ में आये हैं।

संकलित शब्द का अरब में प्रचार :

संकलित शब्द का प्रचार अरब देश तक में हुआ। अलबरुनी (१०१४ ई०) ने 'फीसंकलित इल-अदद-जैनिस्फ' नाम की एक पुस्तक श्रेणी-व्यवहार के विषय पर लिखी। भास्कर द्वितीय (१११४ ई०) ने संकलित का अर्थ "एक से लेकर किन्हीं अंकों के योग" भी किया है यथा :—

सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यंकयुतिः किल संकलिताख्या। (लीला०, पृ० ४२)

श्रेणियों के भेद :

आजकल श्रेणियों के तीन भेद बताए जाते हैं (१) समान्तरश्रेणी, (२) गुणोत्तर श्रेणी, (३) हरात्मक श्रेणी। समान्तर श्रेणी उस श्रेणी को कहते हैं जिसके उत्तरोत्तर पदों का अन्तर समान रहे। गुणोत्तर श्रेणी वह श्रेणी होती है जिसमें उत्तरोत्तर किसी एक संख्या से गुणा होती जाती है अथवा गुण अर्थात् गुणात्मक उत्तर

(Common difference) है जिसमें; अथवा गुणोत्तर वाली श्रेणी। हरात्मक का अर्थ है हर है आत्मा में जिसके; अर्थात् समान्तर श्रेणी के पद इसमें हर रूप में आते हैं अर्थात् उल्टे हो जाते हैं। हरात्मक श्रेणी यूनानियों की देन है। शेष दो श्रेणियां यहाँ अति प्राचीनकाल से ज्ञात थीं।

श्रेणियों का ज्यामितीय उपचार :

श्रीधराचार्य (९०० ई०) ने अपने पाटीगणित नामक ग्रन्थ में श्रेढी-व्यवहार नामक एक पृथक् प्रकरण लिखा है। जिसमें समान्तर तथा गुणोत्तर दोनो प्रकार की श्रेणियों का ज्यामितीय विवेचन किया है। भारतवासियों का मस्तिष्क सदा से अंक-गणितीय तथा बीजगणितीय प्रकृति का रहा है तथा यूनानियों का मस्तिष्क ज्यामितीय अधिक रहा है। किन्तु श्रीधराचार्य ने श्रेणी व्यवहार का भी ज्यामितीय विवेचन करके अपनी ज्यामितीय प्रकृति का परिचय दिया है। वह कहते हैं कि श्रेढी एक श्रेढी क्षेत्र के समान है जिसका आकार मिट्टी के एक सरवे के समान है अर्थात् नीचे कम और ऊपर क्रमशः बढ़ता हुआ। उन्होंने इस श्रेढी क्षेत्र को समपार्श्व समलंब चतुर्भुज के आकार का बताया है। यथा :—

विस्तारोऽल्पोऽधस्तदुपरिमहान् स्याद्यथा शरावस्य।
श्रेढी क्षेत्रस्य तथा गच्छः समोलम्बकस्तस्य ॥ (पाटीगणित, पृ० १०७)

चय, प्रचय :

श्रेढी सम्बन्धी आधुनिक सार्व अथवा सामान्य अन्तर शब्दों के लिये प्राचीन काल में चय अथवा प्रचय शब्द प्रयुक्त किया जाता था। यथा :—

गच्छविभक्ते गणिते रूपोनपदार्धगुणितचयहीने।
आदिः पदहृतवित्तं चाद्यून द्व्येकपददलहृतः प्रचयः ॥
द्विगुणैकोनपदोत्तरकृतिहृतिषष्ठांशमुखचयहतयुतिः।
द्व्येकपदघ्नामुखकृतिसहिता पदताडितेष्टकृतिचितिका ॥

पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय रूवपरिहीणे ।
रूऊगणेण हि ए मुहेण गुणियम्मि गुणगुणियम् ।।
(सं० : पदमात्रान् गुणकारान् अन्योन्यं गुणयित्वा रूपपरिहीणे ।
रूपोनगुणेन हृते मुखेन गुणिते गुणगुणितम् ।।)

यहाँ सामान्य अनुपात के लिये गुण अथवा गुणकार, पद-संख्या के लिये पद-मात्रा तथा गुणोत्तर श्रेणी के योग के लिए गुणगुणित शब्द प्रयुक्त हुआ है ।

अध्याय ४

रेखागणित

प्रकरण १. रेखागणित

व्युत्पत्ति :

रेखा सम्बन्धी गणित अर्थात् रेखाओं से बनी हुई आकृतियों के गुणधर्मों तथा उनके क्षेत्रफल आयतन आदि निकालने के गणित को रेखागणित कहते हैं।

पर्याय :

रेखागणित के लिए निम्नलिखित प्राचीन तथा अर्वाचीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं :—शुल्बगणित, शुल्बविज्ञान, रज्जुगणित रज्जुसंख्यान, रज्जु, क्षेत्रगणित, क्षेत्र-समास, क्षेत्रव्यवहार, क्षेत्रमिति, सूत्र, ज्यामिति और भूमिति।

ऐतिहासिक विकास :

हिन्दुओं का प्राचीनतम साहित्य वेद हैं तथा "वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः" वेदांग-ज्योतिष के इस कथन के अनुसार वेद भी यज्ञों के लिये प्रवृत्त हुए। इन यज्ञों की वेदियाँ भी नाना प्रकार की बनायी जाती थीं जैसे (१) श्येनचित्, (२) वक्रपक्ष, व्यस्तपुच्छश्येन, (३) कंक, (४) अलज, (५) प्रौग, (६) उभयतः प्रौग, (७) रथचक्र, (८) द्रोण, (९) समूह्य, (१०) परिचाय्य, (११) श्मशान, (१२) कूर्म।

इन सब आकृतियों की वेदियों के बनाने के संबन्ध में वर्ग, आयत आदि रेखा-गणितीय आकृतियों का ज्ञान आवश्यक हो गया। साथ में इन सब वेदियों की रचना के लिये यह भी आवश्यक था कि उन सबका क्षेत्रफल वही हो जो कि मानक वेदी श्येनचित का अर्थात् साढ़े सात वर्ग पुरुष[1]। इन सबको यथावत बनाने के लिये निम्नलिखित रेखागणितीय प्रक्रियाओं का ज्ञान अपेक्षित था :—

दी हुई हो, (७) समलम्ब चतुर्भुज का क्षेत्रफल निकालना, (८) एक समलंब चतुर्भुज के समरूप दूसरा समलंब चतुर्भुज खींचना जिसका क्षेत्रफल पहले के बराबर गुणज अथवा अपवर्तक (Sub-multiple) हो, (९) दिये हुए वर्ग के बराबर गुणज अथवा अपवर्तक वर्ग खींचना, (१०) दो भिन्न वर्गों के बराबर एक वर्ग बनाना, (११) त्रिभुज को आयत में परिणत करना तथा आयत को त्रिभुज में परिणत करना, (१२) वर्ग के बराबर त्रिभुज अथवा समचतुर्भुज बनाना, (१३) आयत के कर्ण पर बना हुआ वर्ग उसकी दोनों भुजाओं पर बने हुए वर्गों के योग के बराबर होता है। शताब्दियों से प्रचलित इन सब नियमों को बताने के लिए हमारे महर्षियों को उक्त नियमों को बतलाने के लिये शुल्व सूत्रों की रचना करनी पड़ी। शुल्व विज्ञान अथवा शुल्व गणित ही हमारे रेखागणित का आदिमरूप तथा आदिम नाम थे। इन शुल्व सूत्रों में केवल बोधायान, आपस्तम्ब, कात्यायन, मानव, मैत्रायण, वाराह तथा बाधुल शुल्व सूत्र उपलब्ध हुए हैं। मानव और मैत्रायण शुल्व सूत्रों में रेखागणित को शुल्व-विज्ञान कहा गया है।[1] उमास्वाति द्वारा रचित 'क्षेत्रसमास' (१२० ई० पू०) ग्रन्थ भी रेखागणित पर था। जैनियों के दूसरे आचार्यों ने भी अन्य क्षेत्र-समास बनाये। इसके उपरान्त भास्कर प्रथम ने (६२९ ई०) आर्यभटी की टीका में गणित के आठ व्यवहार बताए जिनमें क्षेत्रव्यवहार, खातव्यवहार, चितिव्यवहार, क्राकचिक तथा राशि रेखागणित सम्बन्धी व्यवहार बतलाए हैं। इनमें क्षेत्र व्यवहार समतल ज्यामिति का और शेष सब घन ज्यामिति के विषय हैं। महावीराचार्य ने उक्त विषयों को केवल दो ही प्रकरणों में लिखा है (१) क्षेत्रगणित (Plane Geometry), (२) खात (Solid Geometry)। महावीर से पूर्व रेखागणित के लिये क्षेत्रगणित शब्द का प्रयोग हरिभद्र ने आवश्यक सूत्रवृत्ति नामक ग्रन्थ में किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि महावीराचार्य ने भी जैनियों के अन्य क्षेत्र-गणितीय ग्रन्थों के अनुसार उक्त वर्गीकरण किया था। आज भी ज्यामिति के यह दो भेद अर्थात् समतलज्यामिति (Planc Gometry)तथा घनज्यामिति (Solid Gometry) ही प्रमुखतया प्रसिद्ध है। स्थानांग सूत्र के ७४७ वें सूत्र में रज्जुसंख्यान तथा राशिसंख्यान क्रमशः क्षेत्रगणित तथा घनज्यामिति के अर्थों में ही प्रयुक्त किए हैं।

यहां यह बताना भी अप्रासंगिक न होगा कि बौद्धों के समय में भी रेखागणित का प्रचार रहा होगा क्योंकि विनयपिटक की उपालि वाली कहानी में 'रूप' शब्द रेखागणित अथवा चित्रकला के लिये प्रयुक्त मिलता है।

दीर्घवृत्त का आविष्कार :

उस युग में विज्ञान की शाखाएं आज जैसी सुनिर्धारित न थीं। धम्मसंगनी (४०० ई० पू०) में रूपों के भेदों में परिमंडल (दीर्घवृत्त) का भी उल्लेख है। टीका-

१. मानव शुल्व सूत्र ३।२, मैत्रायणी शुल्व सूत्र, अध्याय १।

कार बुद्धघोष ने परिमंडल को समझाते हुए उसको कुक्कुटांड संस्थान (Eggshaped figure) कहा था। पीतवत्थू टीका में परिमंडल के लिए आयतवृत्त शब्द का प्रयोग किया है। आयत (लम्बा) का पर्यायवाची दीर्घ भी है। आजकल आयतवृत्त का ही दूसरा रूप दीर्घवृत्त इलिप्स के लिए प्रचलित है। आयत के स्थान पर दीर्घ का प्रयोग इसलिए किया गया क्योंकि आयत अंगरेजी के रेक्टेंगल शब्द के लिए सुरक्षित कर दिया गया। आयतवृत्त तथा दीर्घवृत्त दोनों का शाब्दिक अर्थ है लम्बा किया हुआ वृत्त (Elongated circle)। वास्तव में बाँस की खपंच्चियों के वृत्त को ऊपर से दबा कर लम्बा कर दिया जाये तो दीर्घवृत्त बन जाता है। जैन ग्रंथ भगवती सूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र में भी परिमंडल (इलिप्स) शब्द का प्रयोग हुआ है। उनमें तो इसके दो भेद भी किए हैं (१) प्रतर परिमंडल, (२) घन परिमंडल।

सूर्य-प्रज्ञप्ति :

सूर्यप्रज्ञप्ति (५०० ई० पू०) के ११वें, २५वें तथा १००वें सूत्र में निम्नलिखित रेखागणितीय शब्दों का प्रयोग किया गया है :—

(१) समचतुरस्र, (२) विषमचतुरस्र, (३) समचतुष्कोण, (४) विषम चतुष्कोण, (५) समचक्रवाल, (६) विषम चक्रवाल, (७) चक्राकार, (८) चक्रार्धचक्रवाल। वेबर महोदय ने अपनी पुस्तक (Indische Studien, खंड १०, पृ० २७४) में इनका अर्थ क्रमशः समवर्ग (Square), विषमवर्ग (Oblique Square), समसमान्तर चतुर्भुज (Even parallelogram) विषमसमान्तर चतुर्भुज (Oblique parallelogram), वृत्त, दीर्घवृत्त, गोलार्धक तथा अर्धदीर्घवृत्त कहा है।

दीर्घवृत्त (इलिप्स) का अनुसंधानकर्ता यूनानी मेनेक्मस (३५० ई० पू०) माना जाता है किन्तु भारतवर्ष में उनसे पूर्व सूर्यप्रज्ञप्ति (५०० ई०पू०) तथा धम्म-संगनी (४०० ई० पू०) में उसका ज्ञान था।

कौटिल्य अर्थशास्त्रीय ज्यामितीय शब्द :

दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुस्तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोतीति क्षेत्रज्ञानम् । (का० शु० सू०)

उपरोक्त इन सब उद्धरणों का अर्थ है कि आयत की दोनों भुजाओं के वर्गों का योग कर्ण के वर्ग के बराबर होता है। ब्रह्मगुप्त का निम्न श्लोक भी इसी सम्बन्ध में है :—

कर्णकृतेः कोटिकृतिं विशोध्य मूलं भुजो भुजस्य कृतिम् ।
प्रोह्य पदं कोटिः कोटिबाहुकृतियुतिपदं कर्णः ॥ (ब्रा० स्फु० १२।२४)

अर्थात् $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{कोटि}^2} = \text{भुज}$, $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{भुज}^2} = \text{कोटि}$, $\sqrt{\text{कोटि}^2 + \text{भुज}^2} = \text{कर्ण}$

भास्करद्वितीय (१२वीं शती) ने इस प्रमेय की उपपत्ति[1] भी दी है किन्तु हमारे यहाँ रेखागणितीय स्वयंतथ्यों का उल्लेख प्रायः नहीं है और न प्रमेयों की आज के समान उपपत्तियाँ दी हुई है। भारतीय ज्यामिति तो व्यावहारिक थी। डा० दत्त की निम्न उक्ति भी यहाँ अप्रासंगिक न होगी :—

"यूनानी मस्तिष्क सामान्यतः रेखागणितीय पहले था और बाद में कुछ और तथा हिन्दू मस्तिष्क सामान्यतः अंकगणितीय एवं बीजगणितीय पहले था और बाद में कुछ और। आर्यभट ने अंकगणितीय वर्ग और घन की चर्चा करते हुए वहीं एक शब्द में ज्यामितीय वर्ग और घन की ओर भी निर्देश कर दिया है :—

वर्गः समचतुरश्रः फलं च सदृशद्वयस्य संवर्गः ।
सदृशत्रयसंवर्गो घनस्तथा द्वादशाश्रिः स्यात् ॥

मुगलों के शासन-काल में यूक्लिड के एलीमेंट का भारत में प्रचार हुआ। जहांगीर के राजज्योतिषी कमलाकर ने सिद्धान्त-तत्व-विवेक नामक ग्रन्थ में अपने तत्सम्बन्धी ज्यामितीय ज्ञान का परिचय दिया है। उन्होंने रेखा की निम्न परिभाषा की है :—

दैर्घ्यं यस्याः सदैवास्ति विस्तारो नैव विद्यते।
अतिसूक्ष्मा च सा रेखा ज्ञेया बुद्धिमता द्विधा ॥
अवक्रा वक्रगा तत्र वक्रा तु सरलाभिधा।

अर्थात् जिसमें लम्बाई होती है किन्तु चौड़ाई बिलकुल नहीं ऐसी अत्यन्त सूक्ष्म आकार वाली रेखा समझनी चाहिए।

सम्राट्-जगन्नाथ :

सम्राट् जगन्नाथ ने जयपुर के राजा सवाई जयसिंह के आदेशानुसार १७३१ ई० के आसपास नसीरएद्दीन को फारसी ग्रन्थ से यूक्लिड का अनुवाद रेखागणित नामक संस्कृत ग्रन्थ में किया। यह ग्रन्थ गद्य में है। इसके उपरान्त किसी अज्ञातनाम व्यक्ति ने रेखागणित पर 'सिद्धान्त चूड़ामणि' नामक पद्यग्रन्थ लिखा। उक्त दोनों ग्रन्थों में अपूर्व साम्य है। यथा :—

यस्यत्रिभुजस्य भुजत्रयमन्यत्रिभुजस्य भुजैः समानं भवति तदा तस्य कोणत्रयमपि अन्य त्रिभुजस्य कोणैरवश्यं समानं भवष्यति। (रेखागणित)

यस्य त्रिकोणस्य भुजत्रयंचेद् भुजैः समानं क्रमशोऽन्यकस्य।
त्रिकोणको तो समानरूपौ स्यातामिति त्वं खलु दर्शयास्य ॥ (सि० चूड़ामणि)

इसके बाद बापूदेव शास्त्री तथा सुधाकर द्विवेदी ने क्रमशः रेखागणित तथा गोलीय रेखागणित नामक ग्रन्थ पाश्चात्य पद्धति पर लिखे।

रेखागणित के वाचक शब्द :

रेखागणित के अन्य पर्याय ज्यामिति, भूमिति आदि शब्द अंगरेजी के ज्योमेट्री के ही शब्दानुवाद है।[1] ज्यामिति अथवा भूमिति का अर्थ है पृथ्वी नापने की विद्या। हम जानते हैं कि भारत में रेखागणित का प्रारम्भ भूमिनापन से नहीं हुआ जैसाकि मिस्र में हुआ था। यहां तो यज्ञवेदियों के निर्माण के सम्बन्ध में रेखागणित की उन्नति हुई। अतएव भारतीय परम्परा के बोधक शब्द तो शुल्वगणित, रज्जुगणित तथा रेखागणित ही हैं। शुल्वगणित तथा रज्जुगणित यज्ञवेदियों की विधायिनी शुल्व अथवा रज्जु से सम्बन्धित है जिनका बाद में रेखा अर्थ भी हो गया। सम्राट्

---

१. श्रीधर ने भूमिति शब्द अपने ग्रन्थ पाटीगणित के पृष्ठ १०९ में प्रयोग किया था किन्तु उसका अर्थ था "आधार का परिमाण"।

जगन्नाथ ने विषयोपचार तो बाहर से लिया किन्तु रेखागणित नाम तो फिर भी अपनी परम्परा से मिलता हुआ रखा। खेद है कि अब कुछ भारतवासी अपनी प्राचीन परम्पराओं से अनभिज्ञ होकर पाश्चात्य पद्धति पर शब्द-गठन करना चाहते हैं। यह भी नहीं कि अपने प्राचीन शब्दों को देख तो लेते और उनमें से जो सुग्राह्य होते उनको ग्रहण कर लेते। कविकुल शिरोमणि कालिदास की निम्न उक्ति को ध्यान में रखकर हमको मध्यम मार्ग ग्रहण करना चाहिये :—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूर्खः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

प्रकरण २. रेखा

रेखा शब्द रिख् धातु से बना है। रिख् धातु का दूसरा रूप लिख् भी है तथा इसका अर्थ खुरेचना अथवा खींचना है। रिख्यते इति रेखा अर्थात् जो कुछ खुरेचा जावे या खींचा जावे उसको रेखा कहते हैं। पृथ्वी पर तृण आदि नुकीली चीज से प्रायः रेखा खींचते ही हैं। अमरकोष में रेखा शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में भानुजि दीक्षित ने लिखा है "रलयोरेकत्वस्मरणात् रेखाऽपि" अर्थात् र ल में अभेद है अतएव रेखा और लेखा समानार्थक हैं। रेखा और लेखा शब्द शतपथ ब्राह्मण तथा गृह्यसूत्र में लाञ्छन के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।[1] सरल रेखा के लिए बोधायन शुल्ब सूत्र में ऋजु-रेखा शब्द आया है।[2] रेखा शब्द से सरल रेखा का ही अर्थ समझना चाहिए जब तक प्रसंग में कुछ दूसरा अर्थ न दिया हो। संस्कृत में पंक्ति के पर्याय रेखा, लेखा और राजि शब्द हैं क्योंकि पंक्ति सीधी होती है। रेखा शब्द भी अत्यन्त प्राचीन है। सूर्य सिद्धान्त में इसका प्रयोग हुआ है। यथा :—"प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममंडलम्।" अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली रेखा को सममंडल, उन्मंडल तथा विषुवन्मंडल कहते हैं। इस पंक्ति में रेखा शब्द आधुनिक अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। इस प्रसंग में रेखा का अर्थ वक्र रेखा है क्योंकि पृथ्वी के चारों ओर सरल रेखा खिंच ही नहीं सकती। कमलाकर (१६०८ ई०) ने रेखा शब्द की निम्नलिखित परिभाषा की है :—

इसके उपरान्त वे कहते हैं "अवक्रा वक्रगा तत्रावक्रा तु सरलाभिधा" अर्थात् रेखा वक्र और अवक्र दो प्रकार की होती हैं जिनमें से अवक्र रेखा को सरल रेखा कहते हैं। सम्राट् जगन्नाथ (१७०२ ई०) ने अपने ग्रन्थ रेखागणित में रेखा शब्द का प्रयोग किया है यथा :—"तत्र यावत्यो रेखा एक रेखायाः समानान्तरा भवन्ति ता रेखाः परस्परं समानान्तरा एव भविष्यन्ति।" अर्थात् एक रेखा के समानान्तर सकल रेखाएँ परस्पर समानान्तर होती हैं।

पर्याय :

रेखा शब्द के निम्न पर्याय प्राचीन ग्रन्थों में आए हैं :—(१) शुल्व, (२) रज्जु, (३) करणी, (४) लेखा।

समानान्तर रेखा :

जो रेखाएँ एक दूसरे से समान अन्तर अर्थात् समान दूरी पर होती हैं वे समान्तर रेखाएँ कहलाती हैं। इस शब्द का प्रथम प्रयोग वराहमिहिर ने किया है। यथा :—

प्रोक्ता शशिकलंका पूर्वापरयोश्च पार्श्वयोश्चापि।

आयामिन्यो रेखास्त्रयोदश समान्तरा कार्याः॥ (पं० सि०, श्लो० १२, पृ० २१) समान्तर रेखा के स्थान पर हिन्दी में समान्तर रेखा शब्द का प्रचार हुआ किन्तु अब फिर इसको संक्षिप्त करके समान्तर रेखा कर दिया गया है।

प्रकरण ३. लेखा

हिन्दी में लेखा शब्द हिसाब (Account) के अर्थ में आता है। संस्कृत में लेखा के अर्थ रेखा, क्षीण रेखा (चन्द्रलेखा) तथा लेखन थे।

व्युत्पत्ति :

रेखार्थ में लेखा शब्द लिख (भेदने) धातु से बना है। भूमि पर नुकीली चीज से रेखा खींचने पर भूमि का भेदन ही होता है अतः इसको लेखा शब्द से व्यक्त किया गया। र और ल का अभेद होता है अतः रेखा और लेखा समानार्थक हैं। हिसाब के अर्थ में लेखा शब्द लिख् (अक्षर-विन्यासे) धातु से बना है।

प्रयोग :

लेखन के अर्थ में लेखा का प्रयोग विनयपिटक में आता है। महर्षि उपालि

के माता-पिता द्वारा लोगों से पूछने पर कि वह अपने बच्चे को क्या पढ़ावे जिससे उसका भविष्य उज्ज्वल हो, लोगों ने कहा कि 'लेखा' 'रूप' और 'गणना' सिखाने से बच्चे का भविष्य उज्ज्वल होगा किन्तु उपालि के माता-पिता को आशंका हुई कि लेखा सिखाने से कहीं बच्चे को उँगलियों का रोग न हो जाय।

पं० सुधाकर द्विवेदी का मत है कि लेखा शब्द का प्रयोग बौद्ध काल से चला आता है।[१] आज भी हम बोलते हैं कि सबको अपने कर्मों का लेखा-जोखा देना पड़ेगा। लेखापुस्त तथा लेखाकर्म 'बुक कीपिंग' तथा 'एकाउंटेन्सी' के लिए प्रचलित हैं। हिसाब के ब्योरे किसी बही आदि में लिखे ही जाते हैं अतः लेखा शब्द हिसाब के लिए बन गया।

खिंचने पर कम हो न अधिक। जोड़ ऐसे लगाए जायें कि देखने में बुरे न लगें। रस्सी सन मिश्रित मूंज या कुशों की बनाए। यह टूटी न हो" ऐसा कात्यायन ने कहा है।

करणी शब्द भी वेदियों की रचना करने के कारण प्रथम रस्सी के अर्थ में प्रयुक्त होने लगी। कात्यायन शुल्व सूत्र में रज्जु के ५ भेद बताए हैं। यथाः—करणी, तत्करणी तिर्यङ्मानी, पार्श्वमान्यक्ष्णया चेति रज्जवः (का० शु० सू०)

अर्थात् (१) करणी, (२) तत्करणी, (३) तिर्यङ्मानी, (४) पार्श्वमानी, (५) अक्ष्णया ये पाँच प्रकार की रज्जु होती है।

अक्ष्णया रज्जु :

अक्ष्णया करणी तथा अक्ष्णयारज्जु दोनों ही बाद में कर्ण के अर्थ में आये हैं। यथाः—"पदं तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णयारज्जुर्दशकरणी।"

(का० शु० सू० २।८)

अर्थात् $१^२ + ३^२ = १०$

"दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णयारज्जुस्तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदु भयंकरोतीति क्षेत्रज्ञानम्।" (का० शु० सू० २। ११)

अर्थात् आयत की दोनों भुजाओं के वर्गों का योग उसके कर्ण के योग के बराबर होता है।

वर्ग की रेखा बनाते-बनाते रज्जु का अर्थ स्वयं रेखा हो गया। विनयपिटक (२।१२०) में रज्जु का अर्थ रेखा आता है।

स्थानांग सूत्र के ७४७वें सूत्र में रज्जु शब्द रज्जु-संख्यान अथवा रेखा-गणित के लिए आया है। "रज्जु समासं वक्ष्यामः" कात्यायन के इस सूत्र में भी रज्जु का अर्थ रेखागणित ही है। रज्जुसमास का अर्थ रेखागणितीय नियमों का समूह है।

रज्जु एक माप विशेष भी है। जैसे आजकल जरीब, चैन चलते हैं उसी प्रकार उस समय रज्जु इस अर्थ में चलता था। यथाः—

चतुरशीत्यंगुलो व्यामो रज्जुमानां खातपौरुषं च······दशदंडो रज्जुः।

(कौ० अ० शा०)

दंडो भवेत् पाणिचतुष्टयेन रज्जुः स्मृता दंडक विंशतिश्च······(गणित ति०)

अर्थात् रज्जु ८० हाथ की होती थी।

रज्जु का अर्थ त्रिभुज या चतुर्भुज की सब भुजाओं का जोड़ भी है। आजकल इसे स से प्रगट करते हैं यथाः—

द्विसम त्रिभुजक्षेत्रे प्रथमस्य घनं द्विसंगुणितम् ।
रज्जुः समाद्वयोरपि को बाहुः का भवेद्भूमिः ।। (ग०सा०सं०, पृ०१२९)

अर्थात् दो समद्विबाहु त्रिभुज हैं । पहले का क्षेत्रफल दूसरे से दुगुना है । दोनों की परिमितियां बराबर हैं तो दोनों की भुजायें और आधार क्या हैं ।

अनेक जैन ग्रंथों में रज्जु का अर्थ स्वयंभूरमण समुद्र के व्यास से भी है ।

मिल्हइ भुहुमाइ कोई सुरो व गोलो व अयगेआ हिट्ठो
भारसहस्ससमयं सो छम्मासे छहि दिणेहि पि ।।
छ पहरे छ घडीया जाववकमइ जाइवि एतइया ।
रज्जू तत्थ पमाणो दीव समुद्दा हवइ एया ।। (रत्नसंचय ५।१९-२०)

अर्थात् यदि कोई शक्तिशाली देवता १००० भार के गर्म लोहे के गोले को फेंके तो ६ मास ६ दिन ६ पहर और ६ घड़ी में वह जितनी दूर जाये उसको रज्जु कहते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार सन मूंज से बनी हुई रज्जु धीरे-धीरे अर्थ बदल कर गणित की एक शाखा की द्योतक हो गई।

प्रकरण ५. कोण, समकोण, न्यून कोण, अधिक कोण

व्युत्पत्ति :

कोण शब्द की व्युत्पत्ति सदा विवादास्पद रही है। भानुजि दीक्षित[1] ने इसे कुण (शब्दे) धातु से निस्सृत माना है। डा० दत्त[2] ने इसको कर्ण शब्द का अपभ्रंश माना है। उनका विचार है कर्ण से प्राकृत में कोण बना तथा प्राकृत से पुनः यह शब्द बहुत प्राचीन काल से ही संस्कृत में प्रविष्ट हो गया। इन दोनों व्युत्पत्तियों के स्वीकार करने में कई कठिनाइयाँ पड़ती हैं। शब्दार्थक कुण धातु का ज्यामितीय कोण से क्या सम्बन्ध है? यह तो कभी शब्द नहीं करता। हाँ वीणार्थक कोण तथा सारंगी के गज का वाचक कोण शब्द इस धातु से अवश्य निस्सृत है। अब रही कर्ण से कोण बनने की बात। वह भाषाविज्ञान की दृष्टि से एकदम अग्राह्य है क्योंकि इस शैली पर बने हुए अन्य शब्द नहीं मिलते। दूसरे कर्ण शब्द यदि प्राकृत में कोण हो गया होता तो अनुयोग द्वार सूत्र १३३ तथा सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र ५४ में कोण के अर्थ में कर्ण शब्द क्यों प्रयुक्त होता? घन को वहाँ अष्टकर्णिक कहा गया है क्योंकि उसमें ८ कोण होते हैं। हाँ कर्ण से 'कन्न, कन्ने और कान' तो प्राकृत भाषा में मिलते हैं।

मेरा विचार है कि कुण धातु का वक्रित होना अर्थ भी कभी रहा होगा। नहीं तो कुणारु (ऋग्वेद) "मुड़े हुए हाथ वाला" तथा समानार्थक कुणि (सुश्रुत) शब्दों में मुड़े हुए का भाव कहाँ से आ जाता। अतः कुण (कौटिल्ये) धातु से कोण शब्द बना है। अतएव कोण शब्द कुणारु तथा कुणि के परिवार का ही शब्द है। यदि यह प्राकृत में पहले बने तो वैदिक साहित्य में बाद में प्रविष्ट होगये। वेदों में प्राकृत का प्रभाव कई विद्वानों ने अनुभूत किया है और यदि संस्कृत में ही पहले बने तब तो संस्कृत के हैं ही।

प्रयोग :

कोण शब्द का प्राचीनतम प्रयोग अथर्ववेद परिशिष्ट (२३।१) में मिलता है, यथा :—

---

१. देखिये, अमरकोष की टीका।

२. देखिये, साइंस आफ दी शुल्वाज़, अन्तिम पृ०।

"चतुरस्रं चतुष्कोणं तुल्यं सूत्रेण धारयेत्"

सूर्यप्रज्ञप्ति (५०० ई०पू०) के ५४ वें सूत्र में इसका प्रयोग हुआ है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी इसका प्रयोग मिलता है, यथा :—"नष्टकोणं निरश्रि पार्श्वापवृत्तं च अप्रशस्तम् ।" संस्कृत के अन्य प्राचीन ग्रन्थ जैसे पंचतंत्र, कथासरित्सागर, रामताप उपनिषद् आदि में भी इसके प्रयोग मिलते हैं।

त्रिकोण, चतुष्कोण आदि :

सूर्यप्रज्ञप्ति (सूत्र १९-२५) में त्रिकोण, चतुष्कोण, पंचकोण आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। बाद के साहित्य में भी इन शब्दों के प्रचुर प्रयोग हैं।

स्रक्ति:

वैदिक काल में कोण के लिये सर्वप्रथम स्रक्ति शब्द चलता था। पुनः अश्रि शब्द का प्रचार हुआ। ऋग्वेद में नवस्रक्ति नौ कोने वाले स्वर्ग के प्रसंग में आया है। चतुस्स्रक्ति ब्राह्मण तथा आपस्तम्ब श्रौतसूत्रों में प्रयुक्त हुआ है।

कर्ण :

समकोण :

कोण तीन प्रकार का होता है समकोण, अधिक कोण तथा न्यून कोण। यदि एक रेखा पर दूसरी रेखा खड़ी हो तो इस प्रकार जो दो कोण बनते हैं, वे या तो परस्पर सम होते हैं या विषम। यदि सम हों तो समकोण और विषम हों तो विषम कोण कहलाते हैं। चूँकि दोनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है अतः सम होने पर प्रत्येक कोण १ समकोण के बराबर होता है। अतः समकोण अन्वर्थक शब्द है। विषमकोण दो प्रकार का होता है, प्रथम न्यून कोण तथा दूसरा अधिक कोण। समकोण से न्यून होने के कारण इसका नाम न्यूनकोण अथवा अल्पकोण पड़ा तथा समकोण से अधिक होने के कारण अधिक कोण नाम पड़ा। सम्राट जगन्नाथ (१७वीं शती) ने अपने रेखागणित ग्रंथ में इन शब्दों का प्रयोग किया है यथा :—

धरातले रेखाद्वययोगात् सूच्युत्पद्यते सैव कोणः। स ए द्विविधिः समो विषमश्च। तौ यथा। समानरेखायां लम्बयोगादुत्पन्नौ कोणौ प्रत्येकं समकोणौ भवतः, रेखे व मियो लम्बरूपे स्तः। समकोणान्न्यूनोऽल्पकोणो भवति। समकोणादधिकोऽधिककोणो भवति। समातिरिक्तो विषमकोणो भवति। विषमकोणः सरलरेखायां सरल-कुटिलरेखाभ्यां, कुटिलरेखाभ्यां च भवति।

कोणों के ये भेद प्राचीन नहीं है किन्तु अरबी भाषा के आधार पर हैं, जिसके ग्रन्थ का उन्होंने संस्कृत में अनुवाद किया। न्यून कोण शब्द का प्रयोग निम्न पंक्तियों में देखिये :—"यस्य च त्रयोऽपि न्यूनकोणास्तन्न्यून्यूनकोणत्रिभुजं स्यात" (रेखागणित)

न्यून शब्द नि+ ऊन से बना है। ऊन का अर्थ है कम। ऊन शब्द वैदिक 'एकान्न' से बना है जो बिगड़ कर पहले एकोन और फिर संक्षिप्त होकर 'ऊन' हो गया।

प्रकरण ६. लंब, अवलंब-सूत्र

लम्ब शब्द अवलम्ब का संक्षिप्त रूप है। अवलंब शब्द अब स्वतंत्र रूप से गणित का पारिभाषिक शब्द नहीं है किन्तु अवलंबसूच (साहुल सूत्र) के साथ अब भी विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है। मराठी भाषा में साहुल सूत्र को ओली कहते हैं, जो अवलंब का ही परिवर्तित रूप है। अवलंबक, अवलंब तथा लंब इन तीनों का शाब्दिक अर्थ 'लटकने वाला' है। आज भी हमारा कार्य लटका रक्खा है अथवा विलम्बित कर रक्खा है, यह कहते हैं। लटकने अथवा लंबायमान होने के कारण 'लंब' अथवा अवलंब कहलाया। एक सूत्र में कुछ गुरु द्रव्य बांधते हैं और इसी को साहुल सूत्र, अवलंब अथवा लंब कहते हैं, जो ऊर्ध्वाधर दिशा ज्ञात करने के काम आता

है। इस संबंध में श्रीधर कृत पाटीगणित के टीकाकार की निम्न पंक्तियां अवलोकनीय हैं।—

"उपरिष्टात्प्रान्तादवलंबितगुरुद्रव्यसूत्रभूमिसम्पातावधि लम्बः" पृ० १५५, अर्थात् ऊपर से भूमि पर लटका हुआ अवलंब सूत्र, लम्ब कहलाता है। परमेश्वर ने आर्यभटीय की टीका में भी उक्त परिभाषा दी है यथा :—

'गुरुद्रव्यावबद्धाग्रमवलम्बितं सूत्रमवलंबक इत्युच्यते'

ब्रह्मगुप्त ने अवलम्बक शब्द साहूल सूत्र तथा लम्ब इन दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त किया है। यथा :—

सलिलेन समंसाध्यं भ्रमेण वृत्तमवलम्बकेनोर्ध्वम्।
तिर्यक्कर्णेनान्यैः कथितैश्चनव प्रवक्ष्यामि ॥

इस श्लोक में अवलम्बक शब्द साहुलसूत्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वह कहते हैं कि जल से समभूमि को तथा अवलम्बक से ऊर्ध्व दिशा को ज्ञात करते हैं। लम्ब के अर्थ में अवलंबक शब्द निम्न श्लोक में प्रयुक्त हुआ है :—

आदि तथा घन क्षेत्रों के वाचक द्वकारांत, षडश्रि, द्वादशाश्रि आदि पाये गये हैं। डा० दत्त ने सिद्ध किया है कि अश्रि का अर्थ कोर (Edge) है।[1] अतएव अश्रि अथवा अस्र अंत वाले शब्द भुजाओं के आधार पर नाम हैं। शुल्ब सूत्रों में त्रिकर्ण, चतुष्कर्ण, पंचकर्ण आदि शब्द भी आये हैं जिनमें कर्ण का अर्थ कोण है। वैदिक काल की कोण मूलक तथा भुजा मूलक आकृतियों की नाम-पद्धति का बाद में भी अनुकरण किया गया किंतु अश्रि के स्थान पर कोण तथा अश्रि के स्थान पर भुज का प्रयोग हुआ। कोण शब्द का प्रयोग करते हुए त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, सप्तकोण, अष्टकोण आदि शब्दों का प्रयोग सूर्यप्रज्ञप्ति तथा अथर्ववेद परिशिष्ट में मिलता है।[2] सूर्य सिद्धान्त में भी त्रिकोण शब्द आया है। आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्त ने त्रिभुज, चतुर्भुज आदि शब्दों का प्रयोग किया है। यथा :—

वृत्तं भ्रमेण साध्यं त्रिभुजं च चतुर्भुजं च कर्णाभ्याम्। (आर्य०)

त्रिभुजस्य वधो भुजयोर्द्विगुणित लम्बोद्धृतो हृदयरज्जुः।

सा द्विगुणा त्रिचतुर्भुज कोणस्पर्शवृत्त विष्कम्भः॥ (ब्रा० स्फु०, ग० २७)

देखिये भास्कर द्वितीय के लीलावती में त्रिभुज चतुर्भुज शब्दों के प्रयोग :—

त्रिभुजे भुजयोर्योगस्तदन्तर गुणो भुवाहृतो लब्ध्या।

द्विष्ठा भूरूनयुता दलिताबाधे तयोः स्याताम्॥

सर्वदोर्युतिदलं चतुःस्थितं बाहुभिर्विरहितं च तद्वधात्।

भारत में त्रिभुज, चतुर्भुज आदि का प्रयोग है। हमारे यहाँ भी दोनों पद्धतियों के नाम वैदिक काल से ही चले आ रहे हैं।

अंग्रेजी में भी ट्रायेंगल, पेंटागन, हेक्जागन, आक्टेन आदि कोण पद्धति पर तथा क्वाडररीलेटरल आदि शब्द भुज पद्धति पर है। यूनानी शब्दों में बाद में कोण पद्धति अधिक प्रचलित हुई जिसका अंगरेजी शब्दों पर भी प्रभाव है। यूक्लिड ने (३२५ ई० पू०) अपनी पुस्तक 'ऐलीमेंट' में प्रथम भुज पद्धति पर (Tripleuron, (Tetrapleuron, Polypleuron) आकृतियों के भेद किये। बाद में कोण-पद्धति पर (Trigoncn, Tetragonon) आदि नाम भी रक्खे। रोमनों ने यूनानी पद्धतियों का ही अनुसरण किया। प्राचीन मिस्रवासियों, बाबुल निवासियों, हैब्रू तथा अरब वालों ने भुजपद्धति पर नामकरण किया।

त्रिभुजों का भुजाओं के आधार पर वर्गीकरण ब्राह्मस्फुटसिद्धांत में मिलता है। देखिये :—

कृतियुति रसदृशराश्योर्बाहुर्घातो द्विसंगुणोलम्बः।
कृत्यन्तरमसदृशयो द्विगुणं द्विसम-त्रिभुज-भूमिः॥ (१२।३३)
विषमत्रिभुजस्य भुजाविष्टोन फलार्धयोगो भूः। (१२।३४)

इनमें त्रिभुज के समत्रिभुज, द्विसम त्रिभुज, विषम त्रिभुज ये भेद मिलते हैं। महावीराचार्य ने गणितसार संग्रह में कहा है :—

त्रिभुजं तु समं द्विसमं विषम चतुरश्रमपि समं भवति। (क्षेत्रगणित ५)

कोणों के आधार पर न्यूनकोण और अधिककोण त्रिभुजों का ब्रह्मगुप्त ने उल्लेख नहीं किया। समकोणत्रिभुज को जात्य त्रिभुज अवश्य कहा गया है। कोण के अनुसार शेष दो नाम नहीं दिये हैं बल्कि शीर्ष से डाले जाने वाले लंब को बाहर अथवा अंदर होने के अनुसार गणेश ने इनको अंतर्लम्ब (न्यूनकोण त्रिभुज) तथा बहिर्लम्बत्रिभुज (अधिककोण त्रिभुज)नाम दिये हैं। द्वि-सम-त्रिभुज का बाद में समद्विबाहु त्रिभुज नाम पड़ा तथा समत्रिभुज का समत्रिबाहु भी नाम पड़ा है। देखिये सम्राट् जगन्नाथ का वचन 'तत्त्रिविधम्। एकं समत्रिबाहुकं, द्वितीयं समद्विबाहुकं, तृतीयं विषमत्रिबाहुकम। समत्रिभुज 'अर्थात् सम है तीनों भुजायें जिसकी' कितना छोटा और सार्थक शब्द है।

चतुर्भुज के भी समचतुर्भुज, आयत चतुर्भुज, द्विसमचतुर्भुज, त्रिसमचतुर्भुज तथा विषम चतुर्भुज ये भेद ब्राह्मस्फुटसिद्धांत तथा गणितसारसंग्रह में आये हैं। यथा—

त्रिभुजं तु समं द्विसमं विषमं चतुरश्रमपि समं भवति।
द्विद्विसमं, द्विसमं स्यात्त्रिसमं विषमं बुधाः प्राहुः॥ (ग०सा०सं०, पृ० ११०)

आजकल प्रचलित समलंब चतुर्भुज (Trapezium) शब्द श्रीधरकृत पाटीगणित तथा लीलावती के इन आगे लिखे श्लोकों में आया है :—

समानलंबस्य चतुर्भुजस्य मुखोनभूमिं परिकल्प्य भूमिम् ।
भुजौ भुजौ त्र्यस्रवदेव साध्ये तस्याबधे लंबमितिस्ततश्च ॥
षट्पंचाशत् त्रिषष्टिश्च नियते कर्णयोर्मिती ।
कर्णौ तथापरौ ब्रूहि समलम्बं च तच्छ्रुती ॥ (लीलावती)
अयन विरहितार्धयुता मध्यम लम्बस्तु षट्कराः सार्धाः ।
अंगुल पञ्चदशांशोनाः समलम्बे तत्र किं गणितम् ॥ (श्रीधर पाटी०ग०,पृ०१७०)

समलंब शब्द सार्थक है क्योंकि इसमें ऊपर की भुजा के दोनों छोरों से आधार पर डाले हुये लंब परस्पर बराबर होते हैं। ऊपर गणितसारसंग्रह में आया हुआ समचतुरस्र अथवा समचतुर्भुज अब अंगरेजी के 'रोम्बस' शब्द के लिये आता है यह भी सार्थक शब्द है क्योंकि इसकी चारों भुजायें समान होती हैं। पहिले समचतुरस्र शब्द वर्ग के लिये आता था।

समानान्तर चतुर्भुज :

यह शब्द समानान्तरभुज चतुर्भुज का संक्षिप्त रूप है। इसका अर्थ है समानान्तर हैं भुजायें (आमने सामने की) जिसकी। सम्राट् जगन्नाथ ने अपने रेखागणित ग्रंथ में इसी पूरे नाम से इसको व्यक्त किया था—"तत्र द्वे चतुर्भुज-क्षेत्रे समानान्तर-भुजे एक-भित्ति द्वयोः समानांतररेखयोर्मध्ये समानभूमिके यदा भवतस्तदा ते द्वे चतुर्भुजक्षेत्रे समाने भवतः।

अर्थात् यदि दो समानान्तर चतुर्भुज एक ही आधार और एक ही समानान्तर रेखाओं के मध्य स्थित हैं तो वे बराबर होते हैं। अब समानान्तर का भी संक्षिप्त रूप समांतर चलने लगा है। इस प्रकार समानांतरभुज चतुर्भुज का अब समांतर चतुर्भुज बन गया।

समकोण :

समकोण आदि की आधुनिक संकल्पनायें उस समय न होने से उनको जात्यत्रिभुज की कितनी क्लिष्ट परिभाषा देनी पड़ी। इस परिभाषा में पाइथागोरस प्रमेय के मूल तत्व छिपे हैं।

> इष्टोभुजोस्माद् द्विगुणष्ट निघ्नादिष्टस्य कृत्यैकवियुक्तयाऽत्मम्।
> कोटिः पृथक् सेष्टगुणा भुजोना कर्णो भवेत् त्र्यस्रमिदं तु जात्यम्॥ (लीला०)
> अर्थात् यदि भुज 'क' है और इष्ट राशि 'इ' है तो

$$\text{भुज} = \text{क}$$

$$\text{कोटि} = \frac{२\,\text{इ}}{\text{इ}^{२} - १}\,\text{क}$$

$$\text{कर्ण} = (\text{कोटि} \times \text{इ}) - \text{क} = \frac{\text{इ}^{२} + १}{\text{इ}^{२} - १}\,\text{क}$$

यहाँ $\text{कर्ण}^{२} = \text{भुज}^{२} + \text{कोटि}^{२}$, यह सिद्धान्त उक्त साधन में अंतर्निहित है।

प्रकरण ८. कोटि, कर्ण तथा भुजा

कोटि :

कोटि शब्द कुट् धातु से इ प्रत्यय लगाकर बना है। कुट् शब्द का अर्थ है कुटिल करना, मोड़ना। जो कुछ मोड़ा जाये वह कोटि हुई। धनुष का अग्रभाग कुछ विशिष्ट मुड़ा हुआ होता ही है अतः यह कोटि कहलाया। प्रश्न यह है कि धनुष्कोटि होकर कोटि शब्द समकोण त्रिभुज में लंब के अर्थ में तथा त्रिकोणमिति में ९०° की पूरक चाप के अर्थ में कैसे हो गया।

बर्जिस कृत सूर्य सिद्धान्त के अनुवाद में इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला है उसका मत है घ क ख ग ङ एक धनुष है, क घ, ग ङ उसकी कोटियां हैं। क ख ग भुज अर्थात् मुड़ा हुआ (भुग्न) भाग है। क ग, क ख ग की ज्या है अतएव भुज ज्या कहलाती है। क उ भुज ज्यार्ध है जो बाद में में भुजज्या ही कहलाई जिस प्रकार क उ भुज ज्या है उसी प्रकार क इ कोटिज्या है क्योंकि घ क ख एक समकोण की चाप है, तो क घ समकोण पूरक है। क घ उपर्युक्त धनुष की कोटि है अतएव कोटि का अर्थ समकोणपूरक चाप है। जोहन स्ट्रेची का मत है कि समकोण त्रिभुज की कोटि कर्ण और भुजा धनुष से संबंधित तीन चीजें हैं। कोटि धनुष के छोर हैं। भुजा से धनुष पकड़ते हैं और
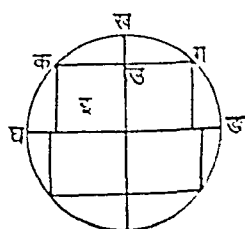
व्युत्पत्ति :

यह शब्द भारत-यूरोपियन धातु √कर् से बना है जिसका अर्थ था : ग्रहण करना। कान भी बाह्य शब्द को ग्रहण करता है अतएव उसको कर्ण हैं। ऋग्वेद के ७वें मण्डल में कर्ण शब्द वर्तनों के कन्नों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ कन्ने वर्तन को पकड़े हुए हैं तथा कन्नों के द्वारा हम वर्तन को पकड़ते हैं अतए का यह अर्थ भी हो है गया। आज भी कड़ाही के कन्ने ही बोले जाते हैं। कर्ण का किनारा भी रहा होगा क्योंकि 'कन्ने' का किनारा अर्थ भी है। हम आज भी हैं "पंतग के कन्ने बाँध दो"। वर्तनों के कन्नों की तरह हम कन्नों की सहायता से पं को पकड़े रहते हैं। कन्ना शब्द का किनारा तथा कोना अर्थ, "वर्तनों के कन्ने ब दो" इस प्रयोग में अब तक सुरक्षित है। कन्ना का स्त्रीलिंग कन्नी धोती की किना के लिए आज भी प्रयुक्त होता है। हम देखते हैं कि कर्ण शब्द के प्राकृत रूपों कर्ण कोण, कोणीयता तथा कोना यह विविध अर्थ पाये जाते हैं शुल्व सूत्रों में कर्ण कोण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (यह अर्थ परम्परा का द्वितीय क्रम है) यथा:—

'एतेनैव त्रिकर्णसमासो व्याख्यातः। पंचकर्णानांच' (कात्यायन शु०सू०४।६,१०

ऐतिहासिक विकास :

अब कर्ण शब्द की अर्थ परम्परा का तृतीय क्रम प्रारम्भ होता है जिसमें कण (कोणों) से जाने के कारण कर्ण रेखा हो संक्षिप्त होकर अकेले कर्ण शब्द से व्यक्त होने लगी। आज कर्ण जिस अर्थ में रेखागणित में प्रयुक्त किया जाता है, शुल्व सू में उस अर्थ में अक्ष्णया रज्जु अथवा अकेला अक्ष्णया शब्द प्रयुक्त किया जाता था अक्ष्णया का अर्थ था कुटिल या तिरछे रूप से जाने वाली। वैदिक शब्द अक्ष्णयाध्रु का अर्थ है व्यर्थ या गलत तरह से द्रोह करने वाला। अक्ष्णया का 'कुटिल तिरछे' अर्थ का यह विस्तार ही था। जो रेखा दिशाओं की ४ मौलिक रेखाओं कोई न्यूनकोण बनाये वह तिर्यक् और उनसे ९०° पर जाये वह सीधी मानी गयी समकोण त्रिभुज में कर्ण सदा परस्पर लम्ब रूप में स्थित दोनों रेखाओं से ९०° कम का कोई अन्य कोण बनाता है अतएव कर्ण कहलाता है। इस सम्बन्ध आपस्तंब की निम्न पंक्तियों का अवलोकन कीजियेः—

"आयामं वाऽभ्यस्यागन्तुचतुर्थमायामस्याऽक्ष्णयारज्जुस्तिर्यङ्मानी-शेषः।"

यहाँ अक्ष्णया का अर्थ समझते हुए करविंद व्याख्या में लिखा है:—

अक्ष्णयेतिनिपातो विभक्ति प्रतिरूपकः। कोणवाची कोणगता रज्जुरक्ष्णयारज्जुः, कर्ण रज्जुरित्यर्थः। शुल्वों में सबसे प्राचीन बौधायन शुल्व सूत्र में एक स्थल पर कर्ण पूर्वज अक्ष्णया कर्ण के अर्थ में न होकर केवल तिर्यग्रेखा के ही अर्थ में है। यथा :—

"चतुरस्रमेकतोऽणिमच्चिकीर्षन्नणिमतः करणीं तिर्यङ्मानी कृत्वा शेषमक्ष्णया विभज्य विपर्यस्येतरत्रोपादध्यात्" आसन्न चित्र में क ख अक्ष्णया है। इस वर्ग को यहाँ अक्ष्णया से विभाजित किया गया है और इधर का टुकड़ा उधर रख देने से वर्ग का अणिमत् (Trapezium) बन गया।
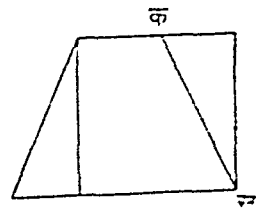
भूकर्ण, चापकर्ण :

सूर्य-सिद्धान्त में 'भू-कर्ण' पृथिवी के व्यास के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कर्ण-व्यास के लिए प्रयुक्त हुआ है क्योंकि यह पृथिवी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाता है। सम्राट जगन्नाथ ने जीवा के अर्थ में 'चापकर्ण' शब्द का प्रयोग किया है। यह भी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाता है। चापकर्ण शब्द का प्रयोग इससे पहिले और बाद में कभी नहीं मिलता। इसके लिए बाद में जीवा शब्द प्रयुक्त होने लगा। सम्राट् जगन्नाथ ने कर्ण से मिलता हुए चापकर्ण शब्द का प्रयोग सम्भवतः अरबी के सम्पर्क से किया क्योंकि वहाँ वतर, समकोण त्रिभुज के कर्ण तथा जीवा दोनों को ही व्यक्त करता है। चाप की जीवा को वतर (धनुष की डोरी) कहना तो ठीक है क्योंकि वह वास्तव में इसी आकृति का होता है किन्तु समकोण त्रिभुज के कर्ण को वतर क्यों कहा ? इसका उत्तर आपस्तंब की उपरिउद्धृत पंक्ति की टीका से तुलना करके मिल जाता है। वहाँ उसे कर्णरज्जु कहा गया है। सूत्र में इसे अक्ष्णयारज्जु से व्यक्त किया गया है। शुल्वकाल में यह सारे काम रज्जु ही किया करती थी।[1] अतः अरबी पर यह संस्कृत का प्रभाव प्रतीत होता है। किन्तु अरब वालों ने एक विशेषता की। हमारे यहाँ साइन के लिए जीवा तथा ज्या एवं कार्ड (Chord) के लिए जीवा शब्द था। इसमें अर्थ साम्य के कारण कुछ समझने में कठिनाई पड़ती थी उन्होंने इस कठिनाई को बिल्कुल दूर कर दिया और साइन के लिए हमारा शब्द जैब (जीवा) तथा कार्ड के लिए एक अलग शब्द वतर रख लिया। हिन्दी की वर्तमान शब्दावली में संस्कृत तथा अरबी के समस्त गुण तो ले लिए किन्तु दोष किसी के न लिए। उन्होंने उक्त तीनों अर्थों में तीन पृथक्-पृथक् शब्द रखे। यथा :—

कर्ण	=	Hypotenuse
विकर्ण	=	Diagonal

शुल्व सूत्रों में वर्ग की भुजा को करणी तथा विकर्ण को द्विकरणी कहते थे। क्योंकि विकर्ण के बराबर रज्जु दुगुने वर्ग को करने (बनाने) वाली होती थी।

प्रकरण ११. वृत्त, दीर्घवृत्त

यह वृत् धातु से कर्ताकारक के अर्थ में क्त प्रत्यय लगाकर बनता है। वृत् धातु का इस शब्द में चारों ओर घूमने का अर्थ है जो चारों ओर घूमे वह वृत्त है। वृत्त की परिधि चारों ओर मुड़ी हुई या घूमी हुई ही होती है। वृत्त धातु का चारों ओर घूमना, परिक्रमण करना यह अर्थ ऋग्वेद में आता है। वृत्त शब्द भी ऋग्वेद में आता है। उसका वहाँ 'घूमा हुआ', 'चक्र के समान गति में प्रवृत्त' यह अर्थ है।

अपने यौगिक अर्थ में वृत्त का अर्थ केवल 'कर्वीलीनियर' आकृति है अर्थात् मोड़ खाने वाली आकृति या बन्द आकृति। अतएव कुछ लोगों ने वृत्त के अर्थ में समवृत्त शब्द प्रयुक्त किया था जिसका अर्थ है चारों ओर से एक समान मुड़ी हुई। जो एक ओर कम और एक ओर अधिक मुड़ी हुई हो वह आकृति विषमचक्रवाल थी जो सूर्यप्रज्ञप्ति में इलिप्स के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। समवृत्त शब्द का महावीरकृत प्रयोग निम्न श्लोक में देखिए :—

> गणितं चतुरभ्यस्तं दशपदगवत्तं पदेभवेद्व्यासः।
>
> सूक्ष्मंसमवृत्तस्य क्षेत्रस्य च पूर्ववत्फलं परिधिः॥ (ग०सा०सं०, पृ० १३२)

शतपथ ब्राह्मण में यह गोल या वर्तुल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैदिक साहित्य में इसके लिए मंडल, परिमंडल और चक्र शब्द भी आये हैं। सूर्य प्रज्ञप्ति[1] में इसके लिए समचक्रवाल शब्द आया है। बाद के साहित्य में इसके लिए वलय शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। बौधायन शुल्व सूत्र में वृत्त को मंडल तथा केन्द्र के लिए मध्य शब्द आया है। देखिए :

> 'चतुरस्रं मण्डलं चिकीर्षन्नक्ष्णयार्द्धं मध्यात् प्राचीमभ्यपातयेद्यतिशिष्यते तस्य सहतृतीयेन मण्डलं परिलिखेत्' (१।५८।)

अर्थात् यदि आपको वर्ग के बराबर एक वृत्त खींचना है तो इसके केन्द्र से

---

१. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र ११,२५।

पूर्व पश्चिम रेखा की ओर आधा कर्ण खींचो तब एक वृत्त खींचो तथा साथ ही दूसरे वृत्त का तृतीयांश भी खींचो जो वर्ग के बाहर रहता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र, जैनग्रंथ, भगवतीसूत्र (७२४-७२६) तथा अनुयोगद्वार सूत्र (१२३-१२४) में भी वृत्त शब्द का प्रयोग है। देखिये वराहमिहर के वृत्त और मध्य (केन्द्र) शब्दों के प्रयोग :—

याम्योदक्समसूत्रादपक्रमांशावगाहिभिः सूत्रैः।
प्रथमवदंशक्षिप्तं वृत्तत्रयमालिखेन्मध्यात्॥ (प०सि० २, पृ० ३०)

इसके अतिरिक्त पंचसिद्धान्तिका के पृष्ठ २५ एवं ४० के १८वें तथा २२वें श्लोक में भी मध्य शब्द का अर्थ केन्द्र है।

जिसमें तारा वर्तमान रहे (वर्तते) वह उस तारे का अहोरात्र वृत्त होता है।[1] वृत्त शब्द का प्राकृत रूप वट्ट है।

दीर्घवृत्त :

दीर्घ अर्थात् लंबा किया हुआ वृत्त। वृत्त को यदि हम ऊपर से पिचका दें तो कुछ एक ओर अधिक लम्बा हो जाता है और अतएव इस नवीन आकृति को दीर्घवृत्त शब्द से बोधित किया जाता है। दीर्घवृत्त शब्द के स्थान पर इससे पूर्व आयतवृत्त शब्द प्रयुक्त किया जाता था और शुल्व सूत्रों में आयत को दीर्घ-चतुरस्र अथवा दीर्घ शब्द से व्यक्त किया गया था। किन्तु बाद में दीर्घ के स्थान पर जब आयत शब्द प्रयुक्त होने लगा और आयत चतुरस्र के स्थान पर केवल 'आयत' शब्द प्रयुक्त होने लगा तो आयत के अन्य अर्थों में दीर्घ शब्द प्रयुक्त होने लगा जिससे कि अर्थ-ग्रहण में संदिग्धता न रहे।[2]

अर्थात् दीर्घाक्ष में अर्धलघ्वक्ष को जोड़े तथा २ से गुणा करें। इस प्रकार दीर्घवृत्त की परिधि प्राप्त होती है पुनः ¼ लघ्वक्ष को परिधि से गुणा करने पर उसका क्षेत्रफल प्राप्त होता है। अतः दीर्घवृत्त शब्द एक प्रकार से नवीन नहीं है किन्तु वहुत प्राचीन है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दीर्घवृत्त के आविष्कार का श्रेय जो यूनानी मिनैक्मस (३५० ई० पू०) को दिया जाता है वह ठीक नहीं है क्योंकि उससे वहुत पहिले बौद्धकाल में ही यह भारत में ज्ञात था।

प्रकरण १२. व्यास

वृत्त के व्यास को शुल्व सूत्रों में व्यास, विष्कंभ, व्यायाम तथा जैन और वाद के संस्कृत ग्रंथों में विष्कंभ, विस्तृति, विस्तार आदि शब्दों से व्यक्त किया गया है। देखिये आर्यभट के वृत्त और विष्कंभ शब्दों के प्रयोग :—

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणां।

अयुतद्वयविष्कंभस्यासन्नो वृत्त-परिणहः॥

अर्थात् यदि व्यास=२०,००० तो परिधि का आसन्नमान=६२,८३२। पाई का मूल्य इससे ३.१४१६ आता है। इस समय तक पाई का इतना सूक्ष्म मान अज्ञात था।

विष्कंभ दरवाजे के अरगड़े को कहते हैं। बच्चे जब लचकीली अरहर की लकड़ी का पहिया बनाते हैं तो उसमें इधर-उधर एक लकड़ी भी लगा देते हैं। जिससे कि चलने पर उसकी यह आकृति अक्षुण्ण बनी रहे। यह लकड़ी व्यास के बराबर होती है और पहिए को पिचकने से रोके रहती है। किवाड़ को खुलने से विष्कंभ रोकता है अतएव व्यास का दूसरा नाम विष्कंभ है।

व्युत्पत्ति :

व्यास शब्द वि पूर्वक अस् धातु से बना है। इसका अर्थ है व्यस्यतेऽनेन' वृत्तमिति व्यासः अर्थात् इसके द्वारा वृत्त दो भागों में बँट जाता है अतएव इसे व्यास कहते हैं। व्यास जी ने भी वेदों को भागों में विभाजन किया तथा उनका क्रमीकरण किया अतएव उनका नाम वेदव्यास है। 'विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद् व्यास इतिस्मृतः' (महाभारत)।

व्यास का अर्थ समास का विलोम, विस्तार तथा चौड़ाई भी है। देखिए :—

'आयाम व्यास पिंडेन नव पंचैक हस्तिका' (ग० ति, पृ० ७६)

पर्याय :

यहाँ आयाम, लम्बाई, व्यास, चौड़ाई तथा पिंड मोटाई को आया है। व्यास, विस्तार, विस्तृति पर्यायवाची शब्द होने के नाते एक दूसरे के स्थान में प्रयुक्त हो जाते हैं। कर्ण शब्द भी भूकर्ण में व्यास के अर्थ में आया है।

त्रिज्या :

व्यास के आधे भाग को व्यासार्ध, अर्धव्यास अथवा त्रिज्या कहते हैं। आपस्तंब शुल्ब सूत्र में (७।१२) इसको अर्धव्यायाम भी कहा है। त्रिज्या का अर्थ है त्रिभज्या अर्थात् ३ भ (राशियों) की ज्या। इस प्रकार त्रिज्या शब्द का पूर्ण रूप त्रिभज्या अथवा त्रिराशिज्या है। मध्यम-पदलोपी समास से राशि अथवा 'भ' शब्द का लोप होकर त्रिज्या शब्द बना। देखिए वराहमिहिर का प्रयोग :—

> उच्छ्रांश द्विगुणोन त्रिभज्ययोना चयस्य चापज्या।
> षष्टिगुणा साकरणी तथा ध्रुवोनावशेषस्य ॥ (प० सि०, पृ० १२)

बारह राशियाँ ३६०° के बराबर होती हैं अतएव एक राशि ३०° के तथा तीन राशियाँ ९०° के बराबर हुईं। ९०° की ज्या (Sine) एक के बराबर होती है। ऐकिक वृत्त में अर्धव्यास एक एकक माना गया और इसी से ज्या आदि की परिभाषायें बनीं। अतएव त्रिज्या = १ = अर्धव्यास।
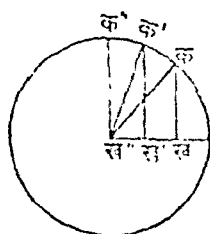
संलग्न चित्र में ज्या क ग कोण के साथ बढ़ते हुये क' ग' तथा अन्त में ९०° की ज्या क'' ग'' अर्थात् त्रिज्या अर्धव्यास के बराबर हो गई।

परवर्ती सब लेखकों ने इस शब्द को अपनाया। भास्कर प्रथम से पूर्व ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०) ने भी इसका प्रयोग किया था। यथा :—

मासगणो यमगुणितः पृथक् कुतत्वोद्धृतः फलसमेतः।

सार्वाष्टयुतो वसुमयविभक्त शेषो विधोः केन्द्रम्॥ (ब्रा० स्फु० सि० २५।६)

मध्य, नाभि :

केन्द्र के पहिले इस अर्थ में मध्य और नाभि शब्द चलते थे। नाभि-चक्र-नाभि के अर्थ में प्रयुक्त होता था। ऋग्वेद तथा उपनिषदों में इसका प्रयोग है। देखिए :—

"कोऽस्य वेद भुवनस्य नाभि को द्यावापृथिवीऽन्तरिक्षम्। कः सूर्यस्य वेद वृहतो जनित्रं को वेदचन्द्रमसं यतोजाः।" (यजुर्वेद २३।५९।)

"अराइव रथनाभौ प्राणेसर्वप्रतिष्ठितम्" (प्रश्नोपनिषद)

रघुवंश में यह केन्द्रीय विन्दु के अर्थ में है। देखिये :—

"उपगतोऽपि च मण्डलनाभिताम्" (रघु० ९।१५।)

केन्द्र के अर्थ में मध्य शब्द का प्रयोग वराहमिहिर द्वारा भी किया गया है। यथा :—

याम्योदक् समसूत्रादपक्रमांशावगाहिभिः सूत्रैः।

प्रथमवदंश क्षितं वृत्तत्रयमालिखेन्मध्यात्॥

यहाँ मध्य का अर्थ केन्द्र है।[1]

प्रश्न यह है कि जब समानार्थक मध्य और नाभि शब्द थे तो विदेशी केन्द्र शब्द को क्यों अपनाया गया। वराहमिहिर ने निश्चय ही कुछ यूनानी ज्योतिष के विचारों को अपनाया था यह बृहज्जातक में प्रयुक्त किये हुए आपोक्लिम, मेपूरण आदि अनेक यूनानी शब्दों के प्रयोगों से ज्ञात होता है। यथा :—

केन्द्रात्परं पणफरं परतश्च सर्वमापोक्लिमं हिबुकमम्बु सुखंच वेश्म।

यामित्रमस्तभवनं त्रिकोणं मेपूरणं दशममत्र च कर्म विन्द्यात्॥

(बृ०जा०, पृ०२१)

यहाँ यामित्र (Diametron), आपोक्लिम (Apoklima), त्रिकोण (Trigonon) शब्दों का प्रयोग किया गया है।

उनको केन्द्र से सम्बद्ध निम्न अन्य भावों के लिए शब्द चाहिए थे :—

१. दोनों गतिशीर्षों से किसी गृह की दूरी।[2]

---

१. देखिये पंचसिद्धान्त का श्लोक २, पृ० ३०।

२. मंद केन्द्र का अर्थ मंदोच्चों (apsis) से ग्रह की दूरी। इसी प्रकार शीघ्र केन्द्र का अर्थ संयुति (Conjunction) से ग्रह की दूरी।

३. केन्द्र सम्बन्धी अन्य फलित ज्योतिष के विचारों को हमारी भाषा में शब्द न थे अतः छोटा शब्द केन्द्र ही ले लिया।

४. केन्द्र के गणितीय अर्थ वृत्त-केन्द्र के लिए मध्य शब्द था वह यथार्थ (Exact) नहीं था अतएव, केन्द्र गणितीय अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा।

५. केन्द्र का पर्यायवाची कण्टक शब्द भी वराहमिहिर के ग्रंथों में मिलता है जिसका अर्थ भी नुकीली चीज अथवा नोक अथवा छेदने या भुकने वाली चीज (Prickle) है।[1] यही अर्थ यूनानी 'केंत्रान' का भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्र तो स्वयं यूनानी भाषा का केंत्रान का संस्कृतीकरण है और कण्टक शब्दानुवाद है। दूसरे शब्दों में एक लिप्यन्तरण है तो दूसरा अनुवाद है।

६. केन्द्र के अन्य अर्थों के लिए शब्दों की आवश्यकता भी पड़ी। केन्द्र के वर्तमान अर्थ के लिए तो मध्य शब्द था, अतएव नया शब्द न बनाकर, ज्ञान के साथ २ शब्द भी अपना लिया अतएव वराहमिहिर ने केन्द्र को अन्य अर्थों में अधिक प्रयुक्त किया और वर्तमान अर्थ में अधिकतर मध्य ही प्रयुक्त किया। बाद को मध्य अयथार्थ (Inexact) होने के कारण छोड़ दिया गया और केन्द्र वर्तमान अर्थ में भी प्रचलित हो गया। सब जगह योग्यतमावशेष (Survival of the fittest) का सिद्धांत चलता है। वराहमिहिर ने ही इस अर्थ को प्रारम्भ कर दिया था।

प्रकरण १४. चाप

चप नामक बांस से बना हुआ इस अर्थ में चाप धनुष का एक विशेषण था। शार्ङ्ग भी इस प्रकार 'शृंग' (सींग) से बना हुआ एक धनुष का विशेषण था। चाप (चप से निर्मित) धनुष् का विशिष्ट नाम कोदण्ड था तथा शार्ङ्ग चाप को धनुष कहते थे। देखिए कौटिल्य अर्थशास्त्र का प्रयोग :—

उत्पत्ति :

'ताल चाप दारवं शार्ङ्गाणि कार्मुककोदण्ड द्रूणा धनूंषि।

(कौ०अ०आयधाध्यक्ष १८ वां)

अर्थात् ताल से बने हुए धनुष् को कार्मुक, चप से बने हुए को कोदण्ड, धन्वन् दारु से बने हुए को द्रूणा तथा सींग से बने हुए को धनुष् कहते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि विशेषता प्रगट करते २ ये विशेषण स्वयं विशेष्य हो गए और इस प्रकार चाप और शार्ङ्ग शब्द स्वयं धनुष के पर्यायवाची बन गए। देखिए :—

१. देखिये मोनियर-विलियम-संस्कृत-अंगरेजी-कोष।

जीवा जीवन्तिका मौर्वी वचा शिंजित भूमिपु।

तन्त्री तु जीवितं···इति मेदिनी।

मुहुर्जीवाघोषैर्वविरयति। (महावीरचरित ६।३०)

गणित के छन्दोबद्ध होने के कारण ज्या के अन्य पर्यायवाची मौर्वी आदि शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त हुए। बाद को ज्या शब्द अंगरेजी के साइन शब्द के लिए प्रयुक्त होने लगा। देखिए :—

"राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते" (सूर्यसिद्धान्त)

इस प्रकार ज्या और जीवा का कार्य-क्षेत्र बदल गया। अर्थात् ज्या केवल त्रिकोणमितीय अर्थ में तथा जीवा केवल ज्यामितीय अर्थ (कार्ड) में प्रयुक्त होने लगा। इस समस्या को अब अरब वालों ने ज्या के अर्थ में जेब (जीवा) और जीवा के अर्थ में ज्या का अनूदित शब्द वतर (धनुष की डोरी) करके सुलझा लिया। आर्यभट ने भी ज्या को जीवा (कार्ड) के अर्थ में प्रयुक्त किया है। गोलपाद में उन्होंने विषुव-जीवा शब्द में जीवा का प्रयोग किया है। ब्रह्मगुप्त ने ज्या और जीवा दोनों ही शब्द दोनों अर्थों अर्थात् काडं तथा साइन में व्यवहृत किये हैं।[1] जीवा को वर्तमान अर्थ में निम्न श्लोक में प्रयुक्त किया है :—

वृत्ते शरोनगुणिनाद् व्यासाच्चतुराहतात्पदं जीवा। (ब्रा० स्फु० सि० १२।४)

अर्थात् $\sqrt{\text{शर} + \text{शरोनव्यास} \times ४} = \text{जीवा}$

इसी जीवा के नाम पर त्रिकोणमितीय ज्या का नाम पड़ा। क्योंकि ज्याओं का मान पहले जीवाओं द्वारा ही निकाला जाता था। यही पद्धति भारत से अरब तथा अरब से योरोप पहुँची। वहाँ भी धनुष की डोरी के अर्थ के ही वतर और कार्ड शब्द हैं। देखिए सूर्य-सिद्धान्त के बर्जिस कृत अनुवाद का उल्लेख :—

Sines were named after those of chords because sines were substituted in calculation for the chords, a method invented by Hindus went to Arabia by Greeks.

प्रकरण १७. शंकु तथा सूचीस्तम्भ

शंकु :

प्रारम्भ में इस शब्द का अर्थ ठूंठ, कील, कांटा या बर्छी था।

यथा :— "स्थाणुर्वा ना ध्रुवः शंकुः" (अमरकोष)

या "पुंसि शल्यं शंकुर्ना" (अमरकोष)

1. ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त २२।२२, १२।४२।

तत्क्षेत्रं सूचीफलकशंकुघनक्षेत्रं भवति ।

अर्थात् बहुभुज के धरातल से निकली हुई सूचियों के अग्र यदि एक बिन्दु पर मिलें तो वह सूचीफलक शंकुघनक्षेत्र कहलाता है ।

ब्रह्मगुप्त ने सूची शब्द पिरैमिड के लिये प्रयुक्त किया था । देखिये :—

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखातफलं हृतं त्रिभिः सूच्याः

अर्थात् समखात (प्रिज्म) का घनफल = क्षेत्रफल × वेध (गहराई)

तथा सूची का घनफल $= \frac{१}{३}$ क्षेत्रफल × वेध

तत्क्षेत्रं सूचीफलकशंकुघनक्षेत्रं भवति ।

अर्थात् बहुभुज के धरातल से निकली हुई सूचियों के अग्र यदि एक बिन्दु पर मिलें तो वह सूचीफलक शंकुघनक्षेत्र कहलाता है ।

ब्रह्मगुप्त ने सूची शब्द पिरैमिड के लिये प्रयुक्त किया था । देखिये :—

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखातफलं हृतं त्रिभिः सूच्याः

अर्थात् समखात (प्रिज़्म) का घनफल $=$ क्षेत्रफल $\times$ वेध (गहराई)

तथा सूची का घनफल $= \frac{१}{३}$ क्षेत्रफल $\times$ वेध

प्रकरण २. उत्क्रमज्या

त्रिकोणमिति के इस दूसरे फलन को भी हिन्दुओं ने आविष्कृत किया। इसको अंगरेजी में वर्स्ड साइन (Versed Sine) कहते हैं। वर्स्ड का अर्थ है उलटा। अतएव वर्स्ड साइन का शाब्दिक अर्थ $\frac{१}{\text{साइन}}$ हुआ जो कि उसके वास्तविक अर्थ १-कोसाइन से एकदम दूर है और इस अर्थ-अशुद्धता की व्याख्या उनके पास कोई नहीं है। अरबी में इसे सुहम कहते हैं, जिसका अर्थ है वाण। यह अर्थ भी गणितीय अर्थ से तिलमात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता। इन दोनों भाषाओं में गणितीय अर्थ में उक्त शब्दों की कोई व्युत्पत्ति नहीं है और हो भी कैसे जब कि यह संस्कृत शब्द उत्क्रमज्या तथा उसके पर्याय शर के अनुवाद मात्र हैं। अतएव हमारा उत्तरदायित्व है कि हम बतायें कि उत्क्रमज्या में क्या उत्क्रमता है। आइये अब इस शब्द की व्युत्पत्ति की विवेचना करें। नीचे ज्या प्रकरण में बताये हुए श्लोकों के अनुसार २४ ज्या-मानों, ज्यांतर-मानों तथा उत्क्रमज्या-मानों की सारणी दी हुई है।

क्रमांक	अंश	कला	ज्यामान (कलाओं में)	ज्यान्तर मान (कलाओं में)	उत्क्रमज्यामान (कलाओं में)
१	३	४५	२२५	३२१३	७
२	७	३०	४४९	२९८९	२९
३	११	१५	६७१	२७६७	६६
४	१५	०	८९०	२५४८	११७
५	१८	४५	११०५	२३३३	१८२
६	२२	३०	१३१५	२१२३	२६१
७	२६	१५	१५२०	१९१८	३५४
८	३०	०	१७१९	१७१९	४६०
९	३३	४५	१९१०	१५२८	५७९
१०	३७	३०	२०९३	१३४५	७१०
११	४१	१५	२२६७	११७१	८५३
१२	४५	०	२४३१	१००७	१००७
१३	४८	४५	२५८५	८५३	११७१
१४	५२	३०	२७२८	७१०	१३४५
१५	५६	१५	२८५९	५७९	१५२८
१६	६०	०	२९७८	४६०	१७१९
१७	६३	४५	३०८४	३५४	१९१८

कोटिज्या ही कहना उपयुक्त होगा। सूर्यसिद्धान्त में भुजज्या और कोटिज्या का निम्न पंक्तियों में प्रयोग हुआ है :—

> शेषं केन्द्रपदं तस्माद् भुजज्याकोटिरेव च।
> युग्मे तु गम्याद् बाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत् ।। (२।२९,३०)

इन पंक्तियों में भुजज्या के स्थान पर बाहुज्या शब्द भी प्रयुक्त हुआ है क्योंकि बाहु भुज का पर्याय है।

ऐतिहासिकता :

यूनानियों के पास तो कोज्याफलन नहीं था अर्थात् उन्होंने कोटिपूरक चाप की जीवा निकालने का प्रयत्न नहीं किया अतएव कोज्या का वहाँ कोई शब्द नहीं है। अंगरेजी का कोसाइन शब्द संस्कृत कोटिज्या का अनुवाद मात्र है। कोसाइन का पूरा रूप काम्पलीमेंट्री साइनस है जिसका अर्थ है साइन आफ दी काम्प्लीमेंट। काम्प्लीमेंट्री, कोटि का तथा साइन ज्या का अनुवाद है।

ज्या, कोज्या का मान किस २ वृत्त पाद में धन तथा ऋण रहता है, यह मुंजाल (९३२ ई०) ने अपने ग्रंथ लघुमानस में बताया है। देखिये :—

> ग्रहः स्वोच्चोनितः केन्द्रं तदूर्ध्वाधोऽर्धजो भुजः।
> धनर्णं पदशः कोटी धनर्णर्णं धनात्मिका ।। (२।१)

अर्थात् उपरि अर्धवृत्त में ज्या धन तथा निम्न में ऋण रहती है एवं कोटिज्या प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ वृत्तपाद में क्रमशः धन, ऋण एवं धन रहती है।

प्रकरण ४. स्पर्शज्या तथा कोटिस्पर्शज्या

स्पर्शज्या और कोटिस्पर्शज्या ये अंगरेजी के त्रिकोणमितीय टैंजेट तथा कोटैंजेंट शब्दों के अनुवाद हैं। उन्होंने ज्यामितीय और त्रिकोणमितीय दोनों अर्थों में एक ही शब्द रक्खे हैं। हमने दोनों को पृथक्-पृथक् शब्द स्थिर किए हैं। ज्यामिति में स्पर्श शब्द में रेखा तथा त्रिकोणमिति में ज्या लगाकर उक्त भिन्न-भिन्न संकल्पनाओं से भिन्न २ शब्द बनाए हैं। अरबी में टैंजेंट को ग्रतेगुमास कहते हैं। अंगरेजी शब्द टैंजेंट तथा हिन्दी स्पर्शरेखा उसी के अनुवाद हैं। क्योंकि गुमास शब्द का अर्थ है स्पर्श। आसन्न चित्र में कोण अ की स्पर्शज्या बिन्दु प पर खिंची हुई एक स्पर्श रेखा ही है। यहाँ त्रिज्या एक के बराबर मान लिया गया है।
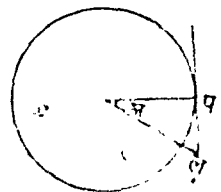
अध्याय ६.

ज्योतिष

प्रकरण १. ज्योतिष

व्युत्पत्ति :

ज्योतिष शब्द 'ज्योतिष्' शब्द से अच् प्रत्यय लगाकर बना है। ज्योतिष् अथवा ज्योतिः का अर्थ है सूर्यादि नक्षत्र और ग्रह। अतएव ज्योतिष का अर्थ है 'ज्योतियों अर्थात् सूर्यादि नक्षत्रों तथा ग्रहों की गतियों आदि जानने की विद्या। प्रारम्भ में ज्योतिष खगोलीय ज्ञान तक ही सम्बन्धित था और वेध द्वारा ही उनके स्वरूप आदि का ज्ञान कर लेते थे। गणित का तो बाद में विकास हुआ अतएव ज्योतिष शब्द प्रारम्भिक परिभाषा की ओर संकेत करता है। छांदोग्य उपनिषद् का नक्षत्रविद्या शब्द भी उक्त तथ्य को समर्थित करता है। वाजसनेयिसंहिता में नक्षत्र-दर्श शब्द आया है जिससे प्रतीत होता है कि उस काल में नक्षत्रों का वेध कर लेते थे। किन्तु संहिताकाल में ही गतिगणना करना प्रारम्भ कर दिया था तभी तो कहा है 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शं यादसे गणकम्' अर्थात् विशिष्ट ज्ञान के लिए नक्षत्रदर्शक गणक के पास जाओ। स्पष्ट है गणक का अर्थ यहां ज्योतिषी है क्योंकि वह गतियों की गणना कर लेता था। नेमिचन्द्र शास्त्री कहते हैं, "ईस्वी सन् से पांच सौ वर्ष पूर्व रचे गए प्राचीन जैन आगम में ज्योतिषी के लिए 'जोइसंगविउ' शब्द आता है। भाष्यकारों ने इस शब्द का अर्थ 'ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक और ताराओं के विभिन्न विषयक ज्ञान के साथ राशियों और ग्रहों की सम्यक् स्थिति के ज्ञान को प्राप्त करना' किया है। अतएव स्पष्ट है कि उदयकाल में राशिचक्र, नक्षत्रचक्र और ग्रहक्रम का प्रचार था।"

प्रयोग :

ज्योतिष शब्द का प्रथम प्रयोग आपस्तंब धर्मसूत्र, मुण्डोपनिषद् तथा वेदांग ज्योतिष में मिलता है। यथा :—

> वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।
> तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेदयज्ञान ॥

यहां ज्योतिष को कालविधानशास्त्र भी कहा गया है। वास्तव में यज्ञों के समुचित समय जानने के लिए ही ग्रहगतिगणना प्रारम्भ हुई होगी।

नहीं है। हो सकता है कि हमारे नामों से उनके नाम प्रभावित हों, इस लेख के अंत में इन नामों की सूची दी जा रही है। हमारे वारों के नाम ग्रहों पर हैं। जिनके नाम अत्यन्त प्राचीन हैं। सोम तथा बृहस्पति के नाम वैदिक काल के हैं। अंगरेजी के नाम ग्रहों पर नहीं हैं उनमें से कुछेक देवी-देवताओं के नाम पर भी हैं जैसे फ्राइडे 'फ्रिग नामक देवी पर', ट्यूजडे, 'टिव' नामक देवता पर तथा 'थर्सडे' थोर नामक गर्जन देवता पर हैं। लैटिन के नाम प्रायः ग्रहों पर ही हैं किन्तु हमारे यहां आर्ष-ज्योतिष काल से वारकल्पना मिलती है अतएव यह कहना कि हमने यूनानियों से वारकल्पना ली यह सन्देहास्पद है।

भारतीय ज्योतिष में आपोक्लिम, द्रेष्काण, मेषूरण, हरिज आदि यूनानी नामों के आ जाने से अनेक विद्वानों का यह विचार कि भारतीय ज्योतिष यूनानियों से आई है, मिथ्या है। ५वीं शती के पूर्व अनेक यूनानी लोग भारत में आकर रहते थे। उनका बैक्टरिया का साम्राज्य तो समाप्त ही हो गया था और वे हिन्दू धर्म में परिवर्तित हो रहे थे अतः उनका संस्कृत तथा भारतीय विचारों पढ़ना स्वाभाविक था। उन्होंने अपने ज्ञान को भी अति सुन्दर संस्कृत भाषा में लिखा। यवनाचार्य की संस्कृत अत्यन्त परिमार्जित थी। इस प्रसंग में थोड़े यूनानी शब्द तथा कुछेक ज्योतिष के विचार भारत में आ गए। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हमारी ज्योतिष, यूनानी ज्योतिष का फल है। बाद को इसी प्रकार, मुसलमानों के प्रभाव से कुछ अरबी फारसी के शब्द जैसे इसराफ, इक्कबाल, रद्द आदि भारतीय ज्योतिष में आ गए। वास्तव में नीलकण्ठ ने ताजिकवर्षफल-पद्धति के आधार पर भारतीय ज्योतिष ग्रंथ ताजिकनीलकण्ठी बनाया, अतएव यह स्वाभाविक था कि इसमें कुछ फारसी, अरबी के शब्द आ जाते। ताजिक ताजिकिस्तान, जो अब रूस में है, के निवासियों को कहते थे। वे अब भी अधिकतर मुसलमान हैं।

राशियों के नाम

भारतीय नाम	अंगरेजी नाम	अरबी नाम	अरबी नामों के अर्थ
मेष	Aries	हमल	Ram
वृष	Taurus	सौर	Bull
मिथुन	Gemini	जौजा	A black sheep white in the middle
कर्क	Cancer	सरतान	Cancer
सिंह	Lio	असद	Lion

जानात्येकमपि यतो नार्यभटो गणितकालगोलानाम् ।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथक् दूषणान्येषाम् ॥

अर्थात् आर्यभट को गणित, कालविज्ञान, गोलविज्ञान इनमें से एक भी विषय नहीं आता, अतः मैं उनके दोषों की गणना नहीं करना चाहता ।

"उत्पत्स्यते मम हि कोऽपि समानधर्मा कालोह्यं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी" अर्थात् काल अनन्त तथा पृथ्वी विशाल है । कभी न कभी तो कोई मेरे समान गुण-धर्म वाला व्यक्ति उत्पन्न होगा ही, इस उक्ति के अनुसार सन् ८६० ई० में पृथूदक् स्वामी ने आर्यभट के मत का समर्थन किया । यथा :—

भपंजरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ ।
उदयास्तमयौ संपादयति नक्षत्रग्रहाणाम् ॥

अर्थात् नक्षत्र-पंजर स्थिर है । पृथ्वी ही घूम-घूम कर प्रतिदिवस नक्षत्र तथा ग्रहों को उदित एवं अस्त करती है ।

इस समय के आर्यभट के परवर्ती गणितज्ञों को यह नहीं मालूम था कि पृथ्वी के साथ उसका वातावरण भी उसी गति से घूम रहा है अतएव श्रीपति ने आर्यभट के मत का खण्डन करते हुए लिखा है :—

यद्येवमम्बरचरा विहगाः स्वनीडमासादयन्ति न खलु भ्रमणेनकेऽपि ।
किंचाम्बुदा अपि न भूरि पयोमुचः स्युर्देशस्य पूर्वगमनेन चिराय हन्त ॥

अर्थात् यदि पृथ्वी घूमती हो तो पक्षी अपने घोंसलों में नहीं लौट सकते एवं बादल भी अधिक मात्रा में जल नहीं बरसा सकते ।

पृथ्वी तथा अन्य दिव्य पिंडों में आकर्षणशक्ति तथा चुम्बक शक्ति है इसका कुछ ज्ञान हमारे ज्योतिर्विदों को था । देखिए श्रीपति का पृथ्वी वर्णन :—

नभस्ययस्कान्त-महामणीनां मध्ये स्थितो लोहगुणो यथास्ते ।
आधारशून्योऽपि तथैव सर्वाधारो धरित्र्या ध्रुवमेव गोलः ॥

अर्थात् जैसे चुम्बक पत्थरों के बीच में लोह की गुटिका स्थिर रहती है उसी प्रकार आधार शून्य होने पर भी यह पृथ्वी स्थिर है । यहां खगोलीय पिंडों में चुम्बक शक्ति का होना बताया गया है । भास्कर द्वितीय ने भी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का निम्न श्लोक में वर्णन किया है :—

आकृष्टशक्तिश्च मही तयायत् खस्थं गुरुस्वाभिमुखं स्वशक्तया ।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्वपतत्वियंखे ॥

अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है जिससे आकाश में स्थित गुरु पिंड को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है अतएव वह पिंड गिरता हुआ सा दिखाई देता है ।

इस मंत्र की व्याख्या करते हुए सायणाचार्य ने 'विषुरूपे' का अर्थ 'नाना रूपे' किया है अर्थात् विषु का अर्थ है 'नाना'।

दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजानामित्रा वरुणा विवाससि।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु॥
(निरुक्त ११-२३)

अर्थात् हे पृथिवी तुमने सूर्य के उदयकाल में मित्र और वरुण की यज्ञवेदी बन कर सेवा की। यह सूर्य नाना रूपों में उदित होता है, नियत गति है, सप्त रश्मियों से रस ग्रहण करता है तथा बहुवेगी है।

यहाँ निरुक्तकार यास्काचार्य ने 'विषुरूपेषु' का अर्थ 'विषमरूपेषु' किया है अर्थात् विषुरूप का अर्थ है भिन्नरूप। विषु का अर्थ विषम या भिन्न है। सायणाचार्य ने भी विषुरूपेषु का अर्थ 'नाना रूपेषु' किया है।

विषु का स्वतन्त्र प्रयोग पाणिनीय व्याकरण की वैदिक प्रक्रिया में 'विष्वं पश्य', 'विषुवं पश्य', 'तन्वादीनां वेयङुवङौ' सूत्र के उदाहरण के रूप में मिलता है।[1] यहाँ पर विषु का अर्थ 'दोनों तरफ' या दोनों दिशाओं में लगता है। मोनियर विलियम्स के संस्कृत कोष में विषु का यह अर्थ भी दिया है। इयङ्, उवङ प्रत्यय का विधान करने वाले, अचिश्नु धातु-भ्रुवां य्वोरियङुवङौ (६।४।७७) के वार्तिक इयङुवङ् प्रकरणे तन्वादीनां छन्दसि बहुलमुपसंख्यानम् कर्त्तव्यम्' के जो उदाहरण काशिका में दिये हैं उनमें भी विष्वं और विषुवं शब्द स्वतन्त्र रूप में आते हैं। उनका अर्थ भी उपरोक्त ही है। व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में यास्काचार्य विषु का सम्बन्ध विषम से जोड़ते है जो डॉ० वर्मा की सम्मति में समीचीन नहीं हैं क्योंकि विषम शब्द स्वयं सम से बना है और भारोपीय भाषा में विषु का समान रूपी शब्द 'Viso' मिलता है जिसका अर्थ है 'खण्ड' और लिथोनियन भाषा में 'Visas' शब्द है जिसका अर्थ है 'सब'।[2] सायणाचार्य विषु का अर्थ व्याप्ति भी बताते हैं तथा विषु शब्द को 'विष्लृ व्याप्तौ' धातु से निकला हुआ बताते हैं तथा विष् धातु से औणादिक कु प्रत्यय लगने से विषु शब्द की सृष्टि बताते हैं।

विषुव की व्युत्पत्ति :

काशिका विवरण पंजिकाकार अर्थात् न्यासकार विषु को वि पूर्वक षु धातु से बना बताते हैं। षु धातु से क्विप प्रत्यय लगती है और 'उपसर्गात् सुनोतीत्यादिना' (८-३-६५) से स का ष होना बताते हैं 'क्विप्ना धातुत्वं न जहाति' इस सिद्धान्त से विषु धातु ही रहा और 'अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' इस सूत्र तथा उसके

---

१. सिद्धान्त कौमुदी।
२. देखिये डॉ० वर्मा द्वारा लिखित 'एटीमॉलोजीज ऑफ यास्क'।

प्रारम्भ से ही सकल व्यक्ति इसको रेखारूप में ही देखते हैं, अतः रेखा द्वारा ही इसका बोध करते हैं। चक्षुर्गत विषय, ज्ञानगत विषय से सदा ही प्रधानता पाता है। प्राचीनकाल में ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत भूगोल की अपेक्षा खगोल का ही अधिक अध्ययन किया जाता था। अतएव विषुवद्वृत्त या विषुवन्मण्डल शब्दों का प्रयोग अधिक है और आधुनिक काल में भूगोल का अध्ययन बाल्यकाल से ही प्रारम्भ कर दिया जाता है और खगोल ज्योतिष (Astronomy) का अध्ययन विरले ही करते हैं अतएव विषुवन् रेखा शब्द का प्रयोग बाहुल्य से होता है और विषुवद्वृत्त का प्रयोग उसकी अपेक्षा कुछ कम होता है। सामान्य जन इसको मानचित्र में पृथ्वी के मध्य से गुजरता हुआ देखता है अतः इसको भूमध्यगामी रेखा शब्द से भी व्यक्त करता है। यहाँ यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि विषुवत् तथा इक्वेटर का जो संस्कृत तथा इंगलिश में 'दिन रात बराबर कर देने वाला काल' अर्थ था, वह भारत के इस तिमिर-काल में आँखों से ओझल हो गया और विषुवत् का 'भूमध्यस्थ' ही अर्थ अधिकांश समझा जाने लगा।

अंगरेजी का इक्वेटर तथा उर्दू, फारसी एवं अरबी का खते उस्तवा शब्द विषुवन् रेखा के ही अनुवाद हैं। क्योंकि इक्वेटर का अर्थ है बराबर कर देने वाला। इसी प्रकार उस्तवा का अर्थ है समता तथा एकसमानता एवं खत का अर्थ है रेखा। विषु का भी अर्थ समता है।

प्रकरण ४. अंश, कला, विकला, घड़ी, पल, विपल, समय, प्रहर

यह ज्योतिश्चक्र कालक्रमानुसार ही चल रहा है। इस चक्र के ३६० अंश अथवा भाग किये जायें तो इन भागों को चक्रांश अथवा मण्डल-भाग ही कहेंगे। यथा :—

> चक्रांशकै ३६० स्तदूनै रनुवक्रं तदधिकोन भाग कलाः।
> मण्डलभागै ३६० स्तदूनैः प्राक्राशिषु चतुर्षु वक्रम्॥
>
> (ब्रा० स्फु० सि० ४६५.१)

"चक्रांशैरपहृत योजनानिकोटिः" (म० न०, पृ० १६)

संक्षिप्त होने पर चक्रांश को अंश शब्द से ही व्यक्त किया जाने लगा। इस प्रकार अंश शब्द क्षेत्रविभाग (Division of space) से सम्बन्धित है। भारतीय क्षेत्रविभाग कालविभाग के अनुसार है। एक वर्ष में १२ मास होते हैं, १ मास में ३० दिन, १ दिन में ६० घड़ी तथा १ घड़ी में ६० पल या विनाडिकाएं होती हैं। इसी प्रकार ज्योतिश्चक्र राशिचक्र अथवा ज्योतिमण्डल के १२ भाग होते हैं। प्रत्येक

बनते हैं। कुम्भ का छेद ही जल-निष्कासन-नाली का काम करता है, अतएव सम्भव है नाली या नाडी पर इन यन्त्र का नाम नाली अथवा नाडी-यंत्र पड़ गया। यह ध्यान देने की बात है कि कौटिल्य काल में तांबे की घटी से नहीं किन्तु घड़े से ही काम लिया जाता था। यही घटी नाम पड़ने का मूल कारण है। सम्भव है घड़े के छेद में से नियमित रूप से पानी निकलने के लिए उसमें पानी की खास नाडी (नारी, अथवा नाली) लगा देते हों जैसा कि आजकल भी घटदान के समय करते हैं और उस नाडी से ही यह नाडी शब्द बन गया हो। वराहमिहिर के समय तक घटी-यंत्र तांबे का बन निकला था। देखिये :—

> कुम्भार्धाकारं ताम्रं पात्रं कार्यं मूले छिद्रम्।
> स्वच्छे तोये कुण्डे न्यस्तं तस्मिन् पूर्णे नाडी स्यात्। (प०सि०, पृ० ४१)

घंटा, समय, क्षण, मुहूर्त्त, भार :

आज कल भी जिस यंत्र से समय जाना जाता है वह पुराने नाम पर ही घड़ी कहलाने लगा। इसी प्रकार अंगरेजी सनडाइल के लिए धूपघड़ी शब्द भी बना। एक घंटे समय के बाद घंटा बजता है। अतएव उस समय को घंटा शब्द से व्यक्त करने लगे।[1] 'समय' शब्द भी अनुयोगद्वार सूत्र (१३३) के अनुसार समय का सबसे छोटा परिमाण था। असंख्य समयों की एक आवलिका तथा असंख्य आवलिकाओं का १ उच्छ्वास, प्राण अथवा निश्वास होता था। प्रारंभ में यह काल विशेष का वाचक होकर बाद में सामान्य काल के अर्थ में यह प्रयुक्त होने लगा। यही इतिहास क्षण, मूहूर्त तथा भार आदि शब्दों का है।

षाष्ठिक-विभाजन :

क्या षाष्ठिक विभाजन विदेशी है? दिन के ६० भाग भारत में वेदांग ज्योतिष-काल से ही प्रचलित हैं। वेदांग ज्योतिष में भी लिखा है कि दिन रात में ३० मुहूर्त्त और १ मुहूर्त्त में २ नाडिकायें अर्थात् १ दिन में ६० घड़ी होती हैं। देखिये :—

> कला दश सविंशास्यात् द्वे मुहूर्त्तस्यु नाडिके।
> तत्त्रिंशं-द्यु-कलानां तु षट्छती त्र्यधिका भवेत्॥

अर्थात् २ नाडिकायें = १ मुहूर्त, ३० मुहूर्त = १ दिन, ६०३ कलायें = १ दिन। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी आया है :—

"द्वौ त्रुटी लवः। द्वौलवौ निमेषः। पंच निमेषाः काष्ठा। त्रिंशत्काष्ठाः कला। चत्वारिंशत्कलाः नाडिका। द्विनालिका मुहूर्त्तः।" चक्र के ३६० भाग वैदिक काल में भी आते हैं। यथा :—

---

१. कीलोत्क्षेपाभिहतः पटहः शब्दं करोति घण्टा वा।
एवं यन्त्रसहस्राण्यनेन बीजेन कार्याणि॥ (ब्रा० स्फु० २२।५२)

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टि र्न चला चलासः ।। (ऋग्वेद ।)

प्रहर :

इस प्रकार घटी तो प्राचीन ही है किंतु उसके ६० भाग आर्यभटीय में विनाडिका नाम से मिलते हैं । उसके परवर्ती सब लेखकों ने षष्टि-विभाजन ग्रहण किया । घटी के साथ-साथ दिन रात में ८ प्रहरों का होना भी पुराना है। आज भी दुपहर, तीसरपहर दिन के दूसरे तथा तीसरे पहर के लिये बोले जाते हैं । कौटिल्य काल में ८ के स्थान पर दिन के १६ विभाग किये जाते थे । यथा :—

"नालिकाभि रह्नरष्टधा रात्रिं च विभजेत् । छाया प्रमाणेन वा"
(कौटिल्य अर्थ०, पृ० ३७)

नालिकाओं से अथवा छाया प्रमाण से दिन-रात के ८ भाग करे किंतु प्रहर के स्थान पर यहाँ भाग शब्द प्रयुक्त किया गया है । यहाँ नालिका से भी छायानालिका का अर्थ है ।

याम :

"प्रह्रियते ढक्कादि रस्मिन्" अर्थात् इस व्याख्या से प्रहर शब्द भी प्रहर अर्थात् बजाने से सम्बन्धित है । प्रहरी चौकीदार होते थे जो घंटे बजाने का काम करते थे । १ प्रहर के बाद ढोल आदि वाद्य पर एक प्रहार किया जाता था अतएव इसका नाम प्रहर पड़ा । कथासरित्सागर और पंचतंत्र में प्रहरियों का उल्लेख है । अमरकोष में भी "द्वौ याम-प्रहरौ समौ" अर्थात् याम और प्रहर पर्यायवाची हैं । याम रात की सावधानी अर्थात् चौकीदारी को कहते थे, जो तीन-तीन घंटे बाद बदलती थी, अतएव यामिनी (रात) शब्द बना । देखिये याम शब्द का प्रयोग :—

पश्चाद् यामिनी यामात्प्रसादमिव चेतना । (रघु०, १७।१)
अविदित गतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत् । (उत्तर राम० नाटक)

यामी अथवा यमी के यम मरणजन्य दुःख को भुलाने के लिए यामिनी की सृष्टि हुई । यह भी कथा आती है।

समन्वय सूक्ष्म रीति से स्थापित नहीं किया जा सका क्योंकि २० वर्षों में साढ़े तीन दिन की अशुद्धि हो जाती थी क्योंकि वेदांग-ज्योतिष में मासमान शुद्ध २९.५३०५८ के स्थान पर २९.५१६ माना जाता था। इस अशुद्धि को दूर करने के लिये आर्यभट ने युगमान ४३,२०,००० वर्षों का रक्खा। इस काल में न केवल सूर्य और चन्द्रमा ही बल्कि और ग्रह भी लगभग पुनः उसी स्थान पर लौट आते हैं जिस पर कि वह युगादि में थे। यथा :—

"अथ युगस्य किं लक्षणं। उच्यते-चैत्र शुक्ल प्रतिपद्यर्धोदये सवितरि लंकायाम् मीन-मेष-संधौ प्रवृत्तौ ग्रहो पुनर्मीनमेषसंधौ चैत्र शुक्ल प्रतिपदि सवितुरर्धोदये लंकायां यावता कालेन प्राप्नोति तावत्कालो युगम्।" उक्तं च

चैत्रसितादौ सूर्ये विषुवत्यर्धोदिते प्रवृत्तस्य।
मेषादिर्मीनान्तं तथाविधस्यैष संप्राप्तिः॥ (भा० प्र० आर्य० की टीका)

अर्थात् लंका में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के अर्ध सूर्योदय के समय ग्रह जिस स्थान पर हों उसी स्थान पर जितने समय में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ग्रह पुनः अर्धोदित हो वह 'युग' कहलाता है।

वैदिक काल में मानुष युग ५ वर्ष का माना जाता था। इसका संकेत निम्न मंत्र में हैं :—

दीर्घतमा मामेतयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः॥ (ऋग्वेद १।१५८।६)

इस मंत्र में ममता के पुत्र दीर्घतम नामक ऋषि ने महर्षि आश्विन के प्रभाव से अपने दुःख से छूटकर जीवन के शेष १० युग सुख से बिताये। इस कथा का उल्लेख है।

युग का अर्थ युग्म भी होता है। ऋग्वेद संहिता के १.१०. ३-४ मंत्र में 'मानुषेमा युगानि' आया है जिसके भाष्य में सायण ने युग को सतयुग आदि युगों में आया हुआ बताया है। कलियुग आदि नामों की व्युत्पत्तियाँ बाद में बताई गई हैं।

अधिमास :

वेदांग-ज्योतिष में जैसा कि पहिले कहा गया है, चान्द्रवर्ष और सौरवर्ष के समन्वय के लिये पांच वर्ष के युग की कल्पना की गई थी। जिस युग में १८३० दिन तथा पूरे ६२ महीने माने जाते थे और पांच वर्षों में दो अधिमासों की सृष्टि की थी, एक बीच में और एक अंत में जो आजकल भी माने जाते हैं। इन्हीं को मलमास तथा लौंद का महीना भी कहते हैं। इनको वैदिक साहित्य में संसर्प तथा अहस्पति नाम से व्यक्त किया गया है। वेदांग-ज्योतिष के इन आगे लिखे श्लोकों में अधिमास आदि का विधान है :—

(३) द्वापर युग्म, (४) कल्योज । किसी राशि में से यदि ४ से भाग दें, इसमें क्रमशः ४, ३, २. अथवा १ बचता है । इन्हीं राशियों को क्रमशः कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म तथा कल्योज कहा है । इससे संख्याओं को चार भागों में विभक्त करने का सुझाव मिलता है अर्थात् ४ क+४, ४ क+३, ४ क+२, ४ क+१ ।

प्रकरण ६. वर्ष

यह वृषु (सेचने) धातु से अच् प्रत्यय लगा कर बना है । शतपथ ब्राह्मण में इस शब्द का वर्तमान अर्थ में प्रयोग मिलता है । वर्ष का शाब्दिक अर्थ है वर्षा । आदिम काल में वर्ष का ज्ञान वर्षा ऋतु के दृश्य की कुछेक काल के बाद पुनः-पुनः आवृत्ति देखकर ही हुआ था । किसी की अवस्था बताने के लिये वे कहते होगें कि १० वर्ष हो गए अर्थात् इसके जन्मकाल से १० वर्षा ऋतुएँ व्यतीत हो गईं । इसी प्रकार १० शरद् का अर्थ है, जन्म से १० शरद् ऋतुएँ व्यतीत हो गई । ऋग्वेद में शरद् शब्द वर्ष के अर्थ में निम्न मंत्र में आया है :—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्चक्रमुच्चरत पश्येम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतम् जीवेम् शरदः शतम् ।।

यहाँ १०० शरद् जीने की कामना की है । इसी प्रकार से अन्य ऋतुओं का भी लाक्षणिक अर्थ वर्ष होगा । जैसे :—

शतंजीव शरदोवर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतममु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ।।

(ऋग्वेद १०।१६१।४)

इसमें हेमन्त और वसंत ऋतु का भी लाक्षणिक अर्थ इसी प्रकार वर्ष है । कुछ ऋतुओं का अधिक प्रयोग होने से लौकिक संस्कृत तक में उनका अर्थ वर्ष रहा जैसे वर्ष और शरद ।[1] औरों का अधिक प्रयोग न होने से वर्ष का अर्थ उन शब्दों में सुनिहित नहीं होने पाया ।

पर्याय :

वर्ष के पर्याय ये हैं :—(१) संवत्सर, वत्सर, अब्द, शरद, हायन, हयन, समा (संवत्सरो, वत्सरोऽब्दो, हायनोऽस्त्री शरत्समाः इत्यमरः) (संवद्वर्षे इत्यमरः) ।

संवत्सर :

अब्द का अर्थ बादल अथवा वर्षा है । यह भी शब्द वर्षा ऋतु से संबंधित है । संवत्सर का अर्थ है "संवसन्ति ऋतवोऽत्र" अर्थात् जिसमें समस्त ऋतुओं का वास हो ।

---

१. संभव है वर्षा का अंतिम बिन्दु वर्ष के आदि एवं अंत को जानने के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक रहा हो अतएव शरद, तथा वर्ष शब्द साल के अर्थ में

को ६ ऋतुयें मानी जाने लगी। तैत्तिरीय-संहिता में छओं ऋतुओं के वर्तमान नाम आये हैं देखिए :—

मधुश्च माधवश्च वासंतिकावृतू, शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमंतिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। अर्थात् :—

मधु, माधव = वसंत
शुक्र, शुचि = ग्रीष्म
नभ, नभस्य = वर्षा
इष, ऊर्ज = शरद
सह, सहस्य = हेमन्त
तप, तपस्य = शिशिर

वैदिक काल में वर्ष का प्रारम्भ :

इस उद्धरण से यह भी प्रतीत होता है कि वर्ष का प्रारम्भ वसंत ऋतु से होता था। वास्तव में वैदिक काल में वर्ष एक वसंत संपात से दूसरे वसंत संपात तक मानी जाती थी। लगभग ५०० ईसवी पूर्व से वर्ष का प्रारम्भ वर्षा ऋतु से माना जाने लगा। इस सम्बन्ध में निम्न उद्धरण अवलोकनीय है :—

सावण बहुल पडिवए वालवकरणे अभीइ नक्खते।
संव्वत्थ पडम समये जुआस आइं वियाणाहि ॥ (सूर्य० प्र०)
(संस्कृत) श्रावण बहुल प्रतिपदि बालवकरणे अभिजिन्नक्षत्रे।
सर्वत्र प्रथमसमये युगस्य आदि विजानाहि ॥

अर्थात् युग-प्रारम्भ श्रावण वदी प्रतिपदा को होता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र का निम्न उद्धरण भी इस संबन्ध में अवलोकनीय है :—

श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षाः, आश्वयुजः कार्तीकश्च शरत्। मार्गशीर्षः पौषश्च हेमन्तः। माघः फाल्गुनश्च शिशिरः चैत्रो वैशाखश्च वसंतः।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ० १०६)

प्रकरण ८. मास

पौर्णमासी, अमावस्या :

मासों की गणना चन्द्रमा की गति से की जाती है अर्थात् जितने काल में चन्द्रमा पृथ्वी का एक चक्कर लगा ले उसे मास कहते हैं। यह काल २९.५३०५८८ है। व्यवहार में इसे ३० दिन का माना जाता है तथा इस भिन्न का आसन्न पूर्णमान ३० ही है। चन्द्रमा से सम्बन्धित होने के कारण इसका नाम मास पड़ा क्योंकि मस्,

चन्द्रमस् का मूल नाम है, चन्द्र तो आल्हादित करने के कारण उसका एक विशेषण है। मस् से मास इस प्रकार बना जैसे पचस् से पायस। इसका विग्रह यह है 'मास-चन्द्रमस्यायन अण्' पौर्णमासी का भी अर्थ है जिसमें मस् (चन्द्र) पूर्ण हो एवं अमा का अर्थ है मस् बिल्कुल न हो जिसमें। अमावस्या की 'अमा अर्थात् एक घर (राशि) में सूर्य तथा चन्द्रमा का वास हो जिसमें यह एक प्राचीन व्युत्पत्ति भी है। देखिए हिन्दी पंक्ति :—

अधिक अंधेरो जग करै मिलि मावस रवि चन्द—बिहारी।

मासों के वर्तमान नाम प्रायः सभी चन्द्रमा एवं नक्षत्र-नामों से सम्बन्धित हैं जैसे :—चैत्र, वह मास है जिसकी पूर्णिमा को चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र से योग करता हो। इसी प्रकार वैशाख, विशाखा नक्षत्र से; ज्येष्ठ, ज्येष्ठा नक्षत्र से; आषाढ़, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र से; श्रावण, श्रवण नक्षत्र से; भाद्रों, भाद्रपद नक्षत्र से; आश्विन अश्विनी नक्षत्र से; कार्तिक, कृत्तिका नक्षत्र से; मार्गशीर्ष, मृगशिरा नक्षत्र से, पौष पुष्य नक्षत्र से; माघ, मघा नक्षत्र से; फाल्गुन, फाल्गुनी नक्षत्र से सम्बन्धित हैं। ये नाम अधिक वैज्ञानिक हैं तथा इनसे महीनों की झट पहिचान भी हो जाती है अतएव मधु, माधव आदि वैदिक नामों[1] के स्थान पर ये नाम चल पड़े। मार्गशीर्ष का दूसरा नाम अगहन है जो अग्रहायण से बना है। इसका अर्थ है हायन अर्थात् वर्ष का अग्र अर्थात् अग्रमास। पहिले किसी समय में वर्ष, अगहन से प्रारम्भ होता था। एक दूसरा मास-नाम कुंवार भी दृष्टव्य है। इसका दूसरा नाम आश्विन है। वास्तव में आश्विन मास अश्विनी नक्षत्र से सम्बन्धित है क्योंकि इसके देवता अश्विनीकुमार हैं। अश्विनी कुमार से सम्बन्धित होने के कारण यह मास 'आश्विनीकुमार' कहलाया। पुनः इसके दो टुकड़े हो गए, एक आश्विन तथा दूसरा कुमार (कुंवार)। आश्विन का दूसरा नाम अश्वयुज् भी है, इसी का बिगड़ कर असोज हो गया।

मासों के प्राचीन वैदिक नाम :

प्राचीन वैदिक काल में महीनों के नाम नक्षत्रों के नामों पर नहीं थे क्योंकि नक्षत्र ज्ञान तो बाद में विकसित हुआ। उस समय महीनों के नाम निम्नलिखित थे जो प्रायः गुण-गत नाम हैं :—(१) मधु (२) माधव (३) शुक्र (४) शुचि (५) नभः (६) नभस्य (७) इषा (८) ऊर्ज (९) सहस् (१०) सहस्य (११) तपस् (१२) तपस्य।

प्रकरण ९. दिन, वार

दिन शब्द दोङ् धातु से नक् प्रत्यय लगने से अथवा दा धातु से किनन् प्रत्यय लगने से बना है। दोङ् का अर्थ क्षीण होना तथा दा का अर्थ काटना है। जो अंधकार को क्षीण कर देता है अथवा काटता है वह दिन है। दिन से मिलते-जुलते

---

१. देखिए ऋतु प्रकरण।

शव्द लेटिन का (Paren-dinus) तथा गोथिक का (Sintein, deinan) स्लावक (dini) है। दिन का अर्थ है रात्रि के बाद का वह काल जिसमें प्रकाश रहता है। यह दृश्य बार-बार मनुष्यों ने देखा। अन्त में पहले तिथियों से अहोरात्र गिने और बाद में सप्तग्रहों के आधार पर रविवार (इतवार=आदित्य वार), सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार (गुरुवार), शुक्रवार, शनिवार ये नाम पड़े। वास्तव में प्रत्येक दिन के ये ग्रह देवता माने जाते हैं। जब ७,७ प्रकाशों के वर्ग बनाए गये और बारी-बारी से रविवार आदि दिन माने गये तो दिन के अर्थ में दिनवार शब्द रक्खा गया। मंगल दिनवार का अर्थ है मंगल ग्रह के अधीन दिन (प्रकाश) की बारी। दिनवार शब्द का वराहमिहिर का प्रयोग निम्न श्लोक में देखिए :—

दिनवार प्रतिपत्तिर्न समा सर्वत्र कारणं कथितम्।
नेहापि भवति यस्माद्विप्रवदन्तेऽत्र दैवज्ञाः ।। (पं० सि०, पृ० ४५)
द्युगणाद्दिनवाराप्तिः द्युगणोऽपि देशकाल-सम्बधात्।

अर्थात् सब जगह दिन का प्रारम्भ एक समय नहीं होता। इसका कारण बता दिया गया है।

इसी दिनवार शब्द के दो भाग हो गये और दोनों भाग दिन और वार स्वतंत्र शब्द बनकर अपना प्राचीन अर्थ ही व्यक्त करने लगे। ऐसे उदाहरण कई एक मिलते हैं। जैसे बलीवर्द के पृथक् शब्द बैल और वर्द बन गये। आश्विनीकुमार के आश्विन और कुंवार। चन्द्रमस् के चन्द्र और मस्,। हिन्दी के इन डबलिट शब्दों का अपना एक निजी इतिहास है।

दिवस शब्द भी दिव (दीप्तौ) धातु से असच् प्रत्यय लगकर बना है। दिव का अर्थ है दीप्त होना अर्थात् जो चमके वह दिवस है।

प्रकरण १०. देशान्तर, रेखांश

पंचांगों में देशान्तर घड़ी और पलों में दिये रहते हैं। देशान्तर में मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास है क्योंकि उसका अर्थ है देश कालांतर अर्थात् दो देशों (दिक्) अर्थात् स्थानों के कालों का अंतर इसमें एक स्थान के सापेक्ष दूसरे स्थान का देशान्तर निकाला जाता है। पंचांग में काशी के सापेक्ष अन्य नगरों के देशान्तर दिये रहते हैं। इंगलैंड में ग्रीनविच के सापेक्ष अन्य स्थानों का देशान्तर-मान निकाला जाता है जो ०-१८० अंश पूर्व तथा ०-१८० अंश पश्चिम तक होता है। अंश में ४ मिनट का अन्तर पड़ता है तथा विषुवत् रेखा पर एक अंश में लगभग ६९ मील दूरी होती है।

देशान्तर को महाभास्करीय में (पृ० २१-२९) देशकालविवर भी कहा है। विवर का अर्थ अन्तर होता है अतएव इससे पूर्व व्युत्पत्ति की पुष्टि होती है।

अक्षांशका: पंचदशैव यस्मिन् छायारवे: पंचमभागयुक्ता ।
सार्धांगुला स्यात्समण्डलोत्था वाच्यो विस्वान् खलु तत्र कीदृक् ।।
(म० भा०, पृ० ८९)

प्रकरण १२. लम्बन, नति

व्युत्पत्ति :

इन दोनों का शब्दार्थ क्रमश: लटकना तथा झुकना है । लम्बन शब्द लम्ब् धातु से तथा नति शब्द नम् धातु से क्रमश: ल्युट तथा क्तिन् लगाकर बने हैं ।

लम्बन शब्द भास्कर प्रथम ने अपने ग्रंथ महाभास्करीय में प्रयुक्त किया है । यथा :—

ग्रासार्दिमोक्ष कालो स्तस्ताभ्यां जीवावधिस्तदा ।
ग्रासमध्य विनिष्पन्न लम्बनान्तर-नाडिका: ।। (पृ० ६०)

प्रयोग :

सूर्यसिद्धान्त में भी यह शब्द आता है । देखिए :—

देशकाल विशेषेण ययावनतिसम्भव: ।
लम्बनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते ।। (पृ० १३५)

इसमें लम्बन और अवनति दोनों शब्द आये हैं । लम्बन का अर्थ अंगरेजी की 'पैरेलेक्स इन लौंगीच्यूड' तथा नति का अर्थ 'पैरेलेक्स इन लैटीच्यूड' है । इससे पूर्व के सूर्यसिद्धान्त के श्लोक में लम्बन के लिए हरिज शब्द भी प्रयुक्त किया गया है लम्बन की उत्पत्ति भूपृष्ठ और क्षितिज के कारण होती है अत: क्षितिज का दूसरा पर्यायवाची शब्द हरिज भी लम्बन के अर्थ में आया है । हरिज शब्द यूनानी होराइजन का अनुकृति मात्र है । हरिज का प्रयोग इस अर्थ में विरल है तथा अवनति के स्थान पर नति का प्रयोग बाहुल्य रूप से हुआ है । अब 'पैरेलैक्स' के लिए एकमात्र लम्बन शब्द है क्योंकि लौंगीच्यूड और लैटीच्यूड के लिए देशान्तर (रेखांश) तथा अक्षांश शब्द हैं ही, उनको लगाकर उक्त संकल्पनाओं के लिए पृथक् शब्द बन सकते हैं ।

नति अब अंगरेजी के इन्क्लीनेशन के लिए प्रयुक्त होता है जिसके लिए वह उपयुक्त भी है क्योंकि नति का शब्दार्थ झुकना ही है लम्बन तथा अवनति शब्दों का ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में भी प्रयोग हुआ है । देखिए :—

दृश्यादृश्यं दृग्गोलार्धं भूव्यासदलविहीन युतम् ।।
दृष्टा भूगोलोपरि यतस्ततो लम्बनावनतो ।। (ब्रा० स्फु० सि०२१।६४)

लम्बन से तात्पर्य है प्रेक्षक की विभिन्न स्थितियों के कारण उत्पन्न पिंड का विस्थापन।

प्रकरण १३. पात

पात शब्द पत् धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर बना है। पात का शब्दार्थ है 'गिरना' किन्तु ज्योतिष और रेखागणित में यह अन्य विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होता है। ज्योतिष में पात शब्द से उन दो बिन्दुओं का बोध होता है जहाँ ग्रहों की कक्षाएँ क्रान्तिवृत्त को काटती हैं। चूँकि यहां ग्रहों की कक्षायें तथा क्रान्तिवृत्त दोनों एक स्थान पर गिरते हैं अर्थात् मिलते हैं अतएव इस बिन्दु का नाम पात हुआ।

ज्यामिति में पात शब्द वक्र के द्विक्-बिन्दु (Double point) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अंगरेजी का नोड शब्द भी ज्योतिष के उपरोक्त अर्थ के अतिरिक्त ज्यामिति के द्विक्-बिन्दु के अर्थ में भी प्रयुक्त होता था। अतः अंगरेजी की भाँति ज्योतिष का पात शब्द ज्यामितीय अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाने लगा। अतः ज्योतिष में यदि पात शब्द योग रूढ़ है तो ज्यामिति में वह केवल रूढ़ ही है। इस रूढ़ि का आधार अंगरेजी भाषा है और यह प्रयोग आधुनिक है। वैसे इस बिन्दु पर भी वक्र की दो शाखायें मिलती ही हैं। अतः यह योगरूढ़ शब्द भी कहा जा सकता है।

प्राचीन प्रयोग :

ज्योतिषीय अर्थ में पात शब्द के प्रयोग आर्यभट, भास्कर प्रथम तथा ब्रह्मगुप्त आदि के ग्रंथों में मिलते हैं। इस सम्बन्ध में नीचे कतिपय श्लोक उद्धृत किए जाते हैं :—

तारा ग्रहेन्दुपाता भ्रमन्त्यजस्रमपमण्डलेऽर्कश्च।
अर्काच्च मण्डलार्धे भ्रमति हि तस्मिन् क्षितिच्छाया॥ (आर्य० गोल० २)

पातभागविहीनस्य समलिप्तस्य निश्चयात्।
हत्वा समास्व विक्षेपात् भागहारेण भाजयेत्॥ (महा० भा०, पृ० ७९)

प्रतिपादनार्थमुच्चं प्रकल्पितं ग्रहगतेस्तथा पातः।
भुक्तेरूनाधिकता मानस्य च भवति कर्णवशात्॥ (ब्रा० स्फु० २१।३०)

प्रकरण १४. संपात, विषुव, जलविषुव, महाविषुव, मेषादि, वसंत संपात त :

यह शब्द सम्+पत् धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर बना है। संपात का र्थ है सम् अर्थात् एक साथ पात अर्थात् गिर पड़ना। जहाँ दो वस्तुओं का एक मिलना होता हो, उसको संपात कहते हैं। सम्पात शब्द ज्योतिष में विषुव-

बिन्दु (Equinoctial point) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इन दो बिन्दुओं पर क्रान्ति-वृत्त तथा विषुववृत्त परस्पर एक दूसरे से मिलते हैं अतः संपात शब्द अपने पारिभाषिक अर्थ में भी अन्वर्थक है। इन दो बिन्दुओं को वसंत संपात तथा शरत् संपात कहते हैं।

ज्यामिति में संपात शब्द का अर्थ है परस्पर एक दूसरे पर इस प्रकार गिरना कि एक दूसरे को भली-भांति ढक ले। अंगरेजी में इसको (Concidence) कहते हैं तथा एक दूसरे पर संपात करने वाले को संपाती (Coincident) कहते हैं।

पर्याय :

वसंत संपात को प्राचीन काल में मेषादि तथा महाविषुव एवं शरत् संपात को तौल्यादि एवं जलविपुव कहते थे। मेषादि और तौल्यादि शब्दों के प्रयोगों के लिए आर्यभट का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है :—

मेषादेः कन्यान्तं सममुदगमपमंडलार्धमपयातम्।
तौल्यादेर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैव ॥ (आर्य० गोल० १)

मेषादि :

अंगरेजी और हिन्दी में सामान्य त्रुटि—

आर्यभट के समय (छठी शताब्दी के प्रारम्भ में) वसंत संपात मेष राशि के प्रथम बिन्दु पर तथा शरत् संपात तुला राशि के प्रथम बिन्दु पर था, अतः इन दोनों बिदुओं को क्रमशः मेषादि तथा तौल्यादि कहा गया है। अब यद्यपि मेषादि मेष के आदि बिदु से हटकर मीन राशि के उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र के प्रथम चरण पर पहुँच चुका है तो भी वह मेषादि ही कहलाता है। आर्यभट से अब तक १४७१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं फिर यह कैसे सम्भव है कि वसंत संपात वहीं पर स्थिर रह जाए जबकि तथ्य यह है कि विषुव बिदु स्वयं भ्रमण करते हैं और २६००० वर्ष में एक परिक्रमण पूरा कर लेते हैं। इस प्रकार पिछले १४३८ वर्ष में वसंत संपात लगभग $\frac{२}{३}$ राशि पीछे हट गया है। अंगरेजी में भी वसंत संपात बिन्दु को अब भी 'फर्स्ट प्वाइन्ट ऑफ एरीज' कहा जाता है। अंगरेजी की भाँति हिन्दी में भी यह त्रुटि चल रही है।[1]

प्राचीन प्रयोग :

संपात शब्द के प्राचीन प्रयोग के लिए आर्यभट प्रथम तथा भास्कर प्रथम के निम्न श्लोक अवलोकनीय हैं :—

पूर्वापर दिग्रेखाऽधरश्चोर्ध्वा दक्षिणोत्तरस्तथाच।
एतासां संपातो द्रष्टा यस्मिन् भवेद्देशे ॥ (आर्य० गो०, पृ० २०)

---

१. वैष्णव संप्रदाय के अनुसार आर्यभटीय के आधार पर बनाया हुआ पंचांग ही धार्मिक कृत्यों में अनुसरणीय है अतएव संक्रान्ति-काल में २२ दिन की त्रुटि रहती है। क्योंकि आर्यभटीय को बने हुए १४७१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। भारत सरकार ने अपने पंचांग में यह त्रुटि ठीक कर दी है।

बिन्दु (Equinoctial point) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इन दो बिन्दुओं पर क्रान्ति-वृत्त तथा विषुववृत्त परस्पर एक दूसरे से मिलते हैं अतः संपात शब्द अपने पारिभाषिक अर्थ में भी अन्वर्थक है। इन दो बिन्दुओं को वसंत संपात तथा शरत् संपात कहते हैं।

ज्यामिति में संपात शब्द का अर्थ है परस्पर एक दूसरे पर इस प्रकार गिरना कि एक दूसरे को भली-भांति ढक ले। अंगरेजी में इसको (Concidence) कहते हैं तथा एक दूसरे पर संपात करने वाले को संपाती (Coincident) कहते हैं।

पर्याय :

वसंत संपात को प्राचीन काल में मेषादि तथा महाविषुव एवं शरत् संपात को तौल्यादि एवं जलविषुव कहते थे। मेषादि और तौल्यादि शब्दों के प्रयोगों के लिए आर्यभट का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है :—

मेषादेः कन्यान्तं सममुदगपमंडलार्धमपयातम्।
तौल्यादेर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैव ॥ (आर्य० गोल० १)

मेषादि :

अंगरेजी और हिन्दी में सामान्य त्रुटि—

आर्यभट के समय (छठी शताब्दी के प्रारम्भ में) वसंत संपात मेष राशि के प्रथम बिन्दु पर तथा शरत् संपात तुला राशि के प्रथम बिन्दु पर था, अतः इन दोनों बिंदुओं को क्रमशः मेषादि तथा तौल्यादि कहा गया है। अब यद्यपि मेषादि मेष के आदि बिंदु से हटकर मीन राशि के उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र के प्रथम चरण पर पहुँच चुका है तो भी वह मेषादि ही कहलाता है। आर्यभट से अब तक १४७१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं फिर यह कैसे सम्भव है कि वसंत संपात वहीं पर स्थिर रह जाए जबकि तथ्य यह है कि विषुव बिंदु स्वयं भ्रमण करते हैं और २६००० वर्ष में एक परिक्रमण पूरा कर लेते हैं। इस प्रकार पिछले १४३८ वर्ष में वसंत संपात लगभग ⅘ राशि पीछे हट गया है। अंगरेजी में भी वसंत संपात बिन्दु को अब भी 'फर्स्ट प्वाइन्ट ऑफ एरीज' कहा जाता है। अंगरेजी की भाँति हिन्दी में भी यह त्रुटि चल रही है।[1]

प्राचीन प्रयोग :

संपात शब्द के प्राचीन प्रयोग के लिए आर्यभट प्रथम तथा भास्कर प्रथम के निम्न श्लोक अवलोकनीय हैं :—

पूर्वापर दिग्रेखाऽधश्चोर्ध्वा दक्षिणोत्तरस्तथाच।
एतासां संपातो द्रष्टा यस्मिन् भवेद्देशे ॥ (आर्य० गो०, पृ० २०)

---

१. वैष्णव संप्रदाय के अनुसार आर्यभटीय के आधार पर बनाया हुआ पंचांग ही धार्मिक कृत्यों में अनुसरणीय है अतएव संक्रान्ति-काल में २२ दिन की त्रुटि रहती है। क्योंकि आर्यभटीय को बने हुए १४७१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। भारत सरकार ने अपने पंचांग में यह त्रुटि ठीक कर दी है।

ग्रन्थानुक्रमणिका

१. अमर-कोष, अमर सिंह कृत (रामाश्रमी), निर्णयसागर प्रेस।

२. आपस्तंब शुल्ब सूत्र, संपा० श्रीनिवासाचार्य, मैसूर विश्वविद्यालय, ओरियंटल लाइब्रेरी प्रकाशन, १९३१।

३. आप्टे-संस्कृत-इंगलिश-शब्दकोष, संपा० पी० के० गोडे, सी० जी० कर्वे।

४. आर्यभटीय, आर्यभटकृत, त्रिवेंद्रम सीरीज तथा परमेश्वर टीका सहित।

५. (क) ऋग्वेद संहिता, भाषाभाष्य, आर्य साहित्य मंडल, अजमेर, सं० २०१०।
(ख) ऋग्वेद संहिता, सायणाचार्य भाष्यसमेत, वैदिक संशोधन मंडल, पूना १९४६।

६. एटीमोलॉजीज ऑफ यास्क, डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा कृत।

७. एंशेंट इंडियन मैथमैटिक्स ऐंड वेद, एल० वी० गुर्जर कृत।

८. ओरिजिन्स एरिकपार्टरिज कृत, रौटलेज ऐंड केगानपाल, लंदन।

९. कात्यायन शुल्ब सूत्र, कर्क महीधर भाष्य सहित चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,१९३६।

१०. कौटिलीय अर्थशास्त्र, संपा० शामशास्त्री, मद्रास सरकार प्रकाशन, १९२४।

११. कौटिल्य अर्थशास्त्र, शामशास्त्री कृत आंग्ल अनुवाद, १९२९।

१२. खंडखाद्यक, ब्रह्मगुप्त कृत, अनु० प्रबोध चन्द्र सेन गुप्त, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३४।

१३. गणित का इतिहास, सुधाकर द्विवेदी कृत, बनारस प्रभाकारी प्रिंटिंग प्रेस।

१४. गणित कौमुदी, नारायण कृत, गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी, वाराणसी, १९३६।

१५. गणित-तिलक, श्रीपति कृत, सिंहतिलकसूरि व्याख्या सहित हीरालाल कापड़िया, बड़ौदा ओरियंटल इन्स्टीट्यूट।

१६. 'गणित-सार-संग्रह', महावीराचार्य कृत, अनु० रंगाचार्य, मद्रास सरकार प्रकाशन।

१७. ग्रह-नक्षत्र, त्रिवेणीसिंह कृत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

१८. पंचसिद्धान्तिका, वराहमिहिर कृत, जी० थीबो तथा सुधाकर, द्विवेदी व्याख्या सहित, १८८९।

१९. पर्शियन-इंगलिश डिक्शनरी, स्टैंगस कृत।

२०. पाटीगणित, श्रीधराचार्य कृत, अनु० डॉ० कृपाशंकर शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय, गणित तथा ज्योतिष विभाग द्वारा प्रकाशित।

२१. पाली इंगलिश डिक्शनरी, राइस डैविसकृत, पालिटैक्सट सोसाइटी लंदन।

२२. प्राकृत-प्रकाश, वररुचि कृत।

२३. फैलन-न्यू-इंगलिश-हिन्दुस्तानी डिक्शनरी।
२४. बक्षाली-मैनुस्क्रिप्ट, जी० आर० काये द्वारा संपादित, १९२७।
२५. बीजगणित, भास्कर द्वितीय कृत, दुर्गाप्रसाद द्विवेदी व्याख्या सहित नवल किशोर प्रेस लखनऊ, १९४१।
२६. बुलैटिन-आफ-मैथिमेटिकल एसोसिएशन, वोल्यूम १२, १९४०-४१।
२७. बृहज्जातक, वराहमिहिर कृत, हरिदास संस्कृत ग्रंथमाला, १९४६।
२८. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त कृत, सुधाकर द्विवेदी व्याख्या सहित।
२९. भारतीय ज्योतिष का इतिहास, डॉ० गोरखप्रसाद कृत, प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
३०. भारतीय ज्योतिष, नेमिचन्द्र शास्त्री कृत, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
३१. महाभास्करीय, भास्कर प्रथम कृत, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, १९४५।
३२. मोनियर विलियम्स संस्कृत-इंगलिश शब्दकोष, १८९९।
३३. रेखागणित, सम्राट जगन्नाथ कृत, कमलाशंकर आंग्ल अनुवाद सहित, निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९०१।
३४. लघुभास्करीय, भास्कर प्रथम कृत, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, १९४५।
३५. लीलावती, भास्कर द्वितीय कृत, श्री सीताराम झा व्याख्या सहित, मास्टर खिलाड़ी लाल ऐंड संस, वाराणसी।
३६. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, एचकर्न द्वारा संपादित।
३७. वेदांग-ज्योतिष, लगध कृत।
३८. वेब्स्टर न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी ऑफ इंगलिश लैंग्वेज, द्वितीय संस्करण, १९५७।
३९. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, डॉ० सत्यप्रकाश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
४०. वैदिक पदानुक्रम कोष, विश्वबन्धु शास्त्री कृत, लाहौर, १९३५।
४१. शतपथ ब्राह्मण, भाग ३, गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास, कल्याण-बम्बई, १९४०।
४२. शार्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी, तृतीय संस्करण, १९५५।
४३. संस्कृत अलजेब्रा अनु० कोल बुक, १८१७।
४४. साइंस-ऑफ-दी-शुल्व, डॉ०बी०बी० दत्त कृत, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३२।
४५. समीकरण-मीमांसा, म० सुधाकर द्विवेदी कृत, प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, प्रयाग।
४६. सिद्धान्त-कौमुदी, भट्टोजिदीक्षित व्याख्या, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, १९५२।
४७. सिद्धान्त-तत्वविवेक, कमलाकर कृत, सुधाकर द्विवेदी व्याख्या सहित, १९२५।
४८. सिद्धान्तशिरोमणि, गणिताध्याय भास्कर द्वितीय कृत, गिरजाप्रसाद द्विवेदी, भाषानुवाद सहित, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १९२६।
४९. सिद्धान्तशेखर, भाग १, २, श्रीपति कृत, बबुआ जी मिश्र व्याख्या सहित, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४७।

५०. सूर्यसिद्धान्त, बर्जिस कृत आंगल अनुवाद, अमेरिकन औरियंटल सोसाइटी, न्यू हैविन।

५१. सूर्यसिद्धान्त, बल्देव प्रसाद मिश्र भाषा टीका समेत, गंगा विष्णु श्रीकृष्ण दास लक्ष्मी वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

५२. स्टूडैंट-स्टैंडर्ड इंगलिश-उर्दू डिक्शनरी, अब्दुलहक कृत, तृतीय संस्करण, १९५५।

५३. स्कोप ऐंड डेवलेपमेंट ऑफ हिंदू गणित, इंडियन हिस्ट्री क्वार्टरली, वोल्यूम ३, सितम्बर १९२९ (लेख)।

५४. हिंदी भाषा का इतिहास, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा कृत, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।

५५. 'हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास', डॉ० बी० बी० दत्त तथा डॉ० ए० एन० सिंह कृत, अनु० डॉ० कृपाशंकर शुक्ल डी० लिट्, प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।

५६. हिस्ट्री ऑफ हिन्दू मैथिमेटिक्स, भाग २, डॉ० बी० बी० दत्त तथा डा० ए० एन० सिंह कृत, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, १९३८।

अन्य ग्रन्थ

१. एटीमोलोजिकल डिक्शनरी ऑफ नेपाली लैंग्वेज, टर्नर कृत।
२. ताजिक नीलकंठी, संपा० खूबचन्द्र शर्मा गौड़, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९३८।
३. पोजिटिव साइंसिज आफ दी ऐशेंट हिन्दूज, ब्रजेन्द्रनाथ सील कृत।
४. हिस्ट्री ऑफ फिलोसिफी, ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न, डॉ० राधाकृष्णन कृत।
५. पाणिनीय कालीन भारत, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत।
६. जातक स्टोरीज, वोल्यूम्स ५, ६, प्रो० ई० बी० कोवेल कृत, १९५७।
७. अभिधान राजेन्द्र।
८. हिन्दू एस्ट्रोनेमी, मुकर्जी कृत।

आर्यभटीय गणित-शब्दावली

(१) अक्ष : axis

दृग्गोलार्धं कपाले ज्यार्धेन विकल्पयेद् भगोलार्धम् । ३।३३
विषुवज्जीवाक्ष भुजास्तस्यास्त्ववलम्बकः कोटिः ॥

(२) अक्षज्या : sine of latitude

विक्षेपगुणाक्षज्या लम्बकभजिता भवेदृणमुदक्स्थे ।
उदये धनमस्तमये दक्षिणगे धनमृणं चन्द्रे ॥ ३।३५

(३) अक्षाग्र : end points of axis ३।१८

पूर्वापर दिग्लग्नं क्षितिजादक्षाग्रयोश्च लग्नयत् ।
उन्मण्डलं भवेत् तत्क्षयवृद्धि यत्र दिवसनिशोः ॥ ३।१९

(४) अध ऊर्ध्व (मण्डल) : vertical

पूर्वापरमध ऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरं चैव ।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ ॥ ३।३५

(५) अचल : constant

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वन् समपश्चिमगानि लंकायाम् ॥ ३।१९

(६) अंतपद : last term

इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखमध्यम् ।
इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्तं पदार्धहतम् ॥ १।१९

(७) अंतर : difference

द्विकृतिगुणात् संवर्गाद् द्व्यन्तर वर्गेण संयुतान्मूलम् ।
अन्तरयुक्तं हीनं तद्गुणकारद्वयं दलितम् ॥ १।२४

(८) अनुलोमग :

अनुलोमगानि मन्दाच्छीघ्रात् प्रतिलोमगानि वृत्तानि ।
कक्ष्यामण्डललग्नस्ववृत्तमध्ये ग्रहो मध्यः ३।२१

(९) अनुलोमगति : with direct motion

उपरिलिखित ३।१९

(१०) अपक्रम : declination

इष्टापक्रमवर्गं व्यासार्धकृते विशोध्ययन्मूलम् ।
विषुवदुदग्दक्षिणतस्त दहोरात्रार्धविष्कम्भम् ॥ 		२।२१

(११) अपचय : decrease

गुणकारा भागहरा भागहरा ये भवन्ति गुणकाराः ।
यः क्षेपः सोऽपचयोऽपचयः क्षेपश्च विपरीते ॥ 		१।२८

(१२) अपमण्डल : ecliptic

ताराग्रहेन्दुपाता भ्रमन्त्यजस्रमपमण्डलेऽर्कश्च ।
अर्काच्च मण्डलार्धे भ्रमति हि तस्मिन् क्षितिच्छाया ॥ 		३।२

(१३) अपसर्पिणी : later half of epoch

उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च ।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात् ॥ 		१।९

(१४) अभ्यास : product, multiplication

सर्वेषां क्षेत्राणां प्रसाध्य पार्श्वे फलं तदभ्यासः ।
परिधेः षड्भागज्या विष्कम्भार्धेन सा तुल्या ॥ 		१।९

(१५) अयनान्त : last point of ecliptic

युगवर्षमासदिवसाः समं प्रवृत्तास्तु चैत्र शुक्लादेः ।
कालोऽयनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे ॥ 		२।११

(१६) अयनादि : first point of aries

युगवर्षमासदिवसाः समं प्रवृत्तास्तु चैत्र शुक्लादेः ।
कालोऽयनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे ॥ 		२।२१

(१७) अयुत : १०,०००

एकं दश च शतं च सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम् ।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात्स्थानं दशगुणं स्यात् ॥ 		१।२

(१८) अर्बुद : ten crores

एकं दश च शतं च सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम् ।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात्स्थानं दशगुणं स्यात् ॥ 		१।२

(१९) अंश : degree of latitude

स्थलजलमध्याल्लंका भूकक्ष्याया भवेच्चतुर्भागे ।
उज्जयिनी लंकायाः पश्चदशांशे समोत्तरतः ॥ 		३।१४

(२०) आयाम : length

आयामगुणे पार्श्वे तद्योगहृते स्वपातरेखे ते ।
विस्तार योगार्धगुणे ज्ञेयं क्षेत्रफलमायामे ॥ 		१।८

(२१) आर्क्षी : stellar

गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव ...

एव काल विभाग: क्षेत्रविभागस्तथा ...

(२२) आसन्न : approximate

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा ...

अयुतद्वय विष्कम्भस्यासन्नो वृत्त परि...

(२३) इष्ट : number of terms in A. P. (...

इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समु...

इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्ते पदा...

(२४) इच्छाराशि : 3rd term in the rule o...

त्रैराशिक फलराशिं तमथेच्छाराशिना...

लब्धं प्रमाणमजितं तस्मादिच्छाफलमि...

(२५) उत्तर : common difference

इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखम...

इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्ते पदार्धहत...

(२६) उत्सर्पिणी : first half of epoch

उपसर्पिणो युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं ...

मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्ममेन्दूच्चात् ।।

(२७) उन्मण्डल : south-north circle meant for me...

पूर्वापरदिग्लग्नं क्षितिजादक्षाग्रयोश्च लग्नं यत् ।

उन्मण्डलं भवेत्तत्क्षयवृद्धी यत्र दिवसनिशो: ।।

(२८) ऊर्ध्वभुजा : altitude or vertical side

त्रिभुजस्यफलशरीरं समदलकोटिभुजार्धसंवर्ग: ।

ऊर्ध्वभुजा तत्संवर्गार्धं स घन: षडश्रिरिति ।।

(२९) ऋण : minus

ऋणधनधनक्षया: स्युर्मन्दोच्चाद् व्यत्ययेन शीघ्रोच्चात् ।

शनिगुरुकुजेपुमंदादर्धमृणधनं भवति पूर्वे ।।

(३०) कक्ष्या : orbit

षष्ट्या सूर्याब्दानां प्रपूरयन्ति ग्रहा भपरिणाहम् ।

दिव्येन नभ: परिधिं समभ्रमन्त: स्वकक्ष्यासु ।।

(३१) कर्ण : hypotenuse

यश्चैव भुजावर्गः कोटीवर्गश्च कर्णवर्गः सः ।
वृत्ते शर संवर्गोऽर्धज्यावर्गः खलु स धनुषोः ।। १।१७

Diagonal :

वृत्तभ्रमेण साध्यं त्रिभुजं च चतुर्भुजं च कर्णाभ्याम् ।

(३२) कपाल : hemisphere

दृग्गोलार्धकपाले ज्यार्धेन विकल्पयेद् भगोलार्धम् ।
विषुवज्जीवाक्ष भुजास्तस्यास्त्ववलम्बकः कोटिः ।। ३।२३

(३३) काल : time (in interest questions)

मूलफलं सफलं कालमूलगुणमर्धमूल कृतियुक्तम् ।
मूलं मूलार्धोनं कालहृतं स्यात् स्वमूलफलम् १।२५

(३४) काल विभाग : division of time

गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणः ।
एवं कालविभागः क्षेत्रविभागस्तथा भगणात् ।। ३।२

(३५) कृति : square

द्विकृतिगुणाद् संवर्गाद् द्व्यन्तरवर्गेण संयुतान्मूलम् ।
अन्तरयुक्तं हीनं तद्गुणकारद्वयं दलितम् ।। १।२४

(३६) कोटि : crore; perpendicular

एकं दश च शतं च सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम् ।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात्स्थानं दशगुणं स्यात् ।। १।२
त्रिभुजस्य फलशरीरं समदलकोटी भुजार्धसंवर्गः ।
ऊर्ध्वभुजातत्संवर्गार्धं स घनः षडश्रिरिति ।। १।६
यश्चैव भुजावर्गः कोटीवर्गश्च कर्णवर्गः सः ।
वृत्ते शरसंवर्गोऽर्धज्यावर्गः स खलु धनुषोः ।। १।१८

(३७) क्षय : minus

ऋणधनधनक्षयाःस्युर्मन्दोच्चाद् व्यत्ययेन शीघ्रोच्चात् ।
शनिगुरुकुजेषु मंदादर्धमृणधनं भवति पूर्वे ।। २।२२

(३८) क्षितिज : horizon

पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरं चैव ।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ ।। ३।१८

(३९) क्षेत्र : space

युगवर्षमासदिवसाः समं प्रवृत्तास्तु चैत्रशुक्लादेः ।
कालोऽयनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे ।। २।११

(४०) क्षेत्रफल : area

सर्वेषां क्षेत्राणां प्रसाध्य पार्श्वे फलं तदभ्यासः ।
परिधेः षड्भागज्यः विष्कम्भार्धेन सा तुल्यम् ॥

(४१) क्षेत्रविभाग : division of space

गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणाः ।
एवं कालविभागः क्षेत्रविभागस्तथा भगणात् ॥

(४२) क्षेप : additive quantity

गुणकारा भागहरा भागहरा ये भवन्तिगुणकाराः ।
यः क्षेपः सोऽपचयोऽपचयः क्षेपश्च विपरीते ॥

(४३) ख : sky

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः ।
मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलः सर्वतोवृत्तः ॥

(४४) खण्डग्रहण : partial eclipse

प्रग्रहणान्ते धूम्रः, खण्डग्रहणे शशी भवति कृष्णः ।
सर्वग्रासे कपिलः स कृष्णताम्रस्तमो मध्ये ॥

(४५) गच्छ : number of terms

गच्छोष्टोत्तर गुणितादृद्विगुणाद्युत्तरविशेषवर्गयुतात् ।
मूलं द्विगुणाद्यूनं स्वोत्तरभाजितम् सरूपार्धम् ॥

(४६) गति : motion

भक्ते विलोम विवरे गतियोगेनानुलोमविवरौ द्वौ ।
गत्यन्तरेण भक्तौ द्वियोगकालावतीतैष्यौ ॥

(४७) ग्रह : planet

दिव्यं वर्षसहस्रं ग्रहसामान्यं युग द्विषट्कगुणम् ।
अष्टोत्तरं सहस्रं ब्राह्मो दिवसो ग्रहयुगानाम ॥

(४८) ग्रहण : eclipse

स्फुट शशि मासान्तेऽर्कं पातासन्नो यदा प्रविशतीन्दुः ।
भूच्छायां पक्षान्ते तदाधिकोनं ग्रहणमध्यम् ॥

(४९) गुणकार : multiplier

संपर्कस्य हि वर्गाद् विशोधयेदेव वर्गसंपर्कम् ।
यत्तस्य भवत्यर्धं विद्याद् गुणकारसंवर्गम् ॥

(५०) गुलिका : coloured shot

गुलिकान्तरेण विभजेद् द्वयोः पुरुषयोस्तु रूपकविशेषम् ।
लब्धं गुलिकामूल्यं यद्यर्थकृतं भवति तुल्यम् ॥ १।३०

(५१) गोल: sphere, globe

काष्ठमयं समवृत्तं समन्ततः समगुरुं लघुं गोलम् ।
पारततैलजलैस्तं भ्रमयेत् स्वधिया च कालसमम् ॥ ३।२२

(५२) गोलार्ध : hemisphere

भूग्रहभानां गोलार्धानि स्वच्छायया विवर्णानि ।
अर्धानि यथा सारं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते ॥ ३।५

(५३) घन : cube number, cubic figure

वर्गः समचतुरस्रः फलं च सदृशद्वयस्य संवर्गः ।
सदृशस्य संवर्गो घनस्तथा द्वादशाश्रिः स्यात् ॥ १।३

(५४) घनफल : volume

समपरिणाहस्यार्धं विष्कम्भार्धहतमेव वृत्तफलम् ।
तन्निजमूलेन हतं घनगोलफलं निरवशेषम् ॥ १।७

(५५) चाप : arc

समवृत्त परिधिचाप छिन्द्यात् त्रिभुजाच्चतुर्भुजाच्चैव ।
समचापज्यार्धानि तु विष्कम्भार्धे यथेष्टानि ॥ १।११

(५६) चतुर्भुज : quadrilateral

वृत्तं भ्रमेण साध्यं त्रिभुजं च चतुर्भुजं च कर्णाभ्याम् ।
साध्या जलेन समभूरध ऊर्ध्वं लम्बकेनैव ॥ १।१३

(५७) चान्द्र : lunar

अधिमासका युगे ते रविमासेभ्योऽधिकास्तु ये चान्द्राः ।
शशिदिवसाविज्ञेया भूमिवसोनास्तिथिप्रलयाः ॥ ३।६

(५८) चितिघन : sum in A.P.

एकोत्तराद्यपचितेर्गच्छाद्येकोत्तर त्रिसंवर्गः ।
षड्भक्तः स चितिघनः सैकपदघनो विमूलो वा ॥ १।२१

(५९) छेद : denominator

त्रैराशिकफलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा ।
लब्धं प्रमाणभजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात् ॥ १।२६

(६०) ज्या chord

सर्वेषां क्षेत्राणां प्रसाध्य पार्श्वे फलं तदभ्यासः ।
परिधेः षड्भागज्या विष्कंभाधन सा तुल्या ।। १।९

(६१) ज्यार्ध : sine

प्रथमाच्चापज्यार्धाद् यैरूनं खण्डितं द्वितीयार्धम् ।
तत्प्रथमज्यार्धांशैस्तैस्तैरूनानि शेषाणि ।। १।१२

(६२) जलजसत्त्व : acquatic animal

यद्वत्कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः ।
तद्वद्धि सर्वसत्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः ।। ३।७

(६३) जीवा : chord

दृग्गोलार्धकपाले ज्यार्धेन विकल्पयेद् भगोलार्धम् ।
विषुवज्जीवाक्षभुजास्तस्यास्त्ववलम्बकः कोटिः ।। ३।२३

(६४) तात्कालिक ग्रास : instantaneous eclipse

विक्षेपवर्गसहितात् स्थित्यर्धादिष्टवर्जितान्मूलम् ।
संपर्कार्धाच्छोध्यं न शेषस्तात्कालिकोग्रासः ।। ३।४३

(६५) त्रिभुज : triangle

त्रिभुजस्य फलशरीरं समदलकोटी भुजार्धसंवर्गः ।
ऊर्ध्वभुजा तत्संवर्गार्धं स घनः षडश्रिरिति ।। १।६

(६६) त्रैराशिक : rule of three

त्रैराशिक फलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा ।
लब्धं प्रमाणभजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात् ।। १।३८

(६७) दलित : halved

राश्यूनं राश्यूनं गच्छधनं पिण्डितं पृथक्त्वेन ।
व्येकेन पदेन हृतं सर्वधनं तद् भवत्येव ।। १।२९

(६८) दश : ten

एकं दश च शतं च सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम् ।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात्स्थानं दशगुणं स्यात् ।। १।२

(६९) दिन : twelve hour day

ब्राह्मदिवसेन भूमेरुपदिष्टाद्योजनं भवति वृद्धिः ।
दिनतुल्ययैव रात्र्या मृदुपचितायास्तदिह हानिः ।। ३।८

(७०) दिवस : day

वर्षं द्वादशमासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत्स मासस्तु ।
षष्टिर्नाड्यो दिवसः षष्टिश्च विनाडिका नाडी ॥ ३।१

(७१) { दुष्षम् : beginning and end of epoch
दुष्षम्

उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च ।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात् ॥ ३।९

(७२) दृक्क्षेप : meridian

मध्यज्योदयजीवासंवर्गे व्यासदलहृते यत्स्यात् ।
तन्मध्यज्याकृत्योर्विशेषमूलं स्वदृक्क्षेपः ॥ ३।३३

(७३) दक्षिणोत्तरमण्डल : southern and northern circle

पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरं चैव ।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ ॥ ३।१८

(७४) दृग्गोल : globe

दृग्गोलार्धकपाले ज्यार्धेन विकल्पयेद् भगोलार्धम् ।
विषुवज्जीवाक्षभुजास्तस्यास्त्ववलम्बकः कोटिः ॥ ३।२२

(७५) दृङ्मण्डल :

ऊर्ध्वमधस्ताद् द्रष्टुर्ज्ञेयं दृङ्मण्डलं ग्रहाभिमुखम् ।
दृक्क्षेपमण्डलमपि प्राग्लग्नं स्यात् त्रिराश्यूनम् ॥ ३।३१

(७६) द्वादशाश्रि : cube solid

वर्गः समचतुरश्रः फलं च सदृशद्वयस्य संवर्गः ।
सदृशत्रयसंवर्गो घनस्तथा द्वादशाश्रिः स्यात् ॥ २।३

(७७) धन—sum in A. P.
(७८) धनुष—arc
(७९) नभोमध्य—zenith
(८०) नाड़ी—$\frac{1}{60}$th part of the day, घटी
(८१) नाक्षत्र—stellar
(८२) नियुत—one lac
(८३) परिणाह—circumference

(८४) परिवर्त—variation, change

(८५) परिधि—circumference

(८६) प्रतिलोम—retrograde

(८७) प्रतिलोमग— going in reverse direction

(८८) प्रयुत—two iacs

(८९) पात—node

(९०) पार्श्व—side

(९१) पिण्डित—aggregated

(९२) प्राण—One Sixth of a विनाडिका

(९३) फल—area

(९४) फलराशि—2nd term in rule of three

(९५) भगण—revolution

(९६) भगोल—celestial sphere

(९७) भागहार—division

(९८) भूरविविवर—distance between the earth and sun

(९९) भूगोल—earth

(१००) भ्रम—compasses

(१०१) मण्डल—circuit

(१०२) मंदोच्च—upper apsis of a planet

(१०३) मध्य—middle term

(१०४) मास—month

(१०५) मुख—initial tarm

(१०६) मूल—root; principal

(१०७) मेपादि—first print of aries

(१०८) यवकोटि—a city peshaps in Japan oppositeto Rome

(१०९) योग—addition

(११०) योजन—a measure of distance

(१११) रविमास—solar month
(११२) रव्यब्द—solar year
(११३) रोमक विषय—Rome
(११४) लम्बक—plumb line
(११५) वर्ग—square figure
(११६) वर्गमूल—area of the square
(११७) वर्गफल—square root
(११८) वर्ष—year
(११९) विक्षेप—interchange
(१२०) विनाडिका—One Sixtieth of a नाडिका
(१२१) विपरीत त्रैराशिक—Inverted rule of three
(१२२) विलोमग—with retrograde motion
(१२३) विवर—distance
(१२४) विषुवत्—equator
(१२५) विष्कम्भ—diameter
(१२६) विष्कम्भार्ध—radius
(१२७) विस्तार—breadth
(१२८) वृत्त—circle
(१२९) वृद्धि—increase
(१३०) वृन्द—one hundred crore
(१३१) वेग—velocity
(१३२) व्यत्यय—interchange
(१३३) षड्भाग—one sixth
(१३४) शंकु—conc
(१३५) शत—hundred
(१३६) शशिमास—lunar month
(१३७) शशिदिवस—lunas day
(१३८) शीघ्रोच्च—ahris of the swiftest motion of a planet
(१३९) संपर्क—contact

(१४०) संपात—concurrence, coincidence
(१४१) समचतुरस्र—square
(१४२) समभ्यस्त—multiplied
(१४३) सम्मिश्र—mixed
(१४४) संवर्ग—product
(१४५) सर्वग्रास—full eclipse
(१४६) सर्वधन—sum, aggregate
(१४७) सवर्णत्व—homogeneity
(१४८) सहस्र—hundred
(१४९) सिद्धपुर—a city below Ceylone
(१५०) सुषमा—middle of epoch
(१५१) स्थलसत्व—terresrtrial animal
(१५२) स्थान—place (in decimal etc.)
(१५३) हानि—decrease
(१५४) होरेश—day

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः

ब्रह्मगुप्त रचित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त की गणित-शब्दावली

अंश— Degree

राश्यंशकलाविकला
शेषात् कथितादभीष्टतो नष्टान् ।
यः सावयत्युपरितनान्
समव्यमान् कुट्टकज्ञः सः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।२३,२६

अंशक— Numerator

विपरीतच्छेदगुणा
राश्योश्छेदांशकः समच्छेदाः ।
संकलितेंऽशा योज्या
व्यवकलितेंऽशान्तरं कार्यम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १.२२

अंशक— Degree

अंशकशेषात् त्र्यूनात्
सप्तहृतात् मूलमूनमष्टाभिः ।
नवभिर्गुणं सरूपं
कदा गतं बुधदिने सवितुः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।२७,१८

अक्ष— Terrestrial latitude

सलिलं भ्रमोऽवलम्बः
कर्णच्छाया दिनार्धमर्कोऽक्षः ।
नतकालज्ञानार्थं
तेषां संसाधनान्यष्टौ ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।६

अक्षांशक—*Latitude*

विषुवन्मण्डलमूर्ध्वं
सममण्डलतः स्थितं स्वकाक्षांशैः ।
याम्येनोत्तरतोऽक्षः
क्षितिजे प्राच्यपरयोर्लग्नम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।५१

अग्रा— Measure of amplitude (that is to say the distance from the extremity of the gnomon shadow to the line of the equinoctial shadow.

क्षितिजोन्मण्डलयोर्यत्
स्वाहोरात्रान्तरं चरदलं तत् ।
क्षितिजेऽग्रा प्राच्य—
परस्वाहोरात्रान्तरांशज्या ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।६१

अच्छेद— Integral

अच्छेदस्यच्छेदं रूपं कृत्वाऽन्यदुक्तवत् सर्वम् ।
अपवर्त्यौ छेदगुणौ तुल्येनेष्टेन गुण्यौ वा ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।६१

अधिक— Greater

ऊनमधिकाद् विशोध्यं धनं धनादृणमृणादधिकमूनात् ।
व्यस्तं तदन्तरं स्याद् ऋणं धनमृणं भवति ॥

ब्रा० स्फु० सि० १७।३१,३२

अधिमास—Exceeding month

त्र्यूनाधिमासशेषान् मूलं द्व्यधिकं विभाजितं षड्भिः ।
द्व्यूनं वर्गितमधिकं नवभिर्नवतिः कदा भवति ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।२८,२९

अधःखण्ड—Segments of the diagonals

कर्णयुतावूर्ध्वाधरखण्डे कर्णावलम्बयोगे वा ।
स्वाबाधे स्वयुतिहृते द्विधा पृथक्कर्णलम्बगुणे ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।२५

अध्यर्ध— One and a half

मासेन सत्रिभागेन सार्धायास्त्रिंशतेः फलम् ।
अध्यर्धं यदि वर्षेण सार्धषष्टे रिहोच्यताम् ॥

चतुर्वेदाचार्य

अनुपात— Proportion

कर्णावलम्बकयुतौ खण्डे कर्णावलम्बयोरधरे ।
अनुपातेन तदूने ऊर्ध्वे सूच्यां सपाटायाम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३०

अन्तर— Difference

धनयोर्धनमृणमृणयो र्धनर्णयोरन्तरं समैक्यं खम् ।
ऋणमैक्यं च धनमृणधनशून्ययोः शून्ययोः शून्यम् ॥
ब्रा० स्फु० सि० १८।३०,३१

अन्त्य— Last or end digit

स्थाप्योऽन्त्यधनोऽन्त्यकृतिस्त्रिगुणोत्तरसंगुणा च तत्प्रथमात् ।
उत्तरकृतिरन्त्यगुणा त्रिगुणा चोत्तारघनश्च घनः ॥
ब्रा० स्फु० सि० १२।६

अन्त्य (पद या मूल)—Root which is extracted from the quantity so operated upon

मूलं द्विधेष्टवर्गाद् गुणकगुणादिष्टयुतविहीनाच्च ।
आद्यवधो गुणकगुणः सहान्त्यघातेन कृतमन्त्यम् ॥
ब्रा० स्फु० सि० १८।६४,६५

अन्त्यधन—Last term

पदमेकहीनमुत्तरगुणितं संयुक्तमादिनाऽन्त्यधनम् ।
आदियुतान्त्यधनार्धं मध्यधनं पदगुणं गणितम् ॥
ब्रा० स्फु० सि० १२।१७

अपमण्डल—Ecliptic

पाताश्चन्द्रादीनां भ्रमन्ति भार्धे रवेश्च भूछाया ।
पातादपमण्डलवद् विमण्डलानि स्वविक्षेपैः ॥
ब्रा० स्फु० सि० २१।५३

अपवर्तन—Abridgement by a common measure

अच्छेदस्य च्छेदं रूपं कृत्वाऽन्यदुक्तवत् सर्वम् ।
अपवर्त्यौ छेदगुणौ तुल्येनेष्टेन गुण्यौ वा ॥
ब्रा० स्फु० सि० १२।६१

अब्द— Year

सौरेणाब्दाः मासास्तिथयश्चान्द्रेण सावनैर्दिवसाः ।
दिनमासाब्दपमध्या न तद्विनांऽर्केन्दुमानाभ्याम् ॥
ब्रा० स्फु० सि० २३।१

अयुत— Myriad

अवमावशेषमवमै रधिमासकशेषमधिमासैः ।
इष्टयुतोनं तुल्यं कुर्वन्नावत्सराद्गणकः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।५८,५९

अर— Spokes

लघुदारुमयं चक्रं समसुषिरारान्तरं पृथगराणाम् ।
अर्धे रसेन पूर्णे परिधौ संश्लिष्टकृतसन्धिः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।५३

अवमाव—Deficient, क्षय

अवमावशेषवर्गो व्येको विंशतिविभाजितो द्व्यधिकः ।
अष्टगुणो दशभक्तो द्वियुतोऽष्टादश कदा भवति ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।२९,३०

अवलम्ब—Plumbline

सलिलेन समं साध्यं भ्रमेण वृत्तमवलम्बकेनोर्ध्वम् ।
तिर्यक्कर्णेनान्यैः कथितैश्च नव प्रवक्ष्यामि ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।७

Plum line

यष्टिव्यासार्द्धे वा घटिका शङ्क्वङ्गुलादितो मूलात् ।
अवलम्बसूत्रयुक्तया घटिका', दिवसस्य गतशेषाः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।२३

अवलम्बक— Perpendicular

अविषमपार्श्वभुजगुणः कर्णो द्विगुणावलम्बकविभक्तः ।
हृदयं विषमस्य भुजप्रतिभुजकृतियोगमूलार्धम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।२६

अव्यक्त— Unknown

अव्यक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं समेऽव्यक्तः ।
वर्गाव्यक्ताः शोध्या यस्माद् रूपाणि तदधस्तात् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।४३,४४

अशक्य— Impossible, not within power

गोलस्य परिच्छेदः कर्तुं यन्त्रैर्विना यतोऽशक्यः ।
संक्षिप्तं स्पष्टार्थं यन्त्राध्यायं ततो वक्ष्ये ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।४

असकृत् : Repeatedly

आद्याद्वर्णानन्यान् वर्णान् प्रोह्याद्यमानमाद्यहृतम् ।
सदृशच्छेदावसकृद् द्वौ व्यस्तौ कुट्टकौ वहुपु ।।

ब्रा० स्फु० सि० १८।५१,५२

असदृश : Unequal

कृतियुतिरसदृशराश्यो र्बाहुर्घातो द्विसंगुणो लम्बः ।
कृत्यन्तरमसदृशयोर्द्विगुणं द्विसमत्रिभुज भूमिः ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।३३

आकाश : Cipher

शून्यविहीनमृणमृणं धनं धनं भवति शून्यमाकाशम् ।
शोध्यं यदा धनमृणादृणंधनाद्वा तदा क्षेप्यम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १८।३२,३३

आकृति : Form, figure, section of the wall

आकृतिफलमौच्च्याहतमग्रतलैक्यार्धमौच्च्यदैर्घ्यगुणम् ।
घनगणितमिष्टकाघनफलेन हृतमिष्टकागणितम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।४७

आदि : 1st term

पदमेकहीनमुत्तरगुणितं संयुक्तमादिनाऽन्त्यधनम् ।
आदियुतान्त्यधनार्धं मध्यधनं पदगुणंगणितम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।१७

आद्य (पद या मूल) :

Least or first root, that quantity of which the square multiplied by the given multiplicator and having the given addend added or subtrahend subtracted is capable of affording an exact square root.

मूलं द्विधेष्टवर्गाद् गुणकगुणादिष्टयुतविहीनाच्च ।
आद्यवधो गुणकगुणः सहान्त्यघातेनकृतमन्त्यम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १८।६४,६५

आप्त : Quotient

छेदो घनाद् द्वितीयाद् घनमूलकृतिस्त्रिसंगुणात्प्रकृतिः ।
शोध्या त्रिपूर्वगुणिता प्रथमाद् घनतो घनो मूलम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।७

आयत चतुरस्र : Oblong tetragon, rectangle

इष्टस्य भुजस्य कृतिर्भक्तो नेष्टेन तद्दलं कोटिः ।
आयतचतुरस्र क्षेत्रस्येष्टाधिका कर्णः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३५

आयाम : Length

विस्तारायामांगुलघातो मार्गाहतो द्विवेदहृतः ।
किष्क्वङ्गुलानि लब्धं तत्पण्णवतिर्भवति कर्म ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।४८

आर्क्ष : Stellar

मानानि सौरचान्द्रार्क्षसावनानि ग्रहानयनमेभिः ।
मानैः पृथक्चतुर्भिः संव्यवहारोऽत्र लोकस्य ॥

ब्रा० स्फु० सि० २३।२

इषु : Versed sine

ज्यार्धानि ज्यार्धानां ज्याखण्डान्यन्तराणि तान्येव ।
व्यस्तान्यन्त्यादथवेपुरुत्क्रमज्या धनुस्ताभ्याम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।१८

इष्ट : Assumed quantities

इष्टद्वयेन भक्तो द्विवेष्टवर्गः फलेष्टयोगार्धे ।
विषमत्रिभुजस्य भुजाविष्टोनफलार्धयोगो भूः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३४

इष्ट : Arbitrarily taken

इष्टगुणकारगुणितो गिर्युच्छ्रायः पुरान्तरमनष्टम् ।
द्वियुतगुणकारभाजितमुत्पातोऽन्यस्य समगत्योः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३९

उच्छ्राय : Height

इष्टगुणकारगुणितो गिर्युच्छ्रायः पुरान्तरमनष्टम् ।
द्वियुतगुणकारभाजितमुत्पातोऽन्यस्य समगत्योः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १३।३९

उत्क्रमज्या : Versed sine

ज्यार्धानि ज्यार्धानां ज्याखण्डान्यन्तराणि तान्येव ।
व्यस्तान्यन्त्यादथवेपुरुत्क्रमज्या धनुस्ताभ्याम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।१८

उत्तर : Preceding digit

स्थाप्योऽन्त्यधनोऽन्त्यकृतिस्त्रिगुणोत्तरसंगुणा च तत्प्रथमात् ।
उत्तरकृतिरन्त्यगुणा त्रिगुणा चोत्तरघनश्च घनः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।६

उत्तर : Difference

प्रक्षेपयोगहृतया लब्ध्या प्रक्षेपका गुणा लाभाः ।
ऊनाधिकोत्तरास्तद् युतोनया स्वफलमूनयुतम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।१६

उत्पात : Leap

इष्टगुणकारगुणितो गिर्युच्छ्रायः पुरान्तरमनष्टम् ।
इष्टगुणकारभाजितमुत्पातोऽन्यस्य समगत्योः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३६

उद्देशक : Example

प्रतिसूत्रममी प्रश्नाः पठिताः सोद्देशकेषु सूत्रेषु ।
आर्यात्र्यधिकशतेन च कुट्टकश्चाष्टादशोऽध्यायः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।१०२,१०३

उद्धृत : Divided

संवर्णितांशवर्गश्छेदकृतिविभाजितो भवति वर्गः ।
संवर्णितांशमूलं छेदपदेनोद्धृतं मूलम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।५

खोद्धृतमृणं धनं वा तच्छेद खमृणधनविभक्तं वा ।
ऋणधनयोर्वर्गः स्वं खं खस्य पदं कृतिर्यत् तत् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।३५,३६

उन्नतांशज्या : The sum of the distance from horizon

दृग्मण्डले नतांशज्या दृग्ज्या शंकुरुन्नतांशज्या ।
अर्कोदयास्तसूत्राद् दिनशंकोर्दक्षिणेन तलम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।६३

उन्मण्डल : The east and west hour circle or six o' clock time.

पूर्वापरयोर्लग्नं याम्योत्तरयोर्नतोन्नतं क्षितिजात् ।
स्वाक्षांशैरुन्मण्डलमहर्निशोर्हानिवृद्धिकरम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।५०

उपरितन : Superior

राश्यंशकलाविकलाशेषात् कथितादभीष्टतो नष्टान् ।
यः साधयत्युपरितनान् समध्यमान् कुट्टकज्ञः सः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २३।२६

ऊन : Less

ऊनमधिकाद् विशोध्यं धनं धनादृणमृणादधिकमूनात् ।
व्यस्तं तदन्तरं स्याद् ऋणं धनं धनमृणं भवति ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।३१,३२

ऊर्ध्व : Vertical

सलिलेन समं साध्यं भ्रमेण वृत्तमवलम्बकेनोर्ध्वम् ।
तिर्यक्कणनान्यः कथितैश्च नव प्रवक्ष्यामि ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।७

ऊर्ध्वखण्ड : Segments of the diagonals

कर्णयुतावूर्ध्वाधरखण्डे कर्णावलम्बयोगे वा ।
स्वाबाधे स्वयुतिहृते द्विधा पृथक्कर्णलम्बगुणे ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।२५

ऋण : Negative

धनयोर्धनमृणमृणयोर्धनर्णयोरन्तरं समैक्यं खम् ।
ऋणमैक्यं च धनमृणधनशून्ययोः शून्ययोः शून्यम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।३०,३१

एकाग्र : The whole of the longside which is subdivided

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखातफलं हृतं त्रिभिः सूच्याः ।
मुखतलतुल्यभुजैक्यान्येकाग्रहृतानि समरज्जुः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।४४

ऐक्य : Aggregate

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखातफलं हृतं त्रिभिः सूच्याः ।
मुखतलतुल्यभुजैक्यान्येकाग्रहृतानि समरज्जुः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।४४

ऐक्य : Sum

धनयोर्धनमृणमृणयोर्धनर्णयोरन्तरं समैक्यं खम् ।
ऋणमैक्यं च धनमृणधनशून्ययोः शून्ययोः शून्यम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।३०,३१

ऐक्य : Total

गतमगणयुताद्द्युगणात् तच्छेषयुतात् तदैक्यसंयुक्तात् ।
तद्योगाद् द्युगणं वा यः कथयति कुट्टकज्ञः सः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।५२,५३

ऐन्द्री : East, यमकोटि

युगपद्युगादिरुदयाद्यायाम्यां भास्करस्य वारुण्याम् ।
रात्र्यर्धात् सौम्यायामस्तमयाद्दिनदलादैन्द्रयाम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २४।२

औच्च्य : Height

आकृतिफलमौच्च्याहतमग्रतलैक्यार्धमौच्च्यदैर्घ्यगुणम् ।
घनगणितमिष्टकाघनफलेन हृतमिष्टकागणितम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।४७

औत्र : Gross, better approximation

मुखतलयुतिदलगणितं वेधगुणं व्यावहारिकं गणितम् ।
मुखतलगणितैक्यार्धं वेधगुणं स्याद्गणितमौत्रम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।४५

औत्रफल : Better approximation

कक्षा : Orbit

कक्षामण्डलमध्यं भूमध्ये मध्यमः स्वकक्षायाम् ।
अनुलोमं मन्दोच्चात् प्रतिलोमं भ्रमति शीघ्रोच्चात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।२४

कपालक : Name of an astronomical instrument

सप्तदशकालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।५

करण : Instrument

अवलम्बनं शलाकां ज्यार्धं यष्टिं प्रकल्प्य वा धनुपि ।
भूम्युच्छ्रायाल्लम्बो यष्ट्युक्तैरानयेत् करणैः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।१६

करण : Method

हृदिघात्रममी प्रश्नाः प्रश्नानन्यान् सहस्रशः कुर्यात् ।
अन्यैर्दत्तान् प्रश्नान् उक्तयैवं साधयेत् करणैः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।१००,१०१

अविषम पार्श्वभुजगुणः कर्णो द्विगुणावलंबक विभक्तः हृदयं विषमस्य

कर्ण : Hypotenues

कर्णकृतेः कोटिकृतिं विशोध्य सूत्रं भुजो भुजस्य कृतिम् ।
प्रोह्यपदं कोटिः कोटिबाहुकृतियुतिपदं कर्णः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।२४

कर्णयुति : Point of instersection of both the diagonals of a quadrilateral

कर्णयुतावूर्ध्वाधरखण्डे कर्णावलम्बयोगे वा ।
स्वाबाधे स्वयुतिहृते द्विधापृथक्कर्णलम्बगुणे ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।२५

कर्णावलम्बयोग : Point of intersection of a diagonal and perpendicular

कर्णयुतावूर्ध्वाधरखण्डे कर्णावलम्बयोगे वा ।
स्वाबाधे स्वयुतिहृते द्विधापृथक्कर्णलम्बगुणे ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।२५

कर्तरी : Name of an astronomical instrument.

सप्तदशकालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।५

कर्म : The work, rate of the workmans' pay

विस्तारायामांगुलघातो मार्गाहितो द्विवेदहृतः ।
किष्क्वङ्गुलानि लब्धं तत् षण्णवतिर्भवति कर्म ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।४८

कला : Minutes

अंशसममंशशेषं कलासमं वा कलाशेषम् ।
दिवसकरस्येष्टदिने कुर्वन्नावत्सराद्गणकः ।।

ब्रा०स्फु०सि० १८।५७,५८

कला : Minutes

राश्यंशकलाविकलाशेषात् कथितादभीष्टतो नष्टान् ।
यः साधयत्युपरितनान् समध्यमान् कुट्टकज्ञः सः ।।

ब्रा० स्फु० सि० १८।२३,२६

काल : Time

कालगुणितं प्रमाणं फलभक्तं व्येकगुणहृतं कालः ।
स्वफलयुतरूपभक्तं मूलफलैक्यं भवति मूलम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।१४

किष्कु : Cubit

विस्तारायामांगुलघातो मार्गाहतो द्विवेदहृतः ।
किष्क्वंगुलानि लब्धं तत् षण्णवतिर्भवति कर्म ।।

ब्रा०स्फु०सि० १२।४८

कील : Nail

दिक्स्थितफलकद्वियुतिस्तले तदग्रस्थसूत्रयोर्मध्ये ।
कीलस्तच्छायाग्रात् कर्त्तार्या नाडिकाः स्थूलाः ।।

ब्रा०स्फु०सि० २२।४४

कुट्ट : Pulverizer, कुट्टक

राश्यंशकलाविकलाशेषात् कथितादभीष्टतो नष्टान् ।
यःसाधयत्युपरितनान् समध्यमान् कुट्टकज्ञः सः ।।

ब्रा०स्फु०सि० १८।२३,२६

कुट्टक : Algebra

कुट्टकखर्णधनाव्यक्त मध्यहरणैकवर्ण भावितकैः ।
आचार्यस्तन्त्रविदां ज्ञातैर्वर्गप्रकृतया च ।।

ब्रा०स्फु०सि० १८।२

कुट्टज्ञ : Conversant in pubverizer, कुट्टकज्ञ

तिथिमानदिनेष्विष्टा येऽर्काद्यास्ते पुनः कदा तेषु ।
इष्टग्रहवारेषु यः कथयति कुट्टकज्ञः सः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।१८.२१

केन्द्र : Centre

मासगणो यमगुणितः पृथक्कृतत्वोद्धृतः फलसमेतः ।
सार्वाष्टयुतो वसुमयविभक्तशेषो विधोः केन्द्रम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० २५।६

कृति : Square

संवर्णितांशवर्गश्छेदकृतिविभाजितो भवति वर्गः ।
संवर्णितांशमूलं छेदपदेनोद्धृतं मूलम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।५

कोटि : Perpendicular side

कर्णकृतेः कोटिकृतिं विशोध्य मूलं भुजो भुजस्य कृतिम् ।
प्रोह्य पदं कोटिः कोटिबाहुकृतियुतिपदं कर्णः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।२४

कोण : Corner (of the wall)

द्विचतुःसत्र्यंशगुणो भित्त्यन्तर्बाह्यकोणगः परिधिः ।
प्राग्वत् कृत्वा गणितं तद्गणितं स्वगुणकारहृतम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।५१

कोणस्पृग्वृत्त : Circumcircle

त्रिभुजस्य वधो भुजयोर्द्विगुणितलम्बोद्धृतो हृदयरज्जुः ।
सा द्विगुणा त्रिचतुर्भुजकोणस्पृग्वृत्तविष्कम्भः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।२७

क्रमज्या : Sine

तुल्यक्रमोत्क्रमज्या समखण्डकवर्गयुतिचतुर्भागम् ।
प्रोह्ययानष्टं व्यासार्धवर्गतस्तत्पदे प्रथमम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० २२।२०

क्रान्ति : Eccentricity

यान्त्युदयं मेषाद्या यतस्तदुदया न कालसमाः ।
क्रान्तिवशाल्लङ्कायां तदूनताधिक्यमक्षवशात् ।।

ब्रा०स्फु०सि० २१।६०

क्षय : Minus

क्षयघन धनक्षयास्तत्फलानि शीघ्रेऽन्यथा धनं धनयो

क्षितिज : Horizon

प्राच्यपरं सममण्डलमन्यद्याम्योत्तरं क्षितिजमन्यत् ।
परिकरवत्तन्मध्ये भूगोलस्तत्स्थितद्रष्टुः ।।

ब्रा०स्फु०सि० २१।४६

क्षिप्ति : Additive and addend. The quantity to be added to the square of the least root multiplied by the multiplicator to render it capable of yielding an exact square root.

वज्रवधैक्यं प्रथमं प्रक्षेप: क्षेपवधस्तुल्यः ।
प्रक्षेपशोधकहृते मूले प्रक्षेपके रूपे ।।

ब्रा०स्फु०सि० १८।६५,६६

क्षेप : Additive or addend. The quantity to be added to the square of the least root multiplied by the multiplicator to render it capable of yielding an exact square root.

वज्रवधैक्यं प्रथमं प्रक्षेप: क्षेपवधस्तुल्यः ।
प्रक्षेपशोधकहृते मूले प्रक्षेपके रूपे ।।

ब्रा०स्फु०सि० १८।६६

क्षेप्य : Thrown together, added together

शून्यविहीनमृणमृणं धनं धनं भवति शून्यमाकाशम् ।
शोध्यं यदा धनमृणाद् ऋणधनाद्वा तदा क्षेप्यम् ।।

ब्रा०स्फु०सि० १८।३२,३३

क्षेप्य : To be added.

भावितकरूपगुणना साव्यक्तवधेष्टभाजितेष्टाप्त्योः ।
अल्पेऽधिकोऽधिकेऽल्पः क्षेप्यः भावितहृतौ व्यस्तम् ।।

ब्रा०स्फु०सि०१८।६०,६१

खण्ड : Portions (as 2,8,8 in 288),

गुणकारखण्डतुल्यो गुण्यो गोमूत्रिकाकृतो गुणितः ।
सहितः प्रत्युत्पन्नो गुणकारकभेदतुल्यो वा ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।५५

खमध्य: Zeinth

देशान्तरे खमध्ये भुजफलचापे भुजान्तरे च कृते

ब्रा० स्फु० सि०२।१८

गच्छ : Number of terms

एकोत्तरमेकाद्यं यदीष्टगच्छस्य भवति संकलितम् ।
तद्द्वियुतगच्छगुणितं त्रिहृतं संकलितसंकलितन् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।१९

गण (द्युगण) : Number

गतभगणयुताद् द्युगणात् तच्छेषयुतात् तदैक्यसंयुक्तात् ।
तध्योगाद्द्युगणं वा यः कथयति कुट्टकज्ञः सः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।५२,५३

गणक : Mathematician, competent to the study of sphere

परिकर्मविंशतिं यः संकलिताद्यां पृथग्विजानाति ।
अष्टौ च व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।१

गणित : Sum of terms.

पदमेकहीनमुत्तरगुणितं संयुक्तमादिनाऽन्त्यधनम् ।
आदियुतान्त्यधनार्धं मध्यधनं पदगुणं गणितम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।१७

गणित (इष्टका गणित) : Number of bricks

आकृतिफलमौच्च्याहतमग्रतलैक्यार्धमौच्च्यदैर्घ्यगुणम् ।
घनगणितमिष्टकाघनफलेन हृतमिष्टकागणितम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।४७

गुटिका : A small ball or globe

कीलोपरिगामिन्यां चीर्याद्यं पारदमलावुतु ।
स्रवति जले क्षिपति नरो गुटिकां कूर्मादयश्चैवम् ।।

ब्रा०द

गुणकार : Multiplier

इष्टगुणकारगुणितो गिर्युच्छ्राय: पुरान्तरमनष्टम् ।
द्वियुतगुणकारभाजितमुत्पातोऽन्यस्य समगत्यो: ।।

ब्रा०स्फु

Multiplier

गुणकारखण्डतुल्यो गुण्यो गोमूत्रिकाकृतो गुणित: ।
सहित: प्रत्यत्पन्नो गुणकारकभेदतुल्यो वा ।।

ब्रा०स्फु०सि

गणना : Product

भावितकरूपगुणना साव्यक्तवधेष्ठभाजितेष्टान्त्यो: ।
अल्पेऽधिकोऽधिकेऽल्प: क्षेप्यो भावितहृतौ व्यस्तम् ।।

ब्रा०स्फु०सि० १८।

गुण्य : Multiplicand

गुणकारखण्डतुल्यो गुण्यो गोमूत्रिकाकृतो गुणित: ।
सहित: प्रत्युत्पन्नो गुणकारकभेदतुल्यो वा ।।

ब्रा०स्फु०सि० १२

गोमूत्रिका : Method of multiplication

गुणकारखण्डतुल्यो गुण्यो गोमूत्रिकाकृतो गुणित: ।
सहित: प्रत्युत्पन्नो गुणकारकभेदतुल्यो वा ।।

ब्रा०स्फु०सि० १२।५

गोलज्ञ : Conversant with spherics

गणितज्ञो गोलज्ञो गोलज्ञो ग्रहगतिं विजानाति ।
यो गणितगोलवाह्यो जानाति ग्रहगतिं स कथम् ।।

ब्रा०स्फु०सि० २२।३

गोलविद् : Conversant with spherics

मध्याद्यमिह यदुक्तं तत् प्रत्यक्षमिव दर्शयति यस्मात् ।
तस्मादाचार्यत्वं गोलविदो भवति नान्यस्य ।।

ब्रा०स्फु०सि० २२।१

ग्रह : planet

येन गुणः शेषयुतश्छेदः शुध्यति हृतः स्वगुणकेन ।
तद्भुक्तं शेषं फलमेवं शेषात् ग्रहद्युगणौ ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।२४,२७

Planet

कक्षामण्डलतुल्यं प्राच्यपरं दक्षिणोत्तरं क्षितिजम् ।
उन्मण्डलविषुवन् मण्डले स्थिराणि ग्रहक्षणाम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० ११।६७

ग्रहगति : Planetary motion

प्रतिपादनार्थ मुच्चं प्रकल्पितं ग्रहगते स्तथा पातः ।
भुक्तेरूनाधिकता मानस्य च भवति कर्णवशात् ॥

ब्रा०स्फु०सि० २१।३०

ग्रास : Quantity eclipsed

इष्टशरद्वयभक्ते ज्यार्धकृती शरयुते फले व्यासौ ।
शरयोः फलयोरैक्यं ग्रासो ग्रासोनमैक्यं तत् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।४६

घटिका : Name of an astronomical instrument

सप्तदशकालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० २२।५

घटिका : One sixtieth of the day

रूपेण रूपरामैः खसायकैस्ताडितो गणो युक्तः ।
षड्भिर्वेदैर्धृत्या वासरघटिका विघटिकास्युः ॥

ब्रा०स्फु०सि० २५।४

घन : Cube

छेदो घनाद् द्वितीयाद् घनमूलकृतिस्त्रिसंगुणाप्तकृतिः ।
शोध्या त्रिपूर्वगुणिता प्रथमाद्घनतो घनो मूलम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।७

घनफल : Solid content, volume

आकृतिफलमौच्च्याहतमग्रतलैक्यार्धमौच्च्यदैर्घ्यगुणम् ।
घनगणितमिष्टकाघनफलेन हृतमिष्टकागणितम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।४७

घण्टा : Hour, because at the end of an hour the घण्टा is struck

कीलोत्क्षेपाभिहृत: पटहः शब्दं करोति घण्टा वा ।
एवं यन्त्रसहस्राण्यनेन बीजेन कार्याणि ।।

ब्रा०स्फु०सि० २

घात : Product

ऋणमृणधनयोर्घातो धनमृणयोधनवधो धनं भवति ।
शून्यर्णयो: खधनयो: खशून्ययोर्वा वधः शून्यम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १८।३

चक्र : Name of an astroomnical instrument

सप्तदशकालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २

चतुष्पद : Tetranomial

चर : Ascensional differences

क्षितिजोन्मण्डलयोर्यत् स्वाहोरात्रान्तरं चरदलं तत् ।
क्षितिजेऽग्रा प्राच्यपरस्वाहोरात्रान्तरांशज्या ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।

चरकरण : Variable hypotenuse (the distance of the planet from the earth)

व्यर्केन्दुकलाभक्ता: खरसगुणैर्लब्धमूनमेकेन ।
चरकरणानि ववादीन्यगताच्छेषात् तिथिवदन्यत् ।।

ब्रा०स्फु०सि० २५।२

चरदल : Ascensional difference

क्षितिजोन्मण्डलयोर्यत् स्वाहोरात्रान्तरं चरदलं तत् ।
क्षितिजेऽग्रा प्राच्यपरस्वाहोरात्रान्तरांशज्या ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१ ६१

चल : Variable

त्रिगुणो दलितः स्वद्वादशांशयुक्त: सितचलं ध्रुवं स्यात् ।
तात्कालिकं चलं स्याद्रविरन्येषां ज्ञशुक्रौ स्तः ।।

ब्रा० स्फु० सि० २५।३६

चलकेन्द्र : Variable centre

भागीकृतचलकेन्द्रे त्रिगुणे खाग्न्युद्धृते फलं पिण्डः ।
षड्राश्यधिके चक्राद् विशोध्य शेषेण पिण्डःस्यात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २५।४२

चलध्रुवक : Variable celestial latitude

चतुराहतोऽब्धिगुणितः पृथक् च सप्ताहतोऽब्धिधृतिभक्तः ।
फलसंयुतो विधेयो ज्ञचलध्रुवको ज्ञशीघ्रं स्यात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २५।३४

चलवृत्त : Variable circle, on which a celestial body or point moves

दृग्मण्डलविक्षेपापमण्डलानि क्षपाकरादीनाम् ।
षट्कं विमण्डलानां चलवृत्तान्येकपंचाशत् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।६६

चान्द्र : Lunar

मानानि सौरचान्द्रार्क्षसावनानि ग्रहानयनमेभिः ।
मानैः पृथक् चतुर्भिः संव्यवहारोऽत्र लोकस्य ॥

ब्रा० स्फु० सि० २३।२

चीरि : A piece of cloth

[illegible] चीराग्रं पारदमलाबु तु ।
[illegible] गुटिकां कूर्मादयश्चैवम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।४८

छाया : Shadow of a gnomon

छायां दृग्ज्यां दृष्टिं छायाकर्णमवलम्बकं शंकुम् ।
परिकल्प्य शंकुयन्त्रे योज्यं घटिकादि यष्ट्युक्तम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।४०

छायाकर्ण : A hypotenuse joining the end point of shadow and gnomon.

छायां दृग्ज्यां दृष्टिं छायाकर्णमवलम्बकं शंकुम् ।
परिकल्प्य शंकुयन्त्रे योज्यं घटिकादि यष्ट्युक्तम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।४०

छेद : Division

छेदेनेष्टयुतोनेनाप्तं भाज्यादनष्टमिष्टगुणम् ।
प्रकृतिस्यच्छेदहृत लब्ध्या युतहीनकमनष्टम् ॥

ब्रा० स्फु०

छेद : Denominator

विपरीतच्छेदगुणा राश्योश्च्छेदांशका: समच्छेदा: ।
संकलितेंऽशा योज्या व्यवकलितेंऽशान्तरं कार्यम् ॥

ब्रा० स्फु०

जात्य : Right angled traingle

जात्यद्वयकोटिभुजा: परकर्णगुणा भुजाश्चतुर्विषमे ।
अधिको भूमुखहीनो बाहुद्वितयं भुजावन्यौ ॥

ब्रा० स्फु० ि

जीवा : Sine

एवं जीवाखण्डान्यल्पानि बहूनि वाऽऽद्यखण्डानि ।
ज्यार्धानि वृत्तपरिधे: षष्ठचतुर्थत्रिभागानाम् ॥

ब्रा० स्फु० सि·

जीवा : Chord

वृत्ते शरोनगुणिताद् व्यासाच्चतुराहतात् पदं जीवा ।
ज्यावर्गश्चतुराहतशरभक्त: शरयुतो व्यास: ॥

ब्रा० स्फु० सि०

ज्या : Chord

ज्याव्यासकृतिविशेषात् मूलव्यासान्तरार्धमिषुरल्प: ।
व्यासौ ग्रासोनगुणौ ग्रासोनैक्योद्धृतौ बाणौ ॥

ब्रा० स्फु० सि० १

ज्या : Sine

राश्यष्टांशेष्वंकान् पदसन्धिभ्य: क्रमोत्क्रमात् कृत्वा ।
बध्नीयात् सूत्राणि द्वयोर्द्वयोर्ज्यास्तदर्धानि ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।

तिथि : Date
सौरेणाब्दा मासा-
स्तिथयश्चान्द्रेण सावनैर्दिवसाः ।
दिनमासाब्दकमध्या
न तद्विनाऽर्केन्दुमानाभ्याम् ।

ब्रा० स्फु० सि० २३।१

तिर्यक् : Oblique
सलिलेन समं साध्यं
भ्रमेण वृत्तमवलम्बकेनोर्ध्वम् ।
तिर्यक्करणैर्नान्यै:
कथितैश्च नव प्रवक्ष्यामि ।

ब्रा० स्फु० सि० २२।७

तुरीय : Name of an ancient Indian astronomical instrument
सप्तदशकालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्तरी पीठम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।५

तुर्यगोल : Name of an ancient Indian astronomical instrument
सप्तदशकालयन्त्रा-
ण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका
कपालकं कर्तरी पीठम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।५

त्रिज्या : Radius
त्रिज्याभक्तः कर्णः परिधिगुणो बाहुकोटिगुणकारः ।
असकृन्मान्दे तत्फलमाद्यसमं नात्र कर्णोऽस्मात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।२९

त्रिपद : Trinomial

त्रिपाद : Greater intercept of the base by the perpendicular, Colebrook.

दिनार्ध : Noon
सलिलं भ्रमोऽवलम्बः कर्णश्छाया दिनार्धमर्कोऽक्षः ।
नतकालज्ञानार्थं तेषां संसाधनान्यष्टौ ।

ब्रा० स्फु० सि० २२।६

दिवस : Day

सौरेणाब्दा मासास्तिथयश्चान्द्रेण सावनैर्दिवसाः ।
दिनमासाब्दकमध्या न तद्विनाऽर्केन्दुमानाख्याम् ।

ब्रा० स्फु० सि० २३।१

देशान्तर : Longitude (see खमध्य)

दैर्घ्य : Length

आकृतिफलमौच्याहतमग्रतलैक्यार्धमौच्चयदैर्घ्यगुणम् ।
घनगणितमिष्टकाघनफलेन हृतमिष्टकागणितम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।४७

दृग्ज्या : Sine of ecliptic altitude

स्वाहोरात्रे क्षितिजाद् दिनगतशेषोच्चता रवेः शंकुः ।
तस्माद्दिनगतशेषं शंकुकुमध्यान्तरं दृग्ज्या ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।६२

द्विगुण : Double

कृतियुतिरसदृशराश्योर्बाहुर्घातो द्विसंगुणो लम्बः ।
कृत्यन्तरमसदृशयोर्द्विगुणं द्विसमत्रिभुजभूमिः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३३

द्विपद : Binomial

द्विसमचतुरस्र : Isosceles tetragon

आयतकर्णौ बाहू भुजकृतिरिष्टेन भाजितेष्टोना ।
द्विहृता कोट्यधिका भूर्मुखमूना द्विसमचतुरस्रे ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३६

द्विसमत्रिभुज : Isosceles triangle

कृतियुतिरसदृशराश्योर्बाहुर्घातो द्विसंगुणो लम्बः ।
कृत्यन्तरमसदृशयोर्द्विगुणं द्विसमत्रिभुजभूमिः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३३

धन : Positive

धनयोर्धनमृणमृणयोर्धनर्णयोरन्तरं समैक्यं खम् ।
ऋणमैक्यं च धनमृणधनशून्ययोः शून्ययोः शून्यम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।३०,३१

धनु : Arc

ज्यार्धानि ज्यार्धानां ज्याखण्डान्यन्तराणि तान्येव ।
व्यस्तान्यन्त्यादथवेपुरुत्क्रमज्या धनुस्ताभ्याम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।१८

धनुर्यन्त्र : Name of an astronomical instrument in old days

सप्तदशकालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं यन्त्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २२।५

ध्रुवक : Pole

खस्वरसलब्धं च गणाद्घटिकासु नियोजयेत् तिथिध्रुवकाः ।
रव्यादिकस्तदुदये चैत्रादावर्कचन्द्रौ च ।।

ब्रा० स्फु० सि० २५।५

नभोमध्य : Zenith

क्षितिजे भूदललिप्ताः कक्षायां दृङ्नतिर्नभोमध्यात् ।
अवनतिलिप्ता याम्योत्तरा रविग्रहवदन्यत्र ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।६५

नतकाल : Hour angle

सलिलं भ्रमोऽवलम्बः कर्णश्छाया दिनार्धमर्कोऽक्षः ।
नतकालज्ञानार्थं तेषांसंसाधनान्यष्टौ ।।

ब्रा० स्फु० सि० २२।६

नतांश : Noon zenith distance

दृग्मण्डले नतांशज्या दृग्ज्या शंकुरुन्नतांशज्या ।
अर्कोदयास्तसूत्राद्दिनशंकोर्वक्षिणेन तलम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।६३

नर : Gnomon, नराकार यन्त्र

कीलोपरिगामिन्यां चीर्याद्यं पारदमलाबु तु ।
स्रवति जले क्षिपति नरो गुटिकां कूर्मादयश्चवम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २२।४८

नर : length of gnomon

छायानरसैकहृतं द्युदलं प्रागपरयोर्द्युगतशेषम् ।
दिनगतशेषांशहृतं द्युदलं छाया नरव्येकम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।५२

नलक : Pipe

कीलस्योपरिगामिनि तत्पर्ययसूत्रके घृतमलाबु ।
प्राग्वन्नलके प्रक्षिप्य नाडिका स्रुवति पानीये ।।

ब्रा० स्फु० सि० २२।५६

Pipe

नलको मूले विद्धस्तत्सुतिघटिकोद्धृतः समुच्छ्रायः ।
लब्धांगुलैस्तु तन्नाडिकाक्रियायन्त्रसिद्धिरतः ।।

ब्रा० स्फु० सि० २२।४६

नाडिका : Instrument in the shape of a pipe

कीलस्योपरिगामिनि तत्पर्ययसूत्रकेवृतमल्लाबु ।
प्राग्वन्नलके प्रक्षिप्य नाडिका स्रवति पानीये ।

ब्रा० स्फु० सि० २२।५६

नाडी : 1/60th of the day

नाड्यर्द्धेन समेतं भद्वितयं प्रक्षिपेच्च शशिकेन्द्रे ।
रूपं रूपहुताशाः खशराश्च तिथिघ्रुवे क्रमशः ।।

ब्रा० स्फु० सि० २५।८

निरपवर्त : Reduced to least term

इष्टभगणादिशेषात् स्वकुट्टकगुणात् स्वभागहारहृतात् ।
शेषं युगणो गतनिरपवर्त्तगुणभागहारयुतः ।।

ब्रा० स्फु० सि० २८।१२,१५

निरछेद : Divisible in least terms

निरछेदभागहारो भानोः सप्ततिगुणोंऽशशेषोनः ।
गुण्यस्पयुतविभक्तः कुर्वन्नावत्सराद्गणकः ।।

ब्रा० स्फु० सि० १८।५६,६०

निश्छेद : Reduced to least term

निश्छेदभागहाराद् राश्यादिकलादिना हताद् भवतात् ।
भगणकलाभिर्लब्धं मण्डलशेषं दिनगणोऽस्मात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।२१,२४

पंचगत : Raised to the 5th power

अव्यक्तवर्गघनवर्ग वर्गपंचगतषड्गतादीनाम् ।
तुल्यानां संकलितव्यवकलिते पृथगतुल्यानाम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० ८।४१,४२

पद : Root

संवर्णितांशवर्गश्छेदकृतिविभाजितो भवति वर्गः ।
संवर्णितांशमूलं छेदपदेनोद्धृतं मूलम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।५

परिकर : Zone, कटिबन्ध

प्राच्यपरं सममण्डलमन्यद्याम्योत्तरं क्षितिजमन्यत् ।
परिकरवत् तन्मध्ये भूगोलस्तत्स्थितद्रष्टुः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।४६

परिकर्म : Arithmatical operation

परिकर्मविंशतिं यः संकलिताद्यां पृथग्विजानाति ।
अष्टौ च व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः ॥

ब्रा० स्फु० सि० ७।१

परिच्छेद : Well realization

गोलस्य परिच्छेदः कर्तुं यन्त्रैर्विनायतोऽशक्यः ।
संक्षिप्तं स्पष्टार्थं यन्त्राध्यायं ततो वक्ष्ये ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।४

परिधि : Circumference

त्रिज्याभक्तः कर्णः परिधिगुणो बाहुकोटिगुणकारः ।
असकृन्मान्दे तत्फलमाद्यसमं नात्र कर्णोऽस्मात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।२६

परिलेखन : Drawing

परिलिख्य वृत्तमवनौ यष्टिव्यासार्द्धमन्यदस्यान्तः ।
स्वाहोरात्रार्धार्घं घटिकाषष्ट्यंकितं परिधौ ।।

ब्रा० स्फु० सि० २२।२०

परिवर्तन : Transposition

परिवर्त्य भागहारच्छेदांशौ छेदसंगुणच्छेदः ।
अंशोऽशगुणः भाज्यस्य भागहारः सवर्णितयोः ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।४

पाट : Intersectional side of a perpendicular and base

कर्णावलम्बकयुतौ खण्डे कर्णावलम्बयोरधरे ।
अनुपातेन तदूने ऊर्ध्वे सूच्यां सपाटायाम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।३२

पात : Node, मान = value

प्रतिपादनार्थमुच्चं प्रकल्पितं ग्रहगतेस्तथा पातः ।
भुक्तेरूनाधिकता मानस्य च भवति कर्णवशात् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।३०

पिण्ड : A sine expressed in numbers

भागीकृतचलकेन्द्रे त्रिगुणे खाग्न्युद्धृते फलं पिण्डः ।
षड्भ्यधिके चक्राद् विशोध्य शेषेण पिण्डः स्यात् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २५।४२

पीठ : Name of an ancient Indian astronomical instrument

सप्तदशकालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २२।५

प्रकल्पित : Assumed

प्रतिपादनार्थमुच्चं प्रकल्पितं ग्रहगतेस्तथा पातः ।
भुक्तेरूनाधिकता मानस्य च भवति कर्णवशात् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।३०

प्रकृतिस्थ : Original

छेदेनेष्टयुतोनेनाप्तं भाज्यादनष्टमिष्टगुणम् ।
प्रकृतिस्थच्छेदहृतं लब्ध्या युतहीनकमनष्टम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।५७

प्रक्षेप : Additive or addend. The quantity to be added to the square of the least root multiplied by the multiplicator to render it capable of yeilding an exact square root.

वज्रवधैक्यं प्रथमं प्रक्षेप: क्षपवधस्तुल्य: ।
प्रक्षेपशोधकहृते मूले प्रक्षेपके रूपे ।।

ब्रा० स्फु० सि० १८।६५,६६

प्रक्षेप : The proposed quantities

प्रक्षेपयोगहृतया लब्धया प्रक्षेपका गुणा लाभा: ।
ऊनाधिकोत्तरास्तद् युतोनया स्वफलमूनयुतम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।१६

प्रतिभुज : Opposite side

अविषमपार्श्वभुजगुण: कर्णो द्विगुणावलम्बकविभक्त: ।
हृदयं विषमस्य भुजप्रतिभुजकृतियोगमूलार्धम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।२६

प्रत्युत्पन्न : Product

रूपाणि च्छेदगुणान्यंशयुतानि द्वयोर्वहूनां वा ।
प्रत्युत्पन्नो भवति च्छेदवधेनोद्धृतोंऽशवध: ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।३

गुणकारखण्डतुल्यो गुण्यो गोमूत्रिकाकृतो गुणित: ।
सहित: प्रत्युत्पन्नो गुणकारकभेदतुल्यो वा ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।५५

प्रश्न : Question

प्रतिसूत्रममी प्रश्ना: पठिता: सोद्देशकेषु सूत्रेषु ।
आर्याव्यधिकशतेन च कुट्टश्चाष्टादशोऽध्याय: ।।

ब्रा० स्फु० सि० १७।१०२,१०३

प्राण : A measure of time=4 seconds

लंकासमपश्चिमगं प्राणेन कलां भमण्डलं भ्रमति ।
अपमण्डलस्य राशिर्द्वादशभागः क्षितिजलग्नः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।५६

फलक : Blade

दिक्स्थितफलकद्वियुतिस्तले तदग्रस्थसूत्रयोर्मध्ये ।
कीलस्तच्छायाग्रात् कर्त्तर्या नाडिकाः स्थूलाः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।४४

बाहु : Side ofa triangle

कृतियुतिरसदृशराश्यो र्बाहुर्घातो द्विसंगुणो लम्बः ।
कृत्यन्तरमसदृशयोर्द्विगुणं द्विसमत्रिभुजभूमिः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३३

बीज : Principle (only this use and not in algebra by BSS.)

कीलोत्क्षेपाहितः पटहः शब्दं करोति घण्टा वा ।
एवं यन्त्र सहस्राण्यनेन बीजेन् कार्याणि ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।५२

बीजक और बीज : a kind of timber citrus medica

भक्त : Divided

धनभक्तं धनमृणहृतमृणं धनं भवति खं खभक्तं खम् ।
भक्तमृणेन धनमृणं धनेन हृतमृणमृणं भवति ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।३४,३५

भगण : Revolution

निरछेदभागहाराद् राश्यादिकला दिना हृताद् भक्तात् ।
भगणकलाभिर्लब्धं मण्डलशेषं दिनगणोऽस्मात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।२१,२४

भमण्डल : The hole multitude of stars

लंकासमपश्चिमगं प्राणेन कलां भमण्डलं भ्रमति ।
अपमण्डलस्य राशिर्द्वादशभागः क्षितिजलग्नाः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।५६

भागहार : Division

परिवर्त्य भागहारच्छेदांशौ छेदसंगुणच्छेदः ।
अंशोऽंशगुणो भाज्यस्य भागहारः सवर्णितयोः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।४

भाज्य : Divide

छेदेनेष्टयुतोनेनाप्तं भाज्यादनष्टमिष्टगुणम् ।
प्रकृतिस्थच्छेदहृतं लब्ध्या युतहीनकमनष्टम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।५७

भाण्डप्रतिभाण्डक : Barter

प्राग्मूल्यव्यत्यासो भाण्डप्रतिभाण्डकेऽन्यदुक्तसमम् ।
परिकर्मण्यष्टानां व्यवहाराणामभिहितानि ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।१३

भावितक : Term like xy

भावितकरूपगुणना साव्यक्तवधेष्टभाजितष्टाप्त्योः ।
अल्पेऽधिकोऽधिकेऽल्पः क्षेप्यो भावितहृतौ व्यस्तम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।६०,६१

भुज : Side of a triangle

कर्णकृतेः कोटिकृतिं विशोध्य मूलं भुजो भुजस्य कृतिम् ।
प्रोह्य पदं कोटिः बाहुकृतियुतिपदं कर्णः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।२४

भू : Base

इष्ट द्वयेन भक्तो द्विधेष्टवर्गः फलेष्टयोगार्धम् ।
विषमत्रिभुजस्य भुजाविष्टोनफलार्धयोगो भूः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३४

भूमि : Base of a triangle

त्रिभुजे भुजौ तु भूमिः तल्लम्बो लम्बकाधरं खण्डम् ।
ऊर्ध्वमवलम्बखण्डं लम्बकयोगार्धमधरोनम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३१

भूसम : Horizontal

घटिका स्वशंकुमार्गैः पृथग्गतैर्लम्बभूसमज्यार्धात् ।
साशीतिशतांशांकः चक्रस्यार्धे धनुर्यन्त्रम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।१०

भेद : Factor

गुणकारखण्डतुल्यो गुण्यो गोमूत्रिकाकृतो गुणितः ।
सहितः प्रत्युत्पन्नो गुणकारक भेदतुल्यो वा ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।५५

भ्रम : Compass

सलिलं भ्रमोऽवलम्बः कर्णश्छाया दिनार्धकर्मोऽक्षः ।
नतकालज्ञानार्थं तेषां संसाधनान्यष्टौ ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।६

मण्डल : Revolution

व्येकभवमावशेषं षड्डुद्धृतं त्रियुतभवमशेषस्य ।
पंचविभक्तस्य समं यदा तदा युगगतं कथय ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।४८,४७

मन्दोच्च : The upper apsis of the course of a planet

कक्षामण्डलमध्यं भूमध्ये मध्यमः स्वकक्षायाम् ।
अनुलोमं मन्दोच्चात् प्रतिलोमं भ्रमति शीघ्रोच्चात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।२४

मध्य : Middle terms

वर्गचतुर्गुणितानां रूपाणां मध्यवर्गसहितानाम् ।
मूलं मध्येनोनं वर्गद्विगुणोद्धृतं मध्यः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।४४,४८

मध्यधन : Middle term

पदमेकहीनमुत्तरगुणितं संयुक्तमादिनाऽन्त्यधनम् ।
आदियुतान्त्यधनार्धं मध्यधनं पदगुणं गणितम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।१७

मान्द : The process for determining the apsis of a planet's course

त्रिज्याभक्तः कर्णः परिधिगुणो बाहुकोटिगुणकारः ।
असकृन्मान्दे तत्फलमाद्यसमं नात्र कर्णोऽस्मात् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २।[illegible]

मान : Value

भुक्तिर्मानाधिकृता मानस्य न भवति कर्णगता ।

[illegible]

मार्ग : Section

विस्तारायामांगुलघातो मार्गहृतो द्विवेदहृतः ।
किष्कवगुलानि लब्धं तत् षण्णवतिर्भवति कर्म ।।

ब्रा० स्फु०

मास : Month

सौरेणाब्दा मासा स्तिथयश्चान्द्रेण सावनैर्दिवसा: ।
दिनमासाब्दपमध्या न तद्विनार्केन्दुमानाभ्याम् ।।

ब्रा० स्

मिश्र : Amount

कालप्रमाणघातः परकालहृतो द्विधाऽऽद्यमिश्रवधात् ।
अन्यार्धकृतियुतात् पदमन्यार्धोनं प्रमाणफलम् ।।

ब्रा० स्फु०

मुख : Top

मुखतलयुतिदलगणितं वेधगुणं व्यावहारिकं गणितम् ।
मुखतलगणितैक्यार्धं वेधगुणं स्याद्गणितमौत्रम् ।।

ब्रा० स्फु० सि०

मूल : Root

संवर्णितांशवर्गश्छेदकृति विभाजितो भवति वर्गः ।
संवर्णितांशमूलं छेदपदेनोद्धृतं मूलम् ।।

ब्रा० स्फु० सि०

मूल : Principal

कालगुणितं प्रमाणं फलभक्तं व्येकगुणहृतं कालः ।
स्वफलयुतरूपभक्तं मूलफलैक्यं भवति मूलम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० १

मूल्य : Prices

प्राग्मूल्यव्यत्यासो भाण्डप्रतिभाण्डकेऽन्यदुक्तसमम् ।
परिकर्माण्यष्टानां व्यवहाराणामभिहितानि ।।

ब्रा० स्फु० सि० १

यष्टि : Name of an astronomical instrument

सप्तदशकालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम् ।।

ब्रा० स्फु० सि०

याम्या : South (लङ्का)

युगपद्युगादिरुदयाद्याम्यायां भास्करस्य वारुण्याम् ।
रात्र्यर्धात् सौम्यायामस्तमयाद्दिनदलादैन्द्र्याम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २४।२

याम्योत्तररेखा : Meridian

उज्जयिनी याम्योत्तररेखाया: प्राग्धनं क्षय: पश्चात् ।
योजनषष्ट्या नाडी चरदलमपि सौम्यदक्षिणयो: ॥

ब्रा० स्फु० सि० २५।१०

याम्योत्तरवृत्त : Meridian

प्राच्यपरं समभण्डलमन्यद्याम्योत्तरं क्षितिजमन्यत् ।
परिकरवत् तन्मध्ये भूगोलस्तत्स्थितद्रष्टु: ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।४६

युतहीन : Plus minus written

योगोऽन्तरयुतहीनो द्विहृत: संक्रमणमन्तरविभक्तं वा ।
वर्गान्तरमन्तरयुतहीनं द्विहृतं विषमकर्म ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।३६,३७

युति : Conjunction

क्षितिजापमण्डलयुतिर्लग्नं लग्नाग्रया दिशा लग्नम् ।
दृक्क्षेपमण्डलं दक्षिणोत्तरं वित्रिभविलग्ने ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।५६

योग : Sum

गतभगणयुताद् द्युगणात् तच्छेशयुतात् तदैक्यसंयुक्तात् ।
तद्योगाद्द्युगणं वा य: कथयति कुट्टकज्ञ: स: ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।५२,५६

योग : Sum

योगोऽन्तरयुतहीनो द्विहृत: संक्रमणमन्तर विभक्तं वा ।
वर्गान्तरमन्तरयुतहीनं द्विहृतं विषमकर्म ॥

रज्जु : Line

त्रिभुजस्य ययोर्भुजयोर्द्विगुणितलम्बोद्धृतोऽहृतरज्जु: ।
सा द्विगुणा त्रिचतुर्भुज कोणस्पृग्वृत्त विष्कम्भ: ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।२७

राशि : Sign

राश्यंशकला विकला शेषात् कथितादभीष्टतो नष्टान् ।
यः साधयत्युपरितनान् समव्यमान् कुट्टकज्ञः सः ॥
ब्रा० स्फु० सि० १८।२३,२६

राश्यष्टां शेष्वंकान् पदसन्धिभ्यः क्रमोत्क्रमात् कृत्वा ।
बध्नीयात् सूत्राणि द्वयोर्द्वयोर्ज्यास्तदर्धानि ॥
ब्रा० स्फु० सि० २१।१७

राशि : Quantity

विपरीतच्छेदगुणा राश्योश्छेदांशकाः समच्छेदाः ।
संकलितेंऽशा योज्या व्यवकलितेंऽशान्तरं कार्यम् ॥
ब्रा० स्फु० सि० १२।२

रूप : Absolute

अव्यक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं समेऽव्यक्तः ।
वर्गाव्यक्ताः शोध्या यस्माद् रूपाणि तदधस्तात् ॥
ब्रा० स्फु० सि० १८।४३,४४

रूप : Integer

रूपाणिच्छेदगुणान्यंशयुतानि द्वयोर्बहूनां वा ।
प्रत्युत्पन्नो भवतिच्छेदवधेनोद्धृतोंऽशवधः ॥
ब्रा० स्फु० सि० १२।३

लब्धि : Profit

प्रक्षेपयोगहृतया लब्ध्या प्रक्षेपका गुणा लाभाः ।
ऊनाधिकोत्तरास्तद् युतोनया स्वफलमूनयुतम् ॥
ब्रा० स्फु० सि० १२।१६

लम्बन : Parallax

दृग्यादृश्यं दृग्गोलार्धं भूव्यासदलविहीनयुतम् ।
द्रष्टा भूगोलोपरि यतस्ततो लम्बनावनती ॥
ब्रा० स्फु० सि० २१।६४

लाभ : Gain

प्रक्षेपयोगहृतया लब्ध्या प्रक्षेपका गुणा लाभाः ।
ऊनाधिकोत्तरास्तद् युतोनया स्वफलमूनयुतम् ॥
ब्रा० स्फु० सि० १२।१६

लिप्तिका : Minute

त्रिगुणं सप्तविभक्तं नगाद्रयोंऽशारवेरुच्चम् ।
विकलाष्टकसंयुक्ता नववाणा लिप्तिका रवेर्भुक्तिः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २५।१३

वज्रवध : Cross multiplication (forked or oblique multiplication)

वज्रवधैक्यं प्रथमं प्रक्षेपः क्षेपवधतुल्यः ।
प्रक्षेपशोधकहृते मूले प्रक्षेपके रूपे ॥

ब्रा० स्फु० सि० १७।६५,६६

वत्सर : Year

अंशकशेषं त्रियुतं लिप्ताशेषं कदा रवेर्ज्ञदिने ।
षट्सप्ताष्टौ नव वा कुर्वन्नावत्सराद्गणकः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।५६,५७

वध : Product

त्रिभुजस्य वधो भुजयोर्द्विगुणितलम्बोद्धृतो हृदयरज्जुः ।
सा द्विगुणा त्रिचतुर्भुजकोणस्पृग्वृत्तविष्कम्भ ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।२७

वध : Multiplication or product

रूपाणिच्छेदगुणान्यंशयुतानि द्वयोर्बहूनां वा ।
प्रत्युत्पन्नो भवतिच्छेदवधेनोद्धृतोंऽशवधः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १२।३

वर्ग : Square

संवर्णितांशतर्गश्छेदकृतिविभाजितो भवति वर्गः ।
संवर्णितांशमूलं छेदपदेनोद्धृतं मूलम् ॥

ब्रा० स्फु०सि० १२।५

वर्गित : Squared

द्व्यूनाग्निभागशेषान् मूनं द्व्यधिकं विभाजितं षड्भिः ।
द्व्यूनं वर्गितमधिकं नवाभिर्नवभिः कदा भवति ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।२८,२९

वर्ण : Unknown quantities as x.y.z.

आद्याद् वर्णादन्यान् प्रोह्याद्यमानमाद्यहृतम् ।
सदृशच्छेदावसकृद् द्वौ व्यस्तौ कुट्टकौ वहुषु ।।

ब्रा० स्फु० सि० १८।५१,५२

वलन : Deflection

सत्रिगृहक्रान्तिरुदग्दक्षिणतोऽस्तृज्यया हृतं वलनम् ।
विक्षेपगुणमृणधनं ग्रहेऽन्यदृक्कर्म चरदलवत् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।६६

वार : Number of..., qnotient

यावत्कृत्वोभक्तं गुणेन तद्वारसम्मितिर्गच्छः ।

वारुणी : West, रोमक

युगपद्युगादिरुदयाद्याम्यायां भास्करस्य वारुण्याम् ।
रात्र्यर्धात् सौम्यायामस्तमयाद्दिनदलादैन्द्र्याम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २६।२

विकला : Second

त्रिगुणं सप्तविभक्तं नगाद्रयोंऽशा रवेरुच्चम् ।
विकलाष्टकसंयुक्ता नववाणा रवेर्भुक्तिः ।।

ब्रा० स्फु०सि० १५।१३

राश्यंशकलाविकला शेपात् कथितादभीष्टतो नष्टान् ।
यः साधयत्युपरितनान् समव्यमान्कुट्टकज्ञः सः ।

ब्रा० स्फु० सि० १८।२३,२६

विक्षेप : Celestial or polar latitude

पातास्चन्द्रादीनां भ्रमन्ति भार्धे रवेश्च भूछाया ।
पातापमण्डलवद् त्रिमण्डलानि स्वविक्षेपैः ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।५३

विघटिका : 1/60th of a घटि का

रूपेण रूपरामैः खसायकैस्ताडितो गणो युक्तः ।
षड्भिर्वेदैर्भृत्या वासरघटिका विघटिका स्युः ।।

ब्रा० स्फु० सि० २५।४

विपरीत : opposite

विपरींतच्छेदगुणा राश्योश्छेदांशकाः समच्छेदाः ।
संकलितेंऽशा योज्या व्यवकलितेंऽशांतरं कार्यम् ॥

ब्रा० स्फु० सि० २२।२

विमण्डल : The orbit of the planet or of the moon

पाताश्चन्द्रादीनां भ्रमन्ति भार्धे रवेश्च भूछाया ।
पातादपमण्डलवद् विमण्डलानि स्वविक्षेपैः ॥

ब्रा० स्फु० सि० २१।५३

विलिप्ता : Second

विकलाष्टकसंयुक्ता नवबाणा लिप्तिका रवेर्भुवितः ।
खनवनगाः शीतांशोः पंचत्रिंशद्विलिप्ताश्च ॥

ब्रा० स्फु० सि० २५।१४

विविर : Difference

गतभगणोनाद् द्युगणात् तच्छेपोनात् तदैक्यहीनाद्वा ।
तद्विवराद्द्युगणं वा यः कथयति कुट्टकज्ञः सः ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।५३,५४

विषमकर्म : Dissimilar operarions

योगोऽन्तरयुतहीनो द्विहृतः संक्रमणमन्तरविभक्तं वा ।
वर्गान्तरमन्तरयुतहीनं द्विहृतं विषमकर्म ॥

ब्रा० स्फु० सि० १८।३६,३७

विषमचतुरस्र : Trapezium

विषमचतुरस्रमध्ये विषमत्रिभुजद्वयं प्रकल्प्य पृथक् ।
कर्णद्वयेन पूर्ववदाबाधे लम्बकौ च पृथक् ॥

ब्रा० स्फु० सि०१२।२९

विषमत्रिभुज : Scalene triangle

इष्टद्वयेन भक्तो द्विधेष्टवर्गः फलेष्टयोगार्धं ।
विषमत्रिभुजस्य भुजाविष्टोनफलार्धयोगो भूः ॥

ब्रा० स्फु० सि०

विषुवन्मण्डल : Equator

विषुवन्मन्डलमूर्ध्वं सममण्डलतः स्थितं स्वकाक्षांशैः ।
याम्येनोत्तरतोऽधः क्षितिजे प्राच्यपरयोर्लग्नम् ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।५१

विपकम्भ : Diameter

त्रिभुजस्य वधौ भुजयोर्द्विगुणितलम्बोद्धृतो हृदयरज्जुः ।
सा द्विगुणा त्रिचतुर्भुजकोस्पृग्वृत्तविपकम्भः ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।२७

विस्तार : Width or rather thickness or घनत्व

विस्तारांगुलघातो मार्गाहतो द्विवेदहृतः ।
किष्क्वंगुलानि लब्धं तत् पण्णवतिर्भवति कर्म ।

ब्रा० स्फु० सि० १२।४८

वृत्त : Circle name of a section in ब्रा० स्फु० सि०

वृत्ते शरोनगुणिताद् व्यासाच्चतुराहतात् पदं जीवा ।
ज्यावर्गश्चतुराहतशरभक्तः शरयुतो व्यासः ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।४१

वृद्धि : Interest

अज्ञातवृद्धिकर्णत्वं द्रम्माणां शतपंचकम् ।
वृद्धिर्मासचतुष्कस्य तदीयान्यत्रयोजिता ।।

चतुर्वेदाचार्य

वृद्धिकर्ण : Rate of interest

अज्ञातवृद्धिकर्णत्वं द्रम्माणां शतपंचकम् ।
वृद्धिर्मासचतुष्कस्य तदीयान्यत्र योजिता ।।

चतुर्वेदाचार्य

वेध : Depth

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखातफलं हृतं त्रिभिः सूच्याः ।
मुखतलतुल्यभुजैक्यान्येकाग्रहृतानि समरज्जुः ।।

ब्रा०स्फु०सि० १२।४४

वेध्य : To be observed

ताभ्यां सूर्यशशांकौ वेध्यावग्रस्थितेन सूत्रेण ।
सूत्रज्ययाऽन्तरांशा ये तेऽर्कविभाजिता स्थितयः ।।

ब्रा०स्फु०सि० २२।२५

व्यत्यास : Transposition

प्राग्मूल्यव्यत्यासो भाण्डप्रतिभाण्डकेऽन्यदुक्तसमम् ।
परिकर्माण्यष्टानां व्यवहाराणाममिहितानि ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।१३

व्यवकलित : Subtraction

अव्यक्तवर्गघनवर्ग वर्गपंचगतपड्गतादीनाम् ।
तुल्यानां संकलित व्यवकलिते पृथगतुल्यानाम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।४१।४२

विपरीतच्छेदगुणा राश्योश्छेदांशकका: समच्छेदा: ।
संकलितेंऽशा योज्या व्यवकलितेंऽशान्तरं कार्यम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।२

व्यस्त : Reversed

ऊनमधिकाद्विशोध्यं धनं धनादृणमृणादधिक मूनात् ।
व्यस्तं तदन्तरं स्याद् ऋणं धनं धनमृणं भवति ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।३२

व्यवहार : Investigation

प्राग्मूल्यवव्यत्यासो माण्डप्रतिभाण्डकेऽन्यदुक्तसमम् ।
परिकर्माण्यष्टानां व्यवहाराणाममिहितानि ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।१३

व्यवहार : Determination

परिकर्मविंशतिं य: संकलिताद्यां पृथग्विजानाति ।
अष्टौ च व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणक: स: ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।१

व्यावहारिक : Practical, rough

व्यासव्यासार्धकृती परिधिफले व्यावहारिके त्रिगुणे ।
तद्वर्गाभ्यां दशभि: संगुणिताभ्यां पदे सूक्ष्मे ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।४०

व्यास : Diameter

व्यासव्यासार्धकृती परिधिफले व्यावहारिके त्रिगुणे ।
तद्वर्गाभ्यां दशभि: संगुणिताभ्यां पदे सूक्ष्मे ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।४०

व्यासार्द्ध : Radius

व्यासव्यासार्धकृती परिधिफले व्यावहारिके त्रिगुणे ।
तद्वर्गाभ्यां दशभिः संगुणिताभ्यां पदे सूक्ष्मे ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।४०

व्येक : Lessened by one

अवमावशेषवर्गो व्येको विंशतिविभाजितो द्व्यधिकः ।
अष्टगुणो दशभक्तो द्वियुतोऽष्टादश कदा भवति ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।२९,३०

शंकु : Name of an astronomical instrument, gnomon

सप्तदश कालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलक चक्रम् ।
यष्टिः शंकुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम् ॥

ब्रा०स्फु०सि०२२।५

शर : Arrow, depth of the chord, versin

वृत्ते शरोनगुणिताद् व्यासाच्चतुराहतात् पदं जीवा ।
ज्यावर्गश्चतुराहतशरभक्तः शरयुता व्यासः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।४१

शीघ्रोच्च : Apsis of the swiftest motion of the planet, a conjunction

कक्षामण्डलमध्यं भूमध्ये मध्यमः स्वकक्षायाम् ।
अनुलोमं मन्दोच्चात् प्रतिलोमं भ्रमति शीघ्रोच्चात् ॥

ब्रा०स्फु०सि० २१।४

शून्य : Cipher

धनयोर्धनमृणमृणयो र्धनर्णयोरन्तरं समैक्यं खम् ।
ऋणमैक्यं च धनमृणधनशून्ययोः शून्ययोः शून्यम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।३०,३१

शोधन : Subtraction

शून्य विहीनमृणमृणं धन धनं भवति शून्यमाकाशम ।
शोध्यं यदा धनमृणाद्दणं धनाद्वा तदा क्षेप्यम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।३२

षड्गत् : Raised to the 6th power

अव्यक्तवर्गघनवर्ग वर्गपंचगतषड्गतादीनाम् ।
तुल्यानां संकलितव्यवकलिते पृथगतुल्यानाम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।४१,४२

संज्ञा : Name, term

यस्मात् संप्रतिपत्तिर्न संज्ञया संज्ञितो विना तस्मात् ।
लोके प्रसिद्धसंज्ञा रूपादीनां शशांकाद्याः ॥

संप्रतिपत्ति : Perception पत्ति

यस्मात् संप्रतिपत्तिर्न संज्ञया संज्ञितो विना तस्मात् ।
लोके प्रसिद्धसंज्ञा रूपादीनां शशांकाद्याः ॥

ब्रा०स्फु०सि० २५।१

सकल : Integer

स्वविकलषष्ट्यंशगुणः सकलस्त्रिशोद्धृतो विकलवर्गः ।
प्रक्षेप्यः सकलकृतो वर्गवनो द्विनितुल्यवधौ ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।६२

संकलित : Addition

परिकर्मविंशतिं यः संकलिताद्यां पृथग्विजानाति ।
अष्टौ च व्यवहारान् छायान्तात् भवति गणकः सः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।१

अव्यक्तवर्गघनवर्ग वर्गपंचगतषड्गतादीनाम् ।
तुल्यानां संकलितव्यवकलिते पृथगतुल्यानाम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।४१,४२

संक्रमण : Concurrence; simultaneous equations

योगोऽन्तरयुतहीनो द्विहृतः संक्रमणमन्तरविभक्तं वा ।
वर्गान्तरमन्तरयुतहीनं द्विहृतं विषमकर्म ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।३६,३७

संक्रमण : Transition

फलसंक्रमणमुभयतो बहुराशिवधोऽल्पवधहृतो ज्ञेयम् ।
सकलेष्वेवं भिन्नेपूनयतश्छेदसंक्रमणम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।१२

संख्या : Coefficient

वर्णप्रमाणभावितघातो भवतीष्टवर्णसंख्यैवम् ।
सिध्यति विनाऽपि भावितसमकरणात् किं कृतं तदतः ॥

ब्रा०स्फु०सि०१८।६३।६४

सदृश : Like

आद्याद्वर्णादन्यान् वर्णान् प्रोह्याद्यमानमाद्यहृतम् ।
सदृशच्छेदावसकृद् द्वौ व्यस्तौ कुट्टको वहुषु ॥

ब्रा०स्फु०सि १८।५१,५२

सपाट : With intersectional side of a perpendicular and base

कर्णावलम्बकयुतौ खण्डे कर्णावलम्बयोरधरे ।
अनुपातेन तदूने ऊर्ध्वे सूच्यां सपाटायाम् ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।३२

सम : Horizontal, even

सलिलेन समं साध्यं भ्रमेण यृन्तमवलम्बकेनोर्ध्वम् ।
तिर्यक्कर्णेनान्यैः कपितैश्च नव प्रवक्ष्यामि ॥

ब्रा०स्फु०सि० २२।७

सम : Equation (simple equation)

अव्यक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं समेऽव्यक्तः ।
वर्गाव्यक्ताः शोध्या यस्माद्रूपाणि तदधस्तात् ॥

ब्रा०स्फु०सि०१८।४३।४४

समकरण : Equation

वर्णप्रमाणभावितघातो भवतीष्टवर्णसंख्यैवम् ।
सिध्यति विनाऽपि भावितसमकरणात् किं कृतं तदतः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १८।६३,६४

समखात : Regular excavation or prism

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखातफलं हृतं त्रिभिः सूच्याः ।
मुखतलतुल्यभुजैक्यान्यैकाग्रहृतानि समरज्जुः ॥

ब्रा०स्फु०सि० १२।४४

समभण्डल : Prime vertical circle

प्राच्यपरं सममण्डलमन्यद्याम्योत्तरं क्षितिजमन्यत् ।
परिकरवत् तन्मध्ये भूगोलस्तत्स्थितद्रष्टुः ।।

ब्रा० स्फु० सि० २१।४९

समरज्जु : Mean string

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखातफलं हृतं त्रिभिः सूच्याः ।
मुखतलतुल्यभुजैक्यान्यैकाग्रहृतानि समरज्जुः ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।४४

सवर्णित : Homogeneous

परिवर्त्य भागहारच्छेदांशौ छेदसंगुणच्छेदः ।
अंशोंऽशगुणा भाज्यस्य भागहारः सवर्णितयोः ।

ब्रा० स्फु० सि० १२।४

स्पष्टीकरण : Clarification

यत्स्पष्टीकरणाद्यं गोलादुत्प्रेक्ष्य तत्कृतं सर्वम् ।
गोलाध्यायः सप्तत्यार्याणामेकविंशोऽयम् ।।

ब्रा० स्फु० सि २१।७०

स्वयुति : Greater segment of the base, (called पीठ by Bhaskar)

कर्णयुतावूर्ध्वाधरखण्डे कर्णयुतावलम्बयोगे ना ।
स्वाबाधे स्वयुतिहृते द्विधा पृथक् कर्णलम्बगुः ।।

सावन : Terrestrial

मानानि सौरचान्द्राक्षसावनानि ग्रहानयनमेभिः ।
मानैः पृथक् चतुर्भिः संव्यवहारोऽत्र नोक्तत ।।

ब्रा० स्फु० सि० २२।२

सूची : Needle (prolonged trapezium in the shape of a triangle

कर्णावलम्बकयुतौ खण्डे कर्णावलम्बयोरधरे ।
अनुपातेन तदूने ऊर्ध्वे सूच्यां सपाटायाम् ।।

ब्रा०स्फु०सि० १२।३२

सूची : Pyramid

क्षेत्रफलं वेधगुणं समखातफलं हृतं त्रिभिः सूच्याः ।
मुखतलतुल्यभुजैक्यान्येकाग्रहृतानि समरज्जुः ।।

ब्रा० स्फु० सि० १२।४४

सूत्र : Formula, rule

प्रतिसूत्रममी प्रश्नाः पठिताः सोद्देशकेषु सूत्रेषु ।
आर्यात्र्यधिकशतेन च कुट्टश्चाष्टादशोऽध्यायः ।

ब्रा०स्फु०सि० १८।१०२,१०३

सौम्य : North, (सिद्धपुर)

युगपद्युगादिरुदयाद्याम्यायां भास्करस्य वारुण्याम् ।
रात्र्यर्धात् सौम्यायामस्तमयाद्दिनदलादैन्द्र्याम् ।।

ब्रा०स्फु०सि० २४।२

सौर : Solar

सौरेणाब्दामासास्तिथयश्चान्द्रेण साधने दिवसाः ।
दिनमासाब्दपमध्या न तद्विनाऽर्केन्दुमानाभ्याम् ।।

ब्रा०स्फु०सि० २२।१

हृत : Divided

धनभक्तं धनमृणहृतमृणं धनं भवति खं खभक्तं खम् ।
भक्तमृणेन धनमृणं धनेन हृतमृणमृणं भवति ।

ब्रा०स्फु०सि० १८।३४,३५

हृदय : About a quadrilatral, Circumradius

अविषम पार्श्व भुज गुणः कर्णो द्विगुणावलंबक विभक्तः
हृदयं विषमस्य ।

हृदयरज्जु : Central line or radius of a circumcircle

त्रिभुजस्यवधो भुजयोर्द्विगुणितलम्बोद्धृतो हृदय रज्जुः ।
सा द्विगुणा त्रिचतुर्भुजकोणस्पृग् वृत्त विष्कम्भः ।।

ब्रा०स्फु०सि १२।२७

वेदांग ज्योतिष-शब्दावली

(१) अंश—numerator
(२) अधऊर्ध्वमंडल—vertical circle
(३) अधिमास—13th month, intercalary month
(४) अब्द—year
(५) अभ्यस्त—multiplied
(६) अयुज—odd
(७) आढ़क—a measuse of weight
(८) आवाप—addition
(९) (कुडुव)—a measuse of weight
(१०) गणित—calculation
(११) गुण—multiplied (in compounds as द्विगुण)
(१२) त्र्यंश—one third
(१३) द्रोण—a measure of weight
(१४) नाडिका—a measure of time
(१५) निरेक—less than one
(१६) पल—a measure of weight
(१७) भिन्न—fraction
(१८) भूगोल—earth
(१९) मण्डल—circle
(२०) मुहूर्त्त—a measure of time =(२ नाडिका)
(२१) रूप—unity
(२२) विभाजन—division
(२३) शोधन—subtraction
(२४) संख्यात—calculate
(२५) संयुत—odded
(२६) स्तृ—star
(२७) हृत

अनुवक्रा : Retrograde

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा ।

१।१२,अ

अन्त्या : Final, lowest

मध्यक्षितिजयोर्मध्ये या ज्या सान्त्याभिधीयते ।

१३।१४,अ

अपक्रय : Withdrawal from the celestical equator point of declination

विक्षेपापक्रमैकत्वे क्रान्तिर्विक्षेप संयुता ।
दिग्भेदे वियुता स्पष्टा भास्करस्य यथाऽऽगता ।।

२.५८

अपक्रय : Withdrawal from the celestial equator

स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिकसाम्येऽन्तरमन्यथा ।।

३।२०.अ

अपक्रम : Point of declination

पातो राहुश्च रंहसा ।
विक्षिपत्येष विक्षेपं चन्द्रादीनामपक्रमात् ।।

२।६

अपक्रयज्या : Sine of greatest declination

तज्जान्त्यापक्रमज्याघ्नी लम्बज्याप्तोदयाभिधा ।

१०।३,ब

अपसव्य : Name of an encounter of the Star

अंशादूनेऽपसव्याख्यं युद्धमेको ऽत्र चेदणु ।

७।१६,ब

अपाम्वत्स : Name of a star

अपाम्वत्सस्तु चित्राया उत्तरेंऽशैस्तु पंचभिः ।

८।२१,अ

अभिजिद् : Name of a नक्षत्र

अभिजिद् ब्रह्महृदयं स्वातीवैष्णववासवाः ।

९।१२

अयन : Solstice precession
एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा ।
११।१,अ

अयनांश : Degree of the preccssion
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशाविज्ञेया अयनाभिधा ।
४।१०,अ

अश्विनी : Name of a नक्षत्र
विशाखाश्विनिसौम्यानां योगतारोत्तरा स्मृता: ।
८।१६,ब

असकृत्कर्म : Repeated correction
घनमूनेऽसकृत्कर्म यावत्सर्वं स्थिरीभवेत् ।
५।६,ब

अस्तमय : Setting
अथोदयास्तमययो: परिज्ञानं प्रकीर्त्यते ।
६।१,अ

अस्फुट : Approximate
नतांश बाहु कोटिज्ये स्फुटे दृक्क्षेप दृग्गती ।
५।७,अ

अहिर्बुध्न्य : Another name for uttara bhadrapada
अहिर्बुध्न्यमुदक्स्थत्वान्न लुप्यन्तेर्करश्मिभि: ।
६।१८,ब

अहोरात्र : A complete day
सुरासुराणामन्योन्यं महोरात्रं विपर्ययात् ।
१।१४,अ

आग्नेय : Another name for कृत्तिका
भरण्याग्नेय पित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा ।
८।१८,ब

आदित्य : The sun, another name for पुनर्वसु
रोहिण्यादित्य मूलानां प्राची सार्पस्य चैवहि ।
८।१६,ब

आवारकक्षा : Sustaining hoops

आवारकक्षाद्वितयं कक्षा वैपुवती तथा ।

१३।४,ब

आपस् : Name of a नक्षत्र

अपाम्वत्सस्तु चित्राया उत्तरेंशैस्तु पंचभिः ।

बृहत्किंचिदतो भागैराप: षड्भिस्तथोत्तरे: ॥

८।२१

आप्य : Another name for पूर्वापाढ़ा

आप्यास्यैवाभिजित्प्रान्ते वैश्वान्ते श्रवणस्थिति: ।

८।४,ब

आपाढ़ा (पूर्वा उत्तरा) : Name of two नक्षत्र

···············तथैवापाढ़योर्द्वयो: ।

८।१६,अ

इष्ट : Desired

मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ।

१।५६

उच्य : Apsis

चन्द्रोच्यस्याग्नि शून्याश्वि वसुसर्पार्णवा युगे ।

१।३३,अ

उत्क्रमज्या : Versed sine or inverse-under sine

स्यात्क्रमज्याविधिरयंउत्क्रमज्यास्वपि स्मृत: ।

२।३२

उत्क्रमज्यार्ध पिण्डक : The tabular versed sines

प्रोग्ज्योत्क्रमेण व्यासार्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डका: ।

२।२२

उत्तरायण : Northern progress

भानोर्मकरसंक्रान्ते: षण्मासा उत्तरायणम् ।

१४।९,अ

उदय : Rising in the oriene-sine-sine of amplitude

अथोदयास्तमययो: परिज्ञानं प्रकीर्त्यते ।

।१,अ

उदयज्या : The sine of amplitude

मध्योदयज्याग्न्यन्ता त्रिज्याप्ता वर्गितं फलम् ।

५।५,ब

उदयासव: : Time of rising

स्वाधो ध: परिशोध्याथ मेषाल्लंकोदयासव:

३।४२,४३

उन्नतज्या : Sine of the sun's distance from the horizon

उन्नतज्या तया हीना स्वान्त्या शेषस्य कार्मु कम् ।

३।३८

उन्नति : Elevation

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरु प्रयास्यत: ।

१२।१२,अ

उन्मण्डल : East and West hour circle

उन्मण्डलं च विषुवन्मण्डलं परिकीर्त्यते ।

२।६,ब

उन्मीलन : Emergence

अतीत्योन्मीलनादिन्दो: पद्क्सिद्धि: गणितागतान्

१।६३,अ

ऋक्ष : Star

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम् ।

१।२४,ब

ऋजु : Direct

···············मन्दा मन्दतरा समा ।

ऋज्विति पंचधा ज्ञेया············ ।

२।१३,अब

ऐन्दवस्तिथि : Lunar-date

ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्संक्रान्त्या सौर उच्यते ।

१।१३

ओजपद : Odd quadrant

अयोजपदगस्येन्दो: क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता ।

११।७

कक्षा (शशांककक्षा) : Orbit (of the moon) earth's peripphery

शशांककक्षा गुणितो भाजितो वार्ककक्षया ।

४।३,अ

कपाल : Eastern and westrern himispheres

प्राक् कपालेऽधिकं मध्याद् भवेत्प्रागग्रहणं यदि ।

५।१५

कपाल : The vessel

तोय यंत्रैः कपालाद्यैर्मयूर नरवानरैः ।

१३।२१,अ

करणी : Surd

शंकु वर्गार्धसंयुक्त विषुवद्वर्ग भाजितात् ।

तदेव करणी नाम तांद्वुयकृस्यापेयपूवः ।

३।२६

कर्क : Name of the sign cancer

कर्कादौ प्रोज्झ्य चक्रार्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ।

३ १८,ब

कर्कट : Name of the sign cancer

व्यास्ताव्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः ।

३।४४-४५

कर्मन् : Process of correction

एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैवकर्माणि ॥

२।२२,ब

कला : A measure of time, second

विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते ।

१।२८ ब

कल्प : An Aion

न तत्रघुनिशोर्मेदो ब्राह्मकल्पं प्रकीर्तितम् ।

१४,२१,ब

काल : Time

लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ।

१।१०,अ

लगति : Motions in time

तल्लग्नासुहते भुक्ती अष्टादश शतोद्धृते ।
स्यातां कालागतीताभ्यां दिनादि गतगम्ययोः ।

६।११

लाश्रयम् : Based on the time

दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितं महत् ।

१।५.ब

कस्तुघ्न : Name of करण

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृती

२।६७

कस्तुघ्न : Name of a करण

ध्रुवाणि शकुनिर्नागः तृतीयं तु चतुष्पदम् ।
किस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः ।

२।६७

कुज : Mars

कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ।

१।२६, ब

कुटिला : Transverse

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा ।

कूटविग्रह : A kind of conjuction

स्वल्पौ द्वावपि विध्वस्तौ भवेतां कूटविग्रहे ।।

७।२२, ब

कृत : Name of an age

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुरः ।
..............आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ।

१।२,३ अ तथा ब

कृत्तिका : Name of the pleiades

कृत्तिका यत्र मूलानि सार्पं रौद्रक्षं मेव च ।

६।१४,ब

केन्द्र : Centre

दोषं केन्द्रपदं तस्याद्भुजज्या कोटि रेव च ।

२।२६,ब

कोटि : Perpendicular

ततः पश्चान्मुखीं कोटिं कर्णं कोट्यग्रमध्यगम् ।

१०।१०,ब

कोटिकला : Perpendicular in minutes

भानोर्ग्रहेकोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्धं संगुणाः ।
स्फुटस्थित्यर्धसंभक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः स्मृताः ।

४।२२

कोटिज्या : Perpendicular sine

युग्मे तु गम्याद् बाहुज्या कोटिज्या तु गतादनवेद् ।

२।३०

कोटिफल : The result from perpendicular

शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रं मकरादौ धनं स्मृतम् ।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्कादौ कोटिजं फलम् ।।

२।४०

कोटिलिप्तिका : Perpendicular in minutes

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयोः ।
भुक्त्यन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ताः कोटिलिप्तिका ।

४।१८

क्रमज्या : Required sine

तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके ।
स्यात्क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः ।।

२।३२

क्रान्ति : Sine of declination

तद्‌गुणज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते । ११।२८

क्रान्तिज्या : Sine of declination

क्रान्तिज्या विषुवत्कर्णगुणाप्ता शंकुजीवया ।

३।२२,अ

खवह : Terrestrial days

भवन्ति मोदया भानुभगणैरूनिताः खवहाः ।

खेट : Latitude (only use in this sense) o:

called विक्षेप

क्षेपो भुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रवस्तु तत् ।

गण्ड : तदग्र भेष्वाद्यपादो गण्डान्तं नाम कीर्त्यते ।

गोल : Sphere

गोलं बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटम् ।

गोलयन्त्र : Name of an astronmical instrumen

तुंगबीज समायुक्तं गोलयन्त्रं प्रसाधयेत् ।

ग्रस्त : Swallowed up

भवन्ति लोके खचरा भानुभाग्रस्त मूर्तयः ।

ग्रह : Planet

पश्चाद् व्रजन्तो तिजवान् नक्षत्रैः सततं ग्रहा.

जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः ॥

ग्रह भुक्ति : Planet's (daily) motion

ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि ।

ग्रह मेलक : The conjuction of planets

ग्रहमेलक वक्ष्येऽहं ग्रहतुल्यता दिनानि च ।

चर खण्ड : Portion of ascensional difference

स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ।

चरजा (ज्या) : The sine of ascensional difference

त्रिज्योदक्चरजा युक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता ।

चरदल : Variable portion

तत्संस्कृताद् ग्रहात्क्रान्तिच्छाया चरदलादिकम् ।

चलकर्ण : Variable hypotenuse

तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः ।
त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम् ॥

चाप : Arc

लब्धस्य चापं लिप्तादि फलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम् ।

चित्रा : Virginis, spica

अपाम्वत्सस्तु चित्राया उत्तरेंऽशैस्तु पंचभिः ।

छाया : Shadow

शंकुच्छाया कृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः ।
प्रोज्झ्य शंकुकृतिं मूलं छाया शंकुविपर्ययात् ।

छेद : Diviser

त्रिज्याभक्ता भवेच्छेदो लम्बज्याघ्नोऽथ भाजितः ।

छेद्यक : Projection

न छेद्यकमृते यस्माद्भेदा ग्रहणयोः स्फुटाः ।
ज्ञायन्ते तत्प्रवक्ष्यामि छेद्यकज्ञानमुत्तमम् ॥

ज्यापिण्ड : "The quantity corresponding to the sine."
तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गत संज्ञके ।

भुजज्याफल : The result from the base-sine
तद्भुजज्याफलधनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम् ।

ज्यार्ध : Half-chord used in the sense of chord also
राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते ।

२।१५

ज्यार्धपिण्ड : Tabular sines
खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज्ज्यार्धपिण्डाः क्रमादमी ।

२।१६

ज्येष्ठा : Name of a नक्षत्र
ज्येष्ठा श्रवणमैत्राणां बार्हस्पत्यस्य मध्यमा । ८।१८

ज्योतिषां चरितम् : System of the heavenly bodies
इत्येतत्परमं पुण्यं ज्योतिषां चरितं हितम् ।
रहस्यमिदमाख्यातम्……………… ।

१४।२६

ज्ञ : Mercury
युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः ।
…………भगणाः पूर्वयायिनाम् ।

१।२९,अ

तिथिक्षय : Omitted lunar day
सावनाहानि चान्द्रेभ्यो द्युभ्यः प्रोज्झ्य तिथिक्षयाः । १।३५

तिमि : A figure resembling the fish
तन्मध्ये तिमिना रेखाकर्तव्या दक्षिणोत्तरा ।

३।३,ब

तिष्य : Name of a नक्षत्र
भरणीतिष्य सौम्यानि सौदम्यात्त्रिखसप्तकांशकैः ।

तुला : Name of the sign libra
………………तत्पातस्तु तुलादिगः ।

१।५८,अ

त्रिजीवा : Radius

लम्बाज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ।

१।६०,अ

त्रिज्या : Radius

स्वशंकुना विभज्याप्ते दृक् त्रिज्ये द्वदशाहृते ।

३।३३

त्रिभमौविक : Radius

मध्यच्छाया भुजस्तेन गुणिता त्रिभमौविका ।

३।१४,ब

त्रुटि : An imaginary measure of time

प्राणादि कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्यो मूर्तसंज्ञकः ।

१।११

दक्षिणायन : Southern progress

कर्कादेस्तु तथैव स्यात्पण्मासा दक्षिणायनम् ।

१४।२६,ब

दस्र : Another name for अश्विनी नक्षत्र

बृहस्पतेः खदस्राश्विवेद षड् वह्नयस्तथा ।

१।३१,ब

दृक्क्षेप: : Sine of ecliptic zenith distance

मध्याज्यावर्गं विश्लिष्टं दृक्क्षेपः शेषतः पदम् ।

५।६,अ

दृक्तुल्यता : "Coming within the sphere of sight"

the cocincidence with the observed pole

स्फुटं दृक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्वये ।

३।११,अ

दृग्गतिः : Co-sine of altitude

तत् त्रिज्यावर्गविश्लेषान्मूलं शंकुः स दृग्गतिः ।

५।६,ब

दृग्ज्या : Sine of zenith distance

तत् त्रिज्या वर्गविश्लेपान्मूलं दृग्ज्याभिधीयते ।

३।३२

देशान्तर : Longitude

तेन देशान्तरभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ।

१।६०,ब

दोर्ज्या : Base-sine

दोर्ज्यान्तरादिकं कृत्वा भुक्तावृणवनं भवेत् ।

२।४७,ब

द्युकर्ण : Day-radii

त्रिमद्युकर्णार्धगुणाः स्वाहोरात्रार्ध भाजिताः ।

द्युगण : Sum of days

तद्गुणाद् भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते । ३।९

द्युगण : Suming days

सावनो द्युगणः सूर्याद्दिनमासाब्दपास्ततः ।

१।५०

धनु: : Name of an astronomical instrument

शंकुयष्टि धनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनैकधा ।

१३।२०,अ

धनु: : Arc

तन्मध्यसूत्रसंयोगाद् बिन्दुत्रिस्पृग् लिखेद्धनुः ।

१०।१३,अ

धिष्ण्य : Another name for अश्विनी नक्षत्र

प्रोच्यन्ते लिप्तिकाभानां स्वभोगेन दशाहतः ।

भवन्त्यतीत धिष्ण्यानां भोगलिप्तायुता ध्रुवः ।

८।१

ध्रुवक : Fixed, immovable

गोलं बद्ध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटम् ।

नक्षत्र : Star, asterism

पश्चाद् व्रजन्तोऽतिजवान् नक्षत्रैः सततं ग्रहाः ।

१।२५

नक्षत्र : Star, asterism

पश्चाद् व्रजन्तोऽतिजवान् नक्षत्रैः सततं ग्रहाः ।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः ॥

१।२५

नतज्या : Sine of the hour-angle

नतज्याक्षज्ययोर्घातः त्रिज्याप्तस्ता तस्य कार्मुकम् ।

४।२७

नतासवः :

उत्क्रमज्याभिरेवं स्युः प्राक्पश्चार्धनतासवः । ३।३६

नतांश : Sun's meridian zenith distance

शेषं नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिजा ।

३।२०,ब

नति : Parallax in latitude depression

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः ।

१२।७२,अ

नर : Name of an astronomical instrument

तोययंत्रकपाला द्यैर्मयूरनरवानरैः ।

१३।२१,अ

नाक्षत्रम् : Sidereal

नाडी षष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ।

१।१२,अ

नाग : Name of a Karana

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीयं तु चतुष्पदम् ।
किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः ।

२।६७

नाडिका : see नाडी

नाडी : A measure of time (equal to a period of 24 minutes), a measure of length (1.12 n (B))

लङ्कोदयासुभिः ।

३।४८,४६

निमीलन : Total disappearance of the eclipsed body, immersion
निमीलनाख्यं दद्यात्सा तन्मार्गे यत्र संस्पृशेत् ६।२०

पद : Quadrant, fourth quarter
तच्चापं भादिकं क्षेत्रं पदैस्तत्र भवो रविः ।
३।४०,अ

परक्रान्तिज्या : Sine of the greatest declination
क्रान्त्योज्ये त्रिज्याभ्यस्ते परक्रान्तिज्ययोद्धृते ।
११।६,अ

परमापक्रमज्या : Sine of the greatest declination
परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः ।
२।२८

परिधि : Epicycle circumference
ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते ।
१२।३०,अ

परिलेख : Delineation, figure
नित्यशोऽर्कस्य विक्षेपाः परिलेखे यथादिशम् । ६।८

पर्व : The moment that distinguishes and separates two intervals, (Lit. knob, joint)
गतैष्यपर्वनाडीनां स्वफलेनोन संयुतौ ।
४।८,ब

पात Node of a planet's orbit, transgression
याम पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्रकाः ।
१।३३

पित्र्य : Another name for मघा नक्षत्र
मघ्याग्नेय पित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा ।
८।८,ब

पौष्ण : Another name for रेवती नक्षत्र
तेषां तु परिवर्तेन पौष्णान्ते भगणः स्मृतः ।
१।२७,ब

विन्दु : Point

तत्र विन्दू विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।

३।३,अ

ब्रह्महृदय : Name of a नक्षत्र (Capella)

हुतभुग्ब्रह्महृदयौ वृषे द्वाविंश भागगौ ।

८।११

Name for asterisum

भगण : Revolution, troop of asterisms, zodiac circle of asterisms, circle of constellation

प्राग्गतित्वमतस्तेषां भगणैः प्रत्यहं गतिः ।

परिणाहवशाद्भिन्नः तद्वशाद्भानि भुंजतो ।

१।२६

भचक्र : Circle

भचक्रत्रिप्ताशीत्यंशैः परमं दक्षिणोत्तरम् ।

विक्षिप्यते स्वपातेन..................

१।६८

भद्राश्व : Name of a year

भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा ।

१२।३८,व

भयोग : The postion of an asterism

भयोगऽब्दशतो लिप्ताः खाश्विशैलास्तथातिथेः ।

२।६४

भरणी : Name of a नक्षत्र

भरण्याग्नेय पित्र्याणां रेवत्याश्चैवदक्षिणा ।

भा : A shadow (Lit light, radiance)

भानोर्भार्धमतीच्छाया तत्‌ल्येऽर्क समेऽपि वा ।

४।६,अ

भाग A degree

विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते ।

१।२८,प

भाद्रपदा : Name of a नक्षत्र ।

फाल्गुन्योर्भाद्रपदयोस्तथैवापाढ़योर्द्वयोः ।

भाभ्रम: : Path of the Shadow

मत्स्यद्वयान्तर युतेस्त्रिस्पृक् सूत्रेण भाभ्रमः ।

३,४२।

भुक्ति : Daily motion of a planet

स्फुटस्वभुक्त्या गुणितौ मध्यभुक्त्योद्धृतौ स्फुटौ ।

भुज : Arm, base of a right-angled triangle

मध्यच्छाया भुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका ।

भुजज्या : Base-sine the values, as sines of the base an perpendicular of a right-angled triangle

शेषं केन्द्रपदं तस्माद्भुजज्या कोटिरेव च ।

भुजफल : Result from the base-sine

तद्भुजज्याफलधनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम् ।

भूकर्ण : Diameter of the earth

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ।

भूपरिधि : Circumference of the earth

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ।

तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत ।

भूभगोल : Circumference of the earth

भूभगोलस्य (भूगोलकस्य) रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम् ।

भूगोलक : An earth globe

भूमिसावन वासर : Terrestrial civil days

उदयादुदयं भानोर्भूमिसावन वासराः ॥

१।३६,ब

भूव्यास : Earth's diameter

स्फुटेन्दुभुक्तिभूव्यास गुणिता मध्ययोद्धृता ।

४।४,अ

भोग्यासव: : The equivalent in respiration of the part of the sign to be traversed

गतभोग्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात् ।

३।४५-४६

भोदय : Rising of the asterism

भोदया भगणैः स्वैस्वैरूनास्तस्योदयायुगे ।

१।३४

मकर : Name of the sign of capricorn

मकरादौ शशांकोच्चं तत्पातस्तु तुलादिगः ।

१।५८

मण्डल : Arc, circle, disk

तत्र शंकवंगुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ।

३।१

मण्डल : Disk

महत्वान्मण्डलस्यार्कः स्वल्पमेवापकृष्यते ।

३।६

मत्स्य : A figure resembling the fish

मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक् सूत्रेण भाभ्रमः ।

३,४२,अ,(४१)(पृ०४८१)

मध्यकर्ण : Radius

अर्काग्राग्नेष्टकर्णघ्नी मध्यकर्णोद्धृता स्वका ।

३।२२,ब

मध्यगति : Mean motion

दिनराशिः कुवासरैः ।

विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ॥

१।५१

मध्यज्या : Meridiam-sine

मेदं नतांशास्तन्मौर्वी मध्यज्या साभिधीयते ।

५।५८

मध्यमक्रान्ति : Declination of the meridian ecliptic point

अक्षोदङ् मध्यम क्रान्तिसाम्ये नावनतेरपि ।

४।१

मध्यभुक्ति : *mean motion (of the planet)*

हक्क्षेपः शीततिग्मांशोर्मध्य भुक्त्यन्तराहतः ।

मध्यमानयन : Calculation of the mean place

मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ।

१।५६

मध्यलग्न : Meridian ecliptic-point

भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत् ।

३।४६,५८

मध्यसूत्र : Central meridian of the earth

राक्षसालयदेवौकः शैलयोर्मध्यसूत्रगाः ।

१।६२,ब

मनु : A legendary figure name of the son of sun, name of an Aeon

ससन्ध्यस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश ।

१।१८,म

मन्द : Apsis, slow, another name for saturn

मन्दाद्धः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः ।

१२।७८,म

मन्दतरा : Very slow.

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा । २।१२

मन्दपरिधि : Epicycle of the apsis

स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताः कलाः ।
कर्कादौ तु धनं तत्र...... २।४८

मन्दफल : Equation of the apsis

मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं मैत्र्यमेव च ।

२।४४,ब

मन्दभुक्ति : Motion of the apsis

स्वमन्द भुक्ति संशुद्धा मध्यभुक्तिर्निशापतेः । २।४६

मन्द : Slow

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा ।

२।४७

मन्दोच्च Apex of slowest motion

एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चाद्यैः प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ।
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ।

१।५४

मन्वन्तर : Partiarchate, (Lit another (मनु))

युगाना सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते । १।१८

मयूर : Name of an astronomical instrument

दोलयंत्र कपालाद्यैर्मयूरनरवानरैः ।

१३।२१,अ

मानलिप्तिका : Measures in minutes

स्फुटाः स्वकर्णास्तिथ्याप्ता भवेयु मानलिप्तिकाः ।

७।१४, ब

मान्दकर्म : The process of correction for the apsis

मान्द कर्मैकमर्कस्य भौमादीनामथोच्यते ।

२।४३, अ

मिथुन : Name of a sign

अशीति भार्गवान्याम्यामगस्त्यो मिथुनान्तगः ।

८।१०,ब

मीन : Name of a sign (pisces)

मूल : Name of a नक्षत्र

रोहिण्यादित्यमूलानां प्राची सार्पस्य चैवहि ।

८।१६,ब

मृग : Another name for the sign of capricorn

मृगादौ प्रोज्झ्य भगणात् मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत् ।

३।१८,ब

मृगव्याध : Name of a star (sirius)

विंशे च मिथुनस्यांशे मृगव्याधो व्यवस्थितः ।

७।१०,ब

मेरु : Name of a mythological mountain situated in the north

दण्डं तन्मध्यगं मेरो रुभयत्र विनिर्गतम् ।

१३।४,ब

मेष : Name of a sign

विना तु पातमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यतामिताः ।

१।५७,ब

मैत्र : Another name for anuradha Nakshtra

८।१८,ब

ज्येष्ठा श्रवण मैत्राणां बार्हस्पत्यस्य मध्यमः ।

यष्टि : Staff

शंकु यष्टिधनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनेकधा ।

१३।२०,ब

याम्य : North

याम्योत्तर दिशोर्मध्ये तिमिनात्र्यंतरन्विते ।

३।४,ब

याम्या : North

ग्रहं प्राग्भगणार्धस्थो याम्यायामपकर्षति ।

२।७,ब

युग : Age

युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ।

१।९

युग्मपद : Even quadrants

ऊना चेत्स्यात्तदा भावो वामं युग्मपदस्य च ।

२।२८,ब

युद्ध : Encounter (Lit. war, conflict)

ताराग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ ।

७।१,अ

योगतारा : Junction-star

हस्तस्य योगतारा या श्रविष्ठायाश्च पश्चिमा ।

८।१७,ब

योजन : A unit of measurement of the earth

एकज्यापक्रमानीतैर्योजनैः परिवर्जितैः ।

१२।६५,ब

योजन : सार्धानि षट् सहस्राणि योजनानि विवस्वतः ।

१५।१,अ

राशि : Sign

तत् त्रिंशता भवेद्राशिर्भगणो द्वादशैव ते ।

राशि :

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः ।
राशिभिः सहिताः शुद्धाः षष्ट्यास्युर्विजयादयः ।

१।५५

राहु : Mythological demon believed to occasion the eclipses of the sun & moon

दक्षिणोत्तरतोऽप्येवं पातो राहुः स्वरंहसा ।
विक्षिपत्येष...............

२।६,ब

रेवती : Name of a Nakshtra

मघ्याग्नेयपित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा ।

रोहिणी : Name of a Nakshatra

विक्षेपोऽभ्यधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः ।

लग्नान्तरप्राण : The ascensional equivalent, in respiratic of the interval

तयोर्लग्नान्तरप्राणाः कालांशाः षष्टिभाजिताः ।

लग्नासव : The ascensional equivalent

तदूर्ध्वमन्त्यलग्नासून् एवं यातांस्तथोत्क्रमात् ।

लम्बज्या : Sine of the -co- latitude

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ।

लम्बन : Parallax in longitude

लम्बनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते ।

लिप्ता : Minutes

भचक्रलिप्ताशीत्यंशः परमं दक्षिणोत्तरम् ।

विक्षिप्यते स्वपातेन………………

वक्रा : Retrograde

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा ।

तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः ।

वृत्त : Circle, epicycle

तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयोः ।

३।२

वृष : Name of a Sign

वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽशकद्वयात् ।

८।१८,अ

वैधृत : Name of a पात

तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ।

११।१,ब

वैष्णव : Another name of श्रवण नक्षत्र ।

·········स्वाती वैष्णववासवाः ।

६।१८

व्यतीपात : Name given to an aspect of the positions of the sun and moon

समास्तद्वा व्यती पातो भगणार्धे तयोर्युतिः ।

११।२,अ

व्यासार्द्ध : Half—diameter

प्रोज्योत्क्रमेण व्यासार्द्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ।

२।२२

व्योमकक्षा : Orbit of the ether

ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योम कक्षाभिधीयते ।

१२।३०,अ

शंकु : Gnomon

शंकु यष्टि धनुश्चक्रैश्छाया यन्त्रैरनेकधा ।

१३।२०,अ

शंकु :

तन्मध्ये स्थापयेच्छंकु कल्पनाद्वादशांगुलम् ।

३।२

सन्ध्या : Twilight

सन्ध्या सन्ध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् ।

१।१६,ब

सम : Even

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा ।

सममण्डल : Prime vertical

प्राक् पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम् ।

३।६,अ

समागम : Coming together, conjunction

ताराग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ ।

७।१,अ

समासमण्डल : Aggregate—circle

मण्डलं तत्समासाख्यं ग्राह्यार्धेन तृतीयकम् ।

६।३,ब

सार्प : Another name for आश्लेषा नक्षत्र

रोहिण्यादित्यमूलानां प्राची सार्पस्य चैव हि ।

८।१९,अ

सावन : Civil, mean solar

तत् त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा ।

१।१२,ब

सित : Another name for the planet venus

सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विरसमूधराः ।

१।३२,अ

सूची : Corrected diameter of the earth

विनोन्न नव्यं सूच्या तु तयोर्लिप्तास्तु पूर्ववत् ।

४।५,ब

सूत्र : Cord

........कुर्यात्सूत्रैर्मत्स्यादिनिर्गतैः ।

३।५,अ

सौर : Solar

तद्वत्संक्रान्तिया सौर प्रच्यते ।

१।१३,अ

स्थित्यर्घ : Half duration

स्थित्यर्घ नाडिकाभ्यस्ता गतय: षष्टिभाजिता ।

४।१४,अ

स्फुट : Corrected

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्त: स्फुटो भूपरिधि: स्वक: ।

१।६०,अ

स्फुटीकरण : Correction

..................दृक्तुल्यतां ग्रहा: ।

प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् ।

२।१४,ब

हरिज : Parallax in longitude

मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न सम्भव: ।

५।१,अ

हस्त : Name of a नक्षत्र, a unit to measure length

हस्तस्य योगतारा सा श्रविष्ठायाश्च पश्चिमा ।

८।१७,ब

हुतभुक् : Name of a star

हुतभुग् ब्रह्महृदयो वृषे द्वाविंश भागगौ ।।

८।११,ब

सम्राट जगन्नाथ कृत रेखागणित-शब्दावली

(१) अंक—number
(२) अधिक कोण—obtuse angle
(३) अधिककोण त्रिभुज—obtuse angled triangle
(४) अन्तर—difference, distance
(५) अन्तर्वृत्त—Incircle
(६) अन्त्यांक - last number
(७) अपवर्तांक—common measure
(८) अर्धकरण—bisection
(९) अल्पकोण—acute angle
(१०) अष्टफलक—octahedron
(११) आबाध - segment of the base
(१२) आयत—oblong, long figure rectangle
(१३) उपपत्ति—proof
(१४) उपरिवृत्त—circumcircle
(१५) एककेन्द्र वृत्त—concentric circles
(१६) एक दिक्क—on the same side
(१७) एक रूप निष्पत्तियुक्त—proportional
(१८) कर्ण—diagonal, hypotenuse
(१९) कल्पित—supposed
(२०) कुटिल रेखा—curved line
(२१) केन्द्र—centre
(२२) कोण—angle
(२३) कोदण्ड—segment of a circle
(२४) क्षेत्र—proposition
(२५) क्षेत्रफल—area
(२६) क्षेत्रलम्ब—the altitude of a figure
(२७) खण्ड—part, regment

आयामगुणे पार्श्वे तद्योगहृते स्वपातलेखे ते ।
विस्तारयोगार्धे गुणे ज्ञेयं क्षेत्रफलमायामे ॥८॥
सर्वेषां क्षेत्राणां प्रसाध्य पार्श्वे फलं तदभ्यासः ।
परिधेः षड्भागज्या विष्कंभार्धेन सा तुल्या ॥९॥[1]

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् ।
अयुतद्वय विष्कंभस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ॥१०॥[2]
समवृत्त परिधिपाद छिन्द्यात् त्रिभुजाच्चतुर्भुजाच्चैव ।
समचापज्यार्धानि तु विष्कंभार्धे यथेष्टानि ॥११॥
प्रथमाच्चापज्यार्धाद् यैरूनं खण्डितं द्वितीयार्धम् ।
तत्प्रथमज्यार्धांशैस्तैस्तैरूनानि शेषाणि ॥१२॥[3]
वृत्तं भ्रमेण साध्यं त्रिभुजं च चतुर्भुजं च कर्णाभ्याम् ।
साध्या जलेन समभूरध ऊर्ध्वं लम्बकेनैव ॥१३॥
शंकोः प्रमाणवर्गं छायावर्गेण संयुतं कृत्वा ।
यत्तस्य वर्गमूलं विष्कंभार्धं स्ववृत्तस्य ॥१४॥

शंकुगुणं शंकु भुजा विवरं शंकुभुजयोर्विशेषहृतम् ।
यल्लब्धं सा छाया ज्ञेया शंकोः स्वमूलाद्धि ॥१५॥

छायागुणितं छायाग्र विवरमूनेन भाजिता कोटिः ।
शंकु गुणा कोटी सा छाया भक्ता भुजा भवति ॥१६॥
यश्चैव भुजावर्गः कोटीवर्गश्च कर्णवर्गः सः ।
वृत्ते शरसंवर्गोऽर्धज्यावर्गः स खलु धनुषोः ॥१७॥
ग्रासोने द्वे वृत्ते ग्रासगुणे भाजयेत् पृथक्त्वेन ।
ग्रासोन योग लब्धौ संपातशरौ परस्परतः ॥१८॥
इष्टं व्येकंदलितं सपूर्व मुत्तर गुणं समुखमध्यम् ।
इष्टगुणितमिष्ट धनं त्वथवाद्यन्तं पदार्धहतम् ॥१९॥

---

१. सब क्षेत्रों को आयत में परिवर्तित करके फिर दो भुजाओं की गुणा करने से क्षेत्रफल आ ही जाता है। परिधि के छठे भाग की जीवा अर्धव्यास के बराबर होती है।

२. यदि व्यास २०००० है तो परिधि ६२८३२ होती है।

३. सूर्यसिद्धांत के राशि लिप्ताष्टमो भागः वाले दो श्लोकों से अर्थ स्पष्ट होगा।

कालक्रिया-पाद:

वर्ष द्वादश मास स्त्रिं शद्दिवसो भवेत्सु मासस्तु
षष्टि र्नाड्यो दिवस: षष्टिश्च विनाडिका नाडी ।।१।।

गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणा: ।
एवं काल विभाग: क्षेत्र विभाग स्तथा भगणात् ।।२।।

भगणा द्वयोर्द्वयोर्ये विशेषशेष: युगेद्वियोगास्ते ।
रवि शशि नक्षत्र गणा: सम्मिश्राश्च व्यतीपाता: ।।३।।

स्वोच्चो भगाणा: स्वभगणै विशोपिता: स्वोच्चनीच परिवर्ता: ।
गुरुभगणा राशि गुणास्त्वाश्व युजाद्या गुरोरब्दा: ।।४।।

रवि भगणा रव्यब्दा रवि शशि योगा भवन्ति शशि मासा: ।
रवि भूयोगा दिवसा भावर्ताश्चापि नाक्षात्रा: ।।५।।

अधिमासका युगे ते रविमासेभ्योऽधिकास्तु ये चान्द्रा: ।
शशि दिवसा विज्ञेया भूदिवसोनास्तिथिप्रलया: ।।६।।

रविवर्ष मानुष्यं तदपि त्रिंशद्गुणं भवति पित्र्यम् ।
पित्र्यं द्वादशगुणितं दिव्यवर्ष समुद्दिष्टम् ।।७।।

दिव्यं वर्षसहस्रं ग्रहसामान्यं युगं द्विषट्कगुणम् ।
अष्टोत्तरं सहस्रं ब्राह्मो दिवसो ग्रहयुगानाम् ।।८।।

उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च ।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात् ।।९।।

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादा: ।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीता: ।।१०।।

युगवर्षमासदिवसा: समं प्रवृत्तास्तु चैत्र शुक्लादे: ।
कालोऽयमनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे ।।११।।

षष्ट्या सूर्याब्दानां प्रपूरयन्ति ग्रहा भपरिणाहम् ।
दिव्येन नभ: परिधिं समं भ्रमन्त: स्वकक्ष्यासु ।।१२।।

मण्डलमल्पमधस्तात् कालेनाल्पेन पूरयति चन्द्र: ।
उपरिष्टात् सर्वेषां महच्च महता शनैश्चारी ।।१३।।

अपमण्डलस्य चन्द्रः पाताद्यात्युत्तरेण दक्षिणतः ।
कुजगुरु कोणाश्चैवं शीघ्रोच्चेनापि बुधशुक्रौ ।।३।।

चन्द्रों शैर्द्वादशभिरविक्षिप्तोर्कान्तर स्थितैर्दृश्य. ।
नवभिर्भृगुर्भृगोस्तै र्द्वयधिकै र्द्वयधिकैर्यथाश्लक्ष्णः ।।४।।

भूग्रह मानां गोलार्धानि स्वच्छायया विवर्णानि ।
अर्धानि यथासारं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते ।।५।।

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्या परिवेष्टितः खमध्यगतः ।
मृज्जल शिखि वायुमयो भूगोलः सर्वतो वृत्तः ।।६।।

यद्वत्कदम्ब पुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः ।
तद्वद्धि सर्वसत्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः ।।७।।

ब्राह्मदिवसेन भूमेरुपरिष्टाद्योजनं भवति वृद्धि. ।
दिन तुल्ययैव रात्र्या मृदुपचितायास्तदिह हानिः ।।८।।

अनुलोमगति र्नौस्थ पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम् ।।९।।

उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः ।
लङ्का समपश्चिमगो भपञ्जरः सग्रहो भ्रमति ।।१०।।

मेरुर्योजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः ।
नन्दनवनस्य मध्ये रत्नमयः सर्वतोवृत्तः ।।११।।

स्वर्मेरुस्थलमध्ये नरको वडवा मुखं च जलमध्ये ।
अमरमरा मन्यन्ते परस्पर मधः स्थिता नियतं ।।१२।।

उदयो योलंकायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे ।
मध्याह्नो यवकोट्यां रोमक विषयेऽर्धरात्रः स्यात् ।।१३।।

स्थल जलमध्याल्लका भूकक्ष्याया भवेच्चतुर्भागे ।
उज्जायिनी लंकायाः पञ्चदशांशे समोत्तरतः ।।१४।।

भूव्यासार्धेनोनं दृश्यं देशात् समाद् भगोलार्धम् ।
अर्ध भूमिच्छन्नं भूव्यासार्धाधिकं चैव ।।१५।।

देवाः पश्यन्ति भगोलार्धमुदङ् मेरुसंस्थिताः सव्यम् ।
अपसव्यगं तथार्ध दक्षिणवडवामुखे प्रेताः ।।१६।।
रविवर्षार्धं देवाः पश्यन्त्युदितं रविं तथा प्रेताः ।
शशिमासार्धं पितरः शशिगाः कुदिनार्धमिह मनुजाः ।।१७।।

मध्य ज्योदयजीवासंवर्गे व्यासदल हृते यत्स्यात् ।
तन्मध्य ज्या कृत्योर्विशेष मूलं स्वदृक्क्षेपः ।।३३।।

दृग्द्वक्षेप कृति विशेषितस्य मूलं स्वदृग्गतिः कुवशात् ।
क्षितिजे स्वा दृक्छाया भूव्यासार्ध नभोमध्यात् ।।३४।।

विशेषगुणाक्षज्या लम्बकभजिता भवेद्दणमुदक्स्थे ।
उदये धनमस्तमये दक्षिणगे धनमृणं चन्द्रे ।।३५।।

विक्षेपक्रम गुणमुत्क्रमणं विस्तारार्धकृति भक्तम् ।
उदगृण धनमुदगयने दक्षिणगं धनमृणं याम्ये ।।३६।।

चन्द्रो जलमर्कोऽग्निमृ‍्द्भूच्छायापि या तमस्तद्धि ।
छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूच्छाया ।।३७।।

स्फुटशशि मासान्तेऽर्क पातासन्नो यदा प्रविशतीन्दुः ।
भूच्छायां पक्षान्ते तदाधिकोनं ग्रहणमध्यम् ।।३८।।

भूरविविवरं विभजेद् भूगणितं तुरविभू विशेषेणम् ।
छायाया दीर्घत्वं लब्ध भूगोलविष्कंभात् ।।३९।।

छायाग्रचन्द्रविवरं भूविष्क भेण तत् समभ्यस्तम् ।
भूच्छायया विभक्तं विद्यात् तमसः स्वविष्कंभम् ।।४०।।

तच्छशिसंपर्कार्धाकृतेः शशिविक्षेपवर्गितमपोह्य ।
स्थित्यर्ध तन्मूलं ज्ञेयं चन्द्रार्क दिन भोगाद् ।।४१।।

चन्दुकासार्घोनस्य वर्गितं यत् तमोमयार्धस्य ।
विक्षेपकृतिविहीनं तस्मान्मूलं विमर्दार्धम् ।।४२।।

तमसो विष्कंभार्धं शशि विष्कंभार्धवर्जित मयोह्य ।
विक्षेपाद्यच्छेपं न गृह्यते तच्छशांकस्य भूच्छाया ।।४३।।

विक्षेपवर्गसहितात् स्थित्यर्धादिष्ट वर्जितान्मूलम् ।
रूपकार्धाच्छोध्यं शेपस्तात्कालिको ग्रासः ।।४४।।

मध्याहात् क्रमगुणितोऽक्षो दक्षिणतोर्ध विस्तरहृतोदिक् ।
स्थित्यर्धाच्चार्केन्द्वोस्त्रिराशि सहितायनात् स्पर्शे ।।४५।।

प्रग्रहणान्ते धूम्रः, खण्डग्रहणं शशी भवति कृष्णः ।
सर्वग्रासे कपिलः सकृष्णताम्रस्तमोमध्ये ।।४६।।

सूर्येन्दु परिधि योगेऽर्काष्टम भागो भवत्यनादेश्यः ।
भानोर्भासुरभावात् स्वच्छतमत्वाच्च शशिपरिधेः ।।४७।।

क्षितिरवियोगाद् दिनकृद्रवीन्द्रयोगात् प्रसाधितश्चेन्दुः ।
शशितारा ग्रहयोगात् तथैव ताराग्रहा सर्वे ।।४८।।

सदसज्ज्ञान समुद्रात् समुद्धृतं देवता प्रसादेन ।
सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मयानिमग्नं स्वमतिनावा ।।४९।।

आर्यभटीयं नाम्ना पूर्वं स्वायम्भुवं सदा सत्यम् ।
सुकृतायुषोः प्रणाशः कुरुते प्रतिकंचुकं योऽस्य ।।५०।।

वेदांग ज्योतिष-मूल

पञ्चसंवत्सरमय युगाध्यक्षं प्रजापतिम् ।
दिनर्त्वयनमासंगं प्रणम्य शिरसा शुचिः ।

ज्योतिषामयनं पुण्यं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
संमतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकालार्थसिद्धये ॥१॥

वेदाहि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं यो ज्योतिषं वेद सवेद यज्ञान् ॥२॥

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम् ।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः ॥३॥

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयस्तथा ।
तद्वद्वेदांग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥४॥

माघ शुक्ल प्रपन्नस्य पौषकृष्ण समापितः ।
युगस्य पञ्चवर्षस्य काल ज्ञानं प्रचक्षते ॥५॥

स्वराक्रमेते सोमार्कौ सदा साकं सवासवौ ।
स्यात्तदादि युगं माघस्तपश्शुक्लोऽयेनं ह्युदक् ॥६॥

दक्षिणायाम प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्या चन्द्रमसावुदक् ।
सर्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोस्सदा ॥७॥

घर्मवृद्धिरपो प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ ।
दक्षिणे तौ विपर्यासः षण्मूहूर्त्ययनेन तु ॥८॥

प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम् ।
चतुर्थं दशमं चैव द्वियुग्मं बहुलेऽप्यृतौ ॥९॥

वसुस्त्वष्टा भवोजश्च मित्रस्सर्पोऽश्विनो जलम् ।
अर्यमा कोऽयनाद्यास्स्युरर्धं पञ्चमभस्त्वृतुः ॥१०॥

एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान्कृत्वादिमुत्तरः ।
अर्धयोः पञ्च वर्षाणामृतू पञ्चदशाष्टमौ ॥११॥

द्यु हेयं पर्व चेत्पादे पादस्त्रिंशत्तु सैकिका ।
भागात्मनाऽपवृज्यांशान्निर्दिशेदधिको यदि ॥१२॥

हेयादेय पर्वज्ञानोहार्यं पर्व राशिमानमाह :—

निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुण रूपसंयुतम् ।
षष्ट्या षष्ट्या हृतं द्वाभ्यां पर्वणांराशिरूच्यते ॥१३॥★

स्यु: पादोर्ध्वं त्रिपद्याया: त्रिद्वेकेऽह्न: कृते स्थितिम् ।
साम्येनेन्दो: स्तृणोऽन्ये तु पञ्चका: पर्वसम्मता: ॥१४॥

भांशास्युरष्टका: कार्या: पक्षद्वादशकोद्गता: ।
एकादश गुणश्चोन: शुल्केऽर्धं चैन्दवा यदि ॥१५॥

पक्षात्पञ्चदशादूर्ध्वं तद्भुक्तमिति निर्दिशेत् ।
नवभिस्तूद्गतोंऽशस्स्यादूनांशो द्वयधिकेनतु ॥

नवकै रुद्गतांशस्स्यादूनस्सप्तगुणो भवेत् ।
आवापस्त्वयुजि द्युस्या त्पौरस्त्येऽऽस्तं गतेऽपरम् ॥१६॥

जावाद्यंशैस्समं विद्यात्पूर्वार्धे पर्वसूत्तरे ।
भादानं स्याच्चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिको यदि ॥१७॥

जौ द्राग: खश्वे'ही रोषा
चिन्मू षण्य: सू माधाणा: ।
रे मृघास्वापोऽज:
कृष्योहज्येष्ठा इत्यृक्षा लिङगै: ॥१८॥

कार्या भांशाष्टक स्थाने कला एकोनविंशति: ।
ऊनस्थाने द्विसप्तती रुद्धरेद्युक्त संभवे ॥१९॥

तिथिमेकादशाभ्यस्तां पर्वभांश समन्विताम् ।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत ॥२०॥

या: पर्वभादार कलास्तामु सप्तगुणा तिथि: ।
उक्तातासां विजानीया त्तिथिभादानिका: कला: ॥

या: पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणा तिथिम् ।
प्रक्षिपेत् तत्समूहं तु विद्याद्भादानिका: कला: ॥२१॥

★(४—१)×१२×२+१÷[(२×६२)=१२४

$$= \frac{३ \times २४ + १}{१२४} = \frac{७३}{१२४}$$

अतीत पर्व भागेभ्य: शोधयेत् द्विगुणां तिथिम् ।
तेषु मण्डल भागेषु तिथि निष्ठां गतो रवि: ।।२२।।

विषुवन्तं द्विरभ्यस्य रूपोनं षड्गुणीकृतम् ।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिस्स विषुवान्स्मृत: ।।२३।।

विषुवत् तद्‌गुणं द्वाभ्यां रूपहीनं तु षड्गुणम् ।
यल्लब्धं तानि पर्वाणि तदर्धं सातिथिर्भवेत् ।।

तृतीया नवमी चैव पौर्णमासी त्रयोदशी ।
षष्ठी च विषुवान् प्रोक्त: द्वादश्यां दशमं भवेत् ।। (इति बह्‌वृच पाठः)

पलानि पञ्चाशदपां धृतानि,
तदाढकं द्रोणमत: प्रमेयम् ।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यम्,
तन्नाडि कायास्तु भवेत्प्रमाणम् ।।२४।।

नाडिके द्वेमुहूर्तस्तु पञ्चाशण्पलमाटकम् ।
आटकात्कुंभिका द्रोण: कुडुवैर्वर्धते त्रिभि:

एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस्तिथिम् ।
युगलब्धं स पर्व स्याद्वर्तमानार्कमं क्रमात् ।।२५।।

सूर्यर्क्षभागान्नवभिर्विभज्य
शेषं द्विरभ्यस्य दिनोप भुक्ति:
तिथिर्युता भुक्ति दिनेषु कालो
योगो दिनैकादशकेनतद्भम् ।।२६।।

त्र्यंशो भशेषो दिवसांश भाग
श्चतुर्दशस्याप्यपनीय भिन्तम् ।
मार्धेऽधिके चाधिगते परेंशे
धूतमेकं नवकैरवेत्य ।।२७।।

त्रिशत्यह्नां सपट्‌षष्टिरब्द: षड्‌चर्तवोऽयने
मासा द्वादश सौरास्स्यु: एतत्पञ्चगुणं युगम् ।।२८।।

उदया वासवस्य स्युर्दिनराशि: सपञ्चक: ।
ऋषे द्विषष्ट्या हीनस्स्यार्द्विशत्या सैकया स्तृणाम् ।।२९।।

इत्युपाय समुद्देशो भूयोऽप्येवं प्रकल्पयेत्
ज्ञेयराशि गताभ्यस्तं विभजेद् ज्ञानराशिना ॥४३॥

इत्येतान्मासवर्षाणां मुहूर्तोदय पर्वणाम्
दिनर्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत् ॥४४॥

सोम सूर्यस्तृ चरितं विद्वान् वेद विदश्नुते
सोमसूर्यस्तृ चरितं लोकं लोके च संततिम् ॥४५॥

इति वेदांगज्योतिष